ाका इतिहास

वर्तमान अवस्था

कन्हैयालाल

राष्ट्रीय शिक्षाका इतिहास
और उसकी वर्तमान अवस्था

काशी विद्यापीठ-शिक्षा-परिषदके निश्चय और आदेशानुसार लिखित

कन्हैयालाल

[मूल्य २)

उपोद्घात

काशीविद्यापीठकी ओरसे एक अखिलभारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलनका आयोजन किया जा रहा है। सम्मेलनके सहायतार्थ आवश्यक सामग्री एकत्र करनेके लिये विद्यापीठके अध्यापक तथा उप-पीठस्थविर श्री कन्हैयालालजी नियुक्त किये गये थे, और यह निश्चय हुआ था कि उनका लिखा हुआ विवरण प्रकाशित किया जाय।

प्रस्तुत पुस्तक इसी निश्चयका फल है। आरम्भमें यह विवरण सम्मेलनके प्रतिनिधियोंके उपयोगके लिये ही तैयार कराया गया था, पर विवरणके तैयार हो जानेपर यह विचार हुआ कि यदि इसे सर्वसाधारणके लाभार्थ पुस्तक रूपमें प्रकाशित कराया जाय तो अधिक अच्छा हो।

जो सज्जन राष्ट्रीय शिक्षाके कार्यमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे योग दे रहे हैं, और जो राष्ट्रनिर्माणके कार्यमें राष्ट्रीय शिक्षाके महत्व-को जानते हैं, वह इस पुस्तककी उपयोगिताका विशेष रूपसे अनुभव करेंगे। पर अन्य सज्जन जो राष्ट्रीय शिक्षाके इतिहास तथा उसकी

वर्तमान अवस्थासे परिचित होना चाहते हैं वह भी इस पुस्तकको उपयोगी पावेंगे।

इस पुस्तकमें राष्ट्रीय शिक्षाका आरम्भसे लेकर आजतकका इतिहास दिया गया है, साथ साथ वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओंका परिचयात्मक वर्णन भी है। राष्ट्रीय शिक्षाके मार्गमें क्या क्या बाधाएँ हैं, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओंकी क्या क्या वर्तमान आवश्यकताएँ हैं और राष्ट्रीय शिक्षाको प्रगति देनेके लिये कौन कौनसे कार्य आवश्यक हैं इत्यादि, राष्ट्रीय-शिक्षा सम्बन्धी कतिपय प्रश्नोंपर इस पुस्तकमें विचार किया गया है।

लेखक महाशयने जिस परिश्रम और योग्यताके साथ इस कार्यको सम्पादित किया है वह सराहने योग्य है।

आशा है यह पुस्तक हमारे साहित्यकी एक कमीको पूरा करेगी और राष्ट्रीय शिक्षाके कार्यको अग्रसर करनेमें सहायक होगी।

काशी विद्यापीठ
१६ पौष, १९८६

नरेन्द्रदेव

विषय-सूची

भाग—१

राष्ट्रीयशिक्षाका आरम्भ और प्रसार, वर्तमान संस्थाओंकी विशेषताएँ, उनकी सामान्य अवस्था, आजतककी सफलता और वर्तमान आवश्यकताएँ ।

विषय — पृष्ठ

भाग—२

मुख्य मुख्य संस्थाओंका परिचय ।

परिशिष्ट

भूमिका ।

असहयोग आन्दोलनके साथ देश भरमें राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाएँ स्थापित हुईं। जबतक आन्दोलन जोरपर रहा तबतक तो शिक्षाका कार्य गौण रूपसे ही होता रहा। राजनैतिक कार्योंकी ओर ही इन संस्थाओंके अध्यापकों, विद्यार्थियों और सञ्चालकोंका ध्यान था। विद्यालय चल रहे थे, उनमें पढ़ाई भी होती थी किन्तु पाठ्यक्रम निश्चित करनेके लिये बारीकीके साथ विचार करनेका मौक़ा बहुत कम लोगोंको मिलता था। गयाकी कांग्रेसके पहिले कुछ लोगोंके मनमें यह बात आई कि कांग्रेसके अवसरपर एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन किया जाय। लेकिन बातचीत और पत्र-व्यवहारके बाद यह विचार त्याग दिया गया। क्योंकि कांग्रेसके अवसरपर अन्य कार्योंके लिये बहुत ही कम समय मिलता है और इस अवसर-पर शिक्षाके सम्बन्धमें गम्भीरता पूर्वक विचार नहीं हो सकता। कुछ लोगोंकी राय हुई कि कांग्रेसकी ओरसे ही एक कमेटी बैठाई जाय जो शिक्षाको योजना तैयार करे। इसके लिये एक प्रस्ताव भी

काँग्रेसमें दिया गया, किन्तु उसपर कोई कार्रवाई नहीं हुई। [कांग्रेसका अधिवेशन समाप्त होनेपर गयामें ही, शिक्षाके विषयमें दिलचस्पी लेनेवाले, भिन्न भिन्न प्रान्तोंके लगभग ५० सज्जनोंने यह निश्चय किया कि इस मसलेपर विचार करनेके लिये एक कमेटी बुलाई जाय। इस निश्चयके अनुसार काशीमें २३ फरवरीसे ६ मार्च (सन् १९२३ ईसवी) तक एक राष्ट्रीय शिक्षासमितिकी बैठक हुई। इसमें भिन्न भिन्न संस्थाओंके २८ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस समितिके द्वारा शिक्षाकी एक योजना बनाई गई। समितिने एक स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा समिति भी कायम की। लेकिन न तो उस योजनापर ही अमल हुआ और न स्थायी समितिकी बैठक ही फिर कभी हुई। सभी संस्थाएँ अपने अपने ढङ्गपर काम करती रहीं। विचार विनिमयके लिये महाराष्ट्रकी संस्थाओंने एक प्रान्तीय शिक्षा सम्मेलन करना शुरू किया जिसके अधिवेशन आज तक प्रतिवर्ष हुआ करते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई मौक़ा या स्थान भिन्न भिन्न संस्थाओंके प्रतिनिधियोंके मिलनेका नहीं है।

असहयोग आन्दोलनके समय जितनी संस्थाएँ स्थापित हुई थीं—उनमेंसे कुछ तो धीरे धीरे बन्द होने लगीं और जो बच रहीं उन्होंने अनुभवके आधारपर अपनी अपनी योजनामें हेरफेर करके अपना फिरसे सङ्गठन करना शुरू किया। गुजरात विद्यापीठने एक कमीशन बिठाकर अपनी अवस्थाकी जाँच कराई और उसकी

सिफ़ारिशोंके अनुसार नये प्रकारसे अपना कार्य आरम्भ किया। जामिया मिल्लिया इसलामियाँने भी नया रूप धारण किया। विहार विद्यापीठका भी नवीन सङ्गठन हुआ। इसी बीच मिती २७ श्रावण १९८५ को काशी विद्यापीठकी शिक्षा-परिषद्ने अपनी पाठशालाके पाठ्यक्रमपर विचार करके उसमें आवश्यक हेरफेर करनेके लिये एक कमेटी मुक़र्रर की। कमेटीकी बैठकमें यह बात उठी कि इस प्रकारकी जितनी संस्थाएँ हैं, उन सबके पाठ्यक्रममें बहुत अधिक अन्तर नहीं है और यदि सबोंके प्रतिनिधि एकत्र होकर विचार करें तो यह अन्तर कुछ हद तक दूर किया जासकता है। यह भी ख़याल हुआ कि सभी संस्थाओंको इतने दिनोंमें तरह तरहके अनुभव हुए हैं, यदि सबोंके प्रतिनिधि एकत्र हों तो विचार विनिमयके द्वारा सबको लाभ हो सकता है और भविष्यकी कार्यप्रणाली भी स्थिर की जा सकती है। उस समय तो कमेटीने अपना काम समाप्त किया। लेकिन यह विचार बराबर प्रबल होता गया और अन्तमें २५ माघ संवत् १९८५ (७ फरवरी १९२९) को शिक्षा-परिषदमें निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ--

"यह देखते हुए कि देशमें सरकारी नियन्त्रणसे बाहर रहते हुए शिक्षाका प्रबन्ध करने वाली संस्थाओंके पाठ्यक्रम और उनकी कार्यप्रणालीमें बहुत कुछ इस प्रकारका अन्तर है जो दूर किया जा सकता है; और यदि इन सभी संस्थाओंके

प्रतिनिधि एकत्र होकर विचार करें तो सबोंको एक दूसरेके आजतकके अनुभवसे बहुत कुछ लाभ हो सकता है और भविष्यके कार्यक्रमके सम्बन्धमें कुछ उपयोगी मन्तव्य स्थिर किये जा सकते हैं:

"शिक्षा-परिषद् प्रबन्धसमितिसे सिफ़ारिश करती है कि वह विद्यापीठके आगामी समावर्तन संस्कारोत्सवके अवसर पर एक राष्ट्रीय शिक्षा–सम्मेलन करानेका प्रबन्ध करे जिसमें सभी ग़ैर सरकारी शिक्षा-संस्थाओंके प्रतिनिधि तथा अन्य शिक्षा-शास्त्री निमन्त्रित किये जायँ; और इस सम्मेलनमें राष्ट्रीय शिक्षासे सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयोंपर विचार होनेके अतिरिक्त एक 'स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा-समिति' की स्थापनाका प्रयत्न किया जाय।

"सम्मेलनकी सफलताके लिये आवश्यक सामग्री एकत्र करनेके लिये पण्डित कन्हैयालाल इन सब संस्थाओंमें भेजे जायँ और उनका मार्ग-व्यय विद्यापीठकी ओरसे दिया जाय। उनके द्वारा एकत्र की हुई सामग्रीके आधारपर एक विवरण तैयार करके छपाया जाय।"

जैसा कि इस प्रस्तावसे स्पष्ट है, इस सम्मेलनमें ग़ैर सरकारी शिक्षा संस्थाओंके प्रतिनिधियोंके अतिरिक्त ऐसे लोगोंको भी निमन्त्रित करनेका निश्चय किया गया है जो शिक्षाशास्त्रके मर्मज्ञ

हों, चाहे उनका सम्बन्ध किसी ग़ैर सरकारी शिक्षा संस्थासे हो या न हो। सम्मेलनके उद्देश्यके सम्बन्धमें प्रस्तावमें चार बातें कही गई हैं—

(१) भिन्न भिन्न-संस्थाओंके पाठ्यक्रम और उनकी कार्यप्रणाली-का जो अन्तर दूर किया जा सकता हो उसे दूर करनेका प्रयत्न करना।

(२) विचार विनिमय, जिससे सभी एक दूसरेके अनुभवोंसे लाभ उठा सकें।

(३) राष्ट्रीय शिक्षासे सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयोंपर विचार। और

(४) एक 'स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा-समिति' की स्थापना।

पाठ्यक्रममें समानता लानेका उद्देश्य गौण है। सभी संस्था-ओंने अपने अपने उद्देश्य निश्चित कर लिये हैं और उसके अनुसार अपना अपना पाठ्यक्रम तैयार किया है। प्रत्येक संस्था अपने पाठ्य-क्रममें उसी हद्तक परिवर्तन करनेके लिये राजी होगी, जिस हद्-तक अपनी वैयक्तिक विशेषताओंको छोड़े बिना ऐसा करना उसके लिये सम्भव होगा किन्तु इस दृष्टिसे भी बहुत कुछ करनेकी गुञ्जा-इश है। साधारण विषयोंके पाठ्यक्रम सभी संस्थाओंमें एक प्रकार-के हो सकते हैं। किन्तु अन्य तीन उद्देश्योंपर विशेष जोर है। अपने अपने आजतकके अनुभवको सामने रखते हुए विचार विनिमय

करनेसे बहुत लाभ होगा। शिक्षाकी समस्याओं पर विचार करना इस सम्मेलनकी दूसरी विशेषता होगी और इसी लिये ऐसे शिक्षा शास्त्रियोंको भी निमन्त्रित करनेका निश्चय किया गया है जिनका किसी ग़ैर सरकारी शिक्षा संस्थासे सम्बन्ध न हो 'स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा-समिति' की आवश्यकताका अनुभव बहुत दिनोंसे किया जा रहा है। इसके द्वारा सभी संस्थाओंके बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित होगा, और राष्ट्रीय शिक्षाकी उन्नतिके लिये वे सब काम किये जा सकेंगे, जिन्हें कर सकना, किसी एक संस्थाके लिये असम्भव है और जो सभीके मिल जानेसे आसानीसे हो सकेंगे। किन्तु यह तो काशीविद्यापीठ-शिक्षा-परिषद्का प्रस्ताव मात्र है, उसे स्वीकार करना या न करना सम्मेलनका काम है। मुझे, सब संस्थाओंमें जाकर सम्मेलनके लिये आवश्यक सामग्री एकत्र करने और उसके आधारपर सब संस्थाओंका एक विवरण तैयार करनेका आदेश देनेमें शिक्षा-परिषद्के दो अभिप्राय हैं। एक तो यह कि भिन्न भिन्न संस्थाओंके अधिकारियोंसे सम्मेलनके सम्बन्ध में बात-चीत की जाय और दूसरे यह कि सभी संस्थाओंकी कार्यप्रणालीको देखकर एक ऐसा विवरण तैयार किया जाय जिसके द्वारा सभी संस्थाओंका संक्षिप्त परिचय मिल सके। सम्मेलनमें आनेके पहिले उसके प्रत्येक प्रतिनिधिके लिये इस तरहका विवरण उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी आशा की गई है।

कार्यारम्भ करनेके पहिले सभी मुख्य मुख्य संस्थाओंको शिक्षा-परिषद्के इस निश्चयकी सूचना देते हुए उनसे प्रार्थना की गई कि अपनी संस्थाकी कार्यप्रणाली तथा पाठ्यक्रम आदिकी जानकारीके लिये आजतककी रिपोर्टें और जो कुछ छपी हुई सामग्री उपलब्ध हो वह भेज दें, ताकि उन्हें पढ़कर जानेसे वहांकी स्थिति समझनेमें सुविधा हो। साथ ही एक प्रश्नावली और आठ नक़्शे भी भेजे गये और प्रार्थना की गई कि उन प्रश्नोंका उत्तर तैयार रखें और नक़्शोंकी ख़ानापूरी कर रक्खें। यह इसलिये किया गया कि इसके द्वारा संस्थाकी स्थितिपर प्रकाश पड़े। प्रश्नावली परिशिष्टमें दी गई है। नक़्शे इस ख़यालसे वनाये गये थे कि उनके द्वारा भिन्न भिन्न वर्षोंमें उस संस्थाके विद्यार्थियोंकी संख्या, आजतक निकले हुए स्नातकोंकी संख्या, वे किनकिन कार्योंमें लगे हैं, स्नातकोंकी सूची, भिन्न भिन्न वर्षों-में संस्थासे सम्बद्ध विद्यालयोंकी संख्या, आजकल जो विद्यालय सम्बद्ध हों उनकी सूची, विद्यार्थियोंका खर्च, उसी प्रान्तके सरकारी विद्यालयोंके विद्यार्थियोंका खर्च, तथा संस्थाका खर्च—इत्यादि बातों-का पता चल सके। दो एकको छोड़ कर सभी संस्थाओंने इस प्रार्थ-नाके अनुसार सारी सामग्री तैयार कर दी। आजकल देशमें लगभग १५० शिक्षा-संस्थाएँ ऐसी हैं जो सरकारी नियन्त्रणसे स्वतन्त्र हैं। इन सबमें जा सकना न तो मेरे लिये सम्भव ही था और न इसकी आवश्यकता ही थी। प्रत्येक प्रान्तसे कुछ ऐसी मुख्य मुख्य संस्थाएँ

चुन ली गईं जिनके द्वारा उस कोटिकी अन्य संस्थाओंका परिचय मिल सके। आन्ध्र, तामिल और कर्नाटक प्रान्तोंमें मैं न आ सका। इन प्रान्तोंमें ऐसे विद्यालयोंकी संख्या भी बहुत कम है। जिन संस्थाओंमें मैं जा सका उनकी सूची नीचे दी जाती है—

संयुक्तप्रान्त

(१) गुरुकुल कांगड़ी
(२) गुरुकुल वृन्दावन
(३) प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन
(४) महाविद्यालय ज्वालापुर
(५) कन्या गुरुकुल देहरादून
(६) राष्ट्रीय विद्यालय, कानपुर
(७) गान्धी राष्ट्रीय विद्यालय, फर्रुखाबाद

पञ्जाब

(८) कन्या महाविद्यालय, जालन्धर

दिल्ली

(९) जामिया मिल्लिया इस्लामियाँ, दिल्ली।

गुजरात

(१०) गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

बिहार

(११) बिहार विद्यापीठ, पटना

वङ्गाल

(१२) विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

(१३) वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् (नेशनल कौंसिल आफ एजुकेशन वङ्गाल) जादवपुर

मध्यप्रदेश

(१४) तिलक विद्यालय, नागपुर

(१५) राष्ट्रीय विद्यामन्दिर, वर्धा

(१६) तिलक विद्यालय, कटनी

वरार

(१७) तिलक विद्यालय, खामगाँव

महाराष्ट्र

(१८) तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना

(१९) अनाथ वालिकाश्रम, हिंगणे

(२०) श्रीमती नाथीवाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ और इसी नामका कालेज, पूना

(२१) श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी कन्याशाला, पूना

(२२) अनाथ विद्यार्थी गृह, पूना

(२३) नवीन श्री समर्थ विद्यालय तलेगाँव, दाभाड़े

(२४) तिलक विद्यालय, येवला, ज़िला नासिक

(२५) वैश्य विद्याश्रम, सासवने

इन संस्थाओंमें जानेका यह अभिप्राय तो था ही कि इन्हें कार्यके समयमें देखा जाय ताकि इनकी कार्यप्रणालीका परिचय मिल सके। किन्तु जिस समय मैं दिल्लीके जामिया मिल्लिया इस-लामियामें गया उस समय उसके प्रिन्सिपल वहां न थे। अन्य अधिकारियोंने संस्था दिखलाई। किन्तु उसके आदर्शों, विशेषताओं और भावी कार्यक्रमके सम्बन्धमें विशेष बातें न हो सकीं। प्रश्ना-वलीके उत्तर और नक़शे भी भरे जा कर आजतक नहीं मिले। दो तीन छपे हुए परचे वहांसे मिले हैं, उनके आधारपर ही उसका विवरण तैयार किया गया है।

भावनगर (गुजरात)के दक्षिणा मूर्ति-विद्यार्थी भवनमें माण्टी-सरी और डाल्टन पद्धतिसे शिक्षा देनेकी व्यवस्था है। यह अपने तरहकी एक विशेष संस्था है। मैं वहां न जा सका। किन्तु प्रार्थना करनेपर वहांसे जो सामग्री मिली, उसके आधारपर उसका संक्षिप्त विवरण दूसरे भागमें दे दिया गया है।

प्रस्तुत विवरण दो भागोंमें विभक्त है। पहले भागमें राष्ट्रीय शिक्षाके आरम्भ और प्रसार, उसके स्वरूप, वर्तमान संस्थाएँ, उनकी स्थिति, विशेषताएं, आजतककी सफलता, और आगेकी आवश्यक-ताओंपर विचार किया गया है। दूसरे भागमें मुख्य मुख्य संस्थाओं-के परिचयात्मक वर्णन हैं इस वर्णनमें प्रत्येक संस्थाका आरम्भसे अब तकका संक्षिप्त इतिहास दिया गया है और उसकी वर्तमान कार्यप्र-

णाली और विशेषताओंका भी उल्लेख किया गया है। पहले भागमें आलोचनाका जितना अंश है उसमें मैंने अपने विचार ही प्रगट किये हैं। लेकिन दूसरे भागके लिखनेमें इस बातका ख़याल रक्खा गया है कि प्रत्येक संस्थाका परिचय, उसके सञ्चालकोंकी दृष्टिसे ही दिया जाय।

भाग—१

राष्ट्रीय शिक्षाका आरम्भ और प्रसार, वर्तमान
संस्थाओंकी विशेषताएँ, उनकी सामान्य
अवस्था, आज तककी सफलता और
वर्तमान आवश्यकताएँ।

पहला अध्याय

सरकारी शिक्षा प्रणाली।

देशके सरकारी तथा सरकारी सहायताप्राप्त विद्यालयोंमें आज जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित है उसका जन्म, आजसे लगभग सौ वर्ष पूर्व, तीन परस्पर विरोधिनी शक्तियोंके सङ्घर्षसे हुआ था। ये शक्तियाँ थीं—राजसत्ता, ईसाई धर्मका प्रचार करने वाली मिशनरी सोसाइटियाँ और वर्तमान भारतीय जागृतिके आदि देवता राजा राममोहन राय। तीनोंके आदर्शोंमें ज़मीन आसमानका अन्तर था और उद्देश्य बिलकुल भिन्न भिन्न थे। समता थी तो केवल इस बातमें कि तीनों हीने इस बातके लिये प्रयत्न किया कि पश्चिमका ज्ञानभण्डार भारतवर्षके लिये खोल दिया जाय। जिस प्रकार एक ही औषधि, अनुपान और सेवन-विधिकी भिन्नतासे, भिन्न भिन्न प्रकारका हानि लाभ पहुँचाती है, उसी प्रकार अँगरेज़ी शिक्षाने भी जैसे हाथसे वह आई, अपना वैसा स्वरूप प्रगट किया। सबसे पहले राजा राममोहनरायने ही इस बातका प्रयत्न किया कि भारत-

वर्षमें अँगरेज़ी साहित्य और विज्ञानकी शिक्षा दी जाय। उसका कारण यह न था कि वे संस्कृत साहित्यकी अतुल निधियोंसे अनभिज्ञ थे और न यही कि उनकी तुलनामें वह अँगरेज़ी साहित्यको ऊँचा स्थान देते थे। वे संस्कृत और फ़ारसीके अच्छे विद्वान, और प्राचीन भारतीय सभ्यताके सौष्ठव और उसकी महत्ताके पुजारी थे। किन्तु उन्होंने देखा कि संस्कृत शिक्षाकी परिपाटी इस समय इतनी विगड़ी हुई है कि इससे मस्तिष्कका समुचित विकास होनेके बदले अधिकांशमें मानसिक सङ्कीर्णता ही बढ़ती है। पण्डितोंका अधिकांश समय न्याय और व्याकरणके पढ़नेमें जाता है—संस्कृत साहित्यके अनमोल रत्नों तक उनकी पहुँच ही नहीं होने पाती। धार्मिक और सामाजिक जीवनपरसे भी भारतीय संस्कृतिकी छाप दूर होती जाती थी और उसपर विडम्बना यह कि समाज अपने उस पतित स्वरूपको ही अपनी प्राचीन संस्कृतिके अनुरूप समझता था। ऐसी परिस्थितिमें राजा राममोहन रायकी दूरदर्शी, पर्यवेक्षक-बुद्धिने स्पष्ट रूपसे देखा कि शिक्षाकी वर्त्तमान प्रणालीको बदले बिना समाजकी अवस्था सुधर नहीं सकती। उन्होंने अंग्रेजी साहित्य और विज्ञानकी शिक्षाका प्रारम्भ कराया, ताकि भारतीयोंका पश्चिमके उन्नत देशोंके सामाज़िक धार्मिक तथा राजनैतिक विचारों और उनकी अवस्थाओंसे परिचय हो। उन्होंने सोचा कि भारतवासियोंको अपनी प्राचीन संस्कृतिका बहुत अधिक और उचित

अभिमान है। किन्तु जब वे देखेंगे कि व्यावहारिक जीवनमें वे लोग, जिन्हें हम अपनी तुलनामें हेय और तुच्छ समझते हैं, हमसे अधिक उन्नत हैं तब उनके आत्मसम्मानपर एक ठेस लगेगी। वही समय आत्मविश्लेषणके लिये उपयुक्त अवसर होगा और उसी समय वे छानबीन करके देख सकेंगे कि हम अपनी संस्कृतिके आदर्शोंसे दूर हट कर पतित हो चुके हैं। उसी समय उन्हें अपनी बुराइयोंको छोड़ कर उन्नतिके मार्गपर अग्रसर होनेके लिये प्रेरित किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त पश्चिमवालोंमें बहुत से ऐसे गुण हैं जिन्हें सीखनेकी आवश्यकता है। वहांका इतिहास इस समय एक नया रूप ले रहा है। नये नये विचार उत्पन्न हो रहे हैं और राजकीय क्षेत्रमें नये नये प्रयोग किये जा रहे हैं। फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिकी घटनाएँ प्रजामें नवजीवनका सञ्चार कर रही हैं। ऐसे समयमें यूरोपकी गतिविधिसे परिचित होकर यहांकी प्रजामें भी आत्मसम्मान और स्वावलम्बनका भाव आवेगा। इन सब बातोंके सिवाय दो सभ्यताओंके सम्मिलनका आवश्यक परिणाम यह होगा कि वह दोनों हीके रूपोंमें देश, काल और परिस्थितिके अनुकूल आवश्यक परिवर्तन कर देगा जिससे उनमें नवजीवन और नवीन स्फूर्तिका सञ्चार होगा। इससे स्पष्ट है कि वे संस्कृतकी शिक्षाके विरोधी न थे, वरन् उनकी प्रबल इच्छा यह थी कि प्राचीन आदर्शोंको व्यावहारिक स्वरूप दिया जाय। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन्होंने

देशमें अँगरेज़ी शिक्षाका आरम्भ कराया और सर्व प्रथम उन्हींके प्रयत्नसे २० जनवरी सन् १८१७ ईसवीको कलकत्तेमें हिन्दूकालेजकी स्थापना हुई।

अँगरेज़ी शिक्षाके प्रचारमें सहायक होनेवाली दूसरी शक्ति है ईसाई मिशनरियोंकी। इनका उद्देश्य था भारतवर्षके लोगोंमें ईसाई धर्मका प्रचार करना। भारतवर्ष ऐसे देशमें—जहाँकी सभ्यता बहुत पुराने और ऊंचे दरजेकी हो, और जहाँकी सामाजिक रूढ़ियां धर्मका अङ्ग बन गई हों—यह काम अत्यन्त कठिन था। विचारशैलीको परिवर्तित किये बिना यह काम नहीं हो सकता था और विचार शैलीको परिवर्तित करनेका बहुत बड़ा साधन है शिक्षा। इस कारण ईसाई मिशनरियोंको देशमें नवीन शिक्षा प्रणाली प्रचलित करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। उनके उद्देश्योंमें और राजा राममोहनरायके उद्देश्योंमें बड़ा अन्तर था। राजा राममोहनराय भारतवासियोंको उनके प्राचीन गौरवकी याद दिलाकर उनकी वर्तमान अवस्थामें सुधार करना चाहते थे; ईसाई मिशनरी, भारतवासियोंकी तात्कालिक सामाजिक कुरीतियोंको सामने रखते हुए उनकी तुलनामें ईसाई धर्मके ऊंचे सिद्धान्तोंको रखकर भारतीयोंको अपने धर्ममें दीक्षित करना चाहते थे। राजा राममोहनराय उनके विचारोंमें उदारता लाना चाहते थे, मिशनरी उन्हें सङ्कीर्ण बनाना चाहते थे। राजा राममोहनराय उनके सामने पूर्व और पश्चिम दोनों हीके अच्छे और ऊंचे

विचार रखना चाहते थे, मिशनरी पूर्वके अवगुणों और पश्चिमके गुणोंका प्रदर्शन करते थे।

तीसरी शक्ति है सरकारकी जो बहुत सोच विचारके बाद और सबसे अन्तमें इस क्षेत्रमें पदार्पण करती है। जब भारतवर्षमें अँगरेजोंका राज्य बढ़ने लगा तब उसके विस्तारके साथ साथ मजबूतीकी ओर भी ध्यान देनेकी आवश्यकता पड़ी। शासनका कार्य बहुत ही कठिन और पेचीदा होता है, उसकी कठिनाइयाँ और गुत्थियाँ उस समय और भी बढ़ जाती हैं जब एक देश दूसरे देशपर शासन करना चाहता है। उस समय उसका उद्देश्य यह नहीं होता—हो नहीं सकता—कि शासितोंका हित-साधन करे। उसकी निगाह तो केवल इस बातपर रहती है कि किन उपायोंसे हमारा राज्य इनपर क़ायम रह सकता है। उन उपायोंसे यदि शासितोंका भी कुछ लाभ हो जाय तो उससे उन्हें ईर्ष्या नहीं होती, यदि न हो तो उसकी उन्हें चिन्ता भी नहीं रहती। भारतवर्षका अँगरेजी शासन इस साधारण नियमका अपवाद नहीं हो सकता था। यहाँ भी विदेशी सरकारकी शिक्षा सम्बन्धी नीति केवल एक बातको सामने रख कर निर्धारित होती थी—किस प्रकारकी शिक्षा इस देशपर अँगरेजी शासन जमाये रखनेमें सहायक होगी! आरम्भमें यदि उससे भारतवासियोंका कुछ लाभ हुआ तो वह इसलिये नहीं कि शासकोंका ऐसा उद्देश्य था, वरन् इसलिये कि उन घातक उद्देश्योंको पूरा करते हुए भी शिक्षाके

द्वारा उतना लाभ होना अनिवार्य था। यह कहा जा सकता है कि बीच बीचमें सरकारकी शिक्षा सम्बन्धी नीतिमें कुछ ऐसे परिवर्तन हुए हैं जिनसे प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपसे जनताका लाभ ही हुआ है। किन्तु इसका एक मात्र कारण यह है कि उस समय 'अर्ध तजहिं बुध सर्बस जाता' के सिद्धान्तानुसार परिस्थितिकी कूटनीतिक आवश्यकताके सामने सरकारको झुकना पड़ा। उसने अपनी इच्छा-से शासितोंके हितका ख़याल करके ऐसा नहीं किया वरन् उनकी बढ़ती हुई शक्तिसे अपनी रक्षा करनेका एक मार्ग निकाला।

आरम्भसे अबतकके सरकारकी शिक्षा सम्बन्धी नीतिके इति-हासको तीन भागोंमें बाँटा ज़ा सकता है—पहला अँगरेज़ी अमलदारी शुरू होनेसे लगाकर सन् १८३३ ईसवी तक, दूसरा सन १८३३ से १८५३ ईसवीतक और तीसरा सन् १८५३ ईसवीके बाद। पहले कालमें ईस्टइण्डिया कम्पनीने (जो कि उस समय यहाँकी सरकार थी) शिक्षाकी ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया,—और जब राज-नैतिक परिस्थितियोंके कारण पार्लमेण्टने उसे इसके लिये मजबूर किया तब वह संस्कृत और फ़ारसी आदिकी शिक्षाको कुछ मदद पहुँचाने लगी। दूसरे कालमें उसने अँगरेज़ी शिक्षाका प्रचार करना शुरू किया पर सतर्कताके साथ उसके परिणामोंकी जाँच करती रही; और तीसरे कालमें इतने दिनोंके अनुभवसे सारा भय छोड़ कर दृढ़ताके साथ आगे बढ़ने लगी।

सन् १७९२ ईसवीमें पार्लमेण्टमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीको दिये जानेवाले नये चार्टरपर विचार हो रहा था। श्री विल्वरफोर्सने उसमें दो धारायें इस आशयकी जोड़नी चाहीं कि भारतीयोंकी शिक्षाके लिये इङ्गलैण्डसे स्कूल मास्टर भेजे जायं। इसपर कम्पनीके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके एक सदस्यने कहा "अपनी वेवकूफ़ीके कारण अभी हम अमेरिकाको अपने हाथोंसे खो बैठे हैं, अब फिर हिन्दोस्तानके सम्बन्धमें हमें ऐसी ग़लती न करनी चाहिये।" उस समय इङ्गलैण्डमें भारतवर्षको शिक्षा देने योग्य स्कूल मास्टर थे या नहीं इस विषयको एक ओर रखते हुए, उपरोक्त डाइरेक्टरकी बातों-पर विचार करनेसे अंगरेज़ोंकी तात्कालिक नीतिपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अस्तु बीस बरस बीत गये और कम्पनीकी ओरसे इस देशमें शिक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं हुआ। पार्लमेण्टकी ओरसे उसे नया चार्टर मिलनेका समय आया। कम्पनीकी अमलदारी बहुत हद तक फैल चुकी थी। इङ्गलैण्डके व्यापारियोंका एक दल उसकी उन्नतिसे ईर्ष्या करते हुए उसके लाभोंमें हाथ बटानेका प्रयत्न करता आ रहा था। इस दलकी शक्ति बराबर बढ़ती जा रही थी। अतः सन् १८१३ ईसवीमें पार्लमेण्टने भारतीय व्यापारका एकाधिकार कम्पनीके हाथसे छीन लिया। साथ ही यह देखते हुए कि कम्पनी अब शासक हो गई है और उसे शासन सम्बन्धी कार्योंकी ओर भी ध्यान देना चाहिये—पार्लमेण्टने नये चार्टरमें कम्पनीको इस

बातका आदेश दिया कि वह प्रतिवर्ष कमसे कम १ लाख रुपया शिक्षाके काममें ख़र्च करे। किन्तु वह इस रक़मसे अँगरेज़ी विद्यालयोंकी स्थापना न करके उसके द्वारा पुरानी परिपाटीके संस्कृत अरबी और फ़ारसीके विद्यालयोंकी ही सहायता करती रही। राजाराममोहनरायने इस बातका बहुत प्रयत्न किया कि यह रुपया अँगरेज़ी स्कूलोंके खोलनेमें लगाया जाय पर इसका कोई फल नहीं हुआ। इतना ही नहीं वरन् सरकारने ईसाई मिशनरियोंको भी इस कामके करनेसे रोका और जिन्होंने धर्म-प्रचारके आवेशमें इस राजाज्ञाकी अवहेलना की उन्हे अँगरेज़ी सल्त-नतके बाहर जाना पड़ा। सरकारका यह रुख़ सन् १८३३ ईसवी तक रहा। इसका प्रधान कारण था क्रान्तिका भय। न जाने लोग इसे किस दृष्टिसे देखें! अँगरेज़ी शिक्षाके परिणाम स्वरूप कुछ नये विचार तो फैलेंगे ही। उससे यदि लोगोंने यह समझ लिया कि हमारी धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियोंपर आघात पहुँचाया जा रहा है, तो इसका प्रतीकार करनेके लिये वे सब कुछ करनेको तैयार हो जायँगे। और विशेषकर जब कि मिशनरियोंके द्वारा यह शिक्षा दी जायगी तब तो इसको और भी अधिक आशङ्का है। अस्तु सरकार इससे ख़ुद तो अलग रही ही, किन्तु मिशन-रियोंको भी सख़्तीके साथ दबाया। लेकिन राजा राममोहनरायके प्रयत्नसे जो प्रयोग आरम्भ हुआ था उसके आठदस वर्षोंके

अनुभवने सरकारके भयको दूर कर दिया। इन स्कूलों-के अँगरेज़ीशिक्षा प्राप्त विद्यार्थी अँगरेज़ोंके विरोधी होनेके बजाय उनके अधिक अनुकूल होने लगे और उनके गुणों और अवगुणों दोनोंका ही अनुकरण करने लगे। कारण स्पष्ट है। अँगरेज़ी शिक्षा प्राप्त करनेपर उनका पश्चिमके उन्नत देशोंसे परिचय हुआ—वहांके रीति रिवाज और उद्योग धन्धोंका ज्ञान हुआ। उसकी उन्होंने अपनी तात्कालिक सामाजिक अवस्थासे तुलना की। उस समय हिन्दू-समाजमें अनेक तरहकी कुरीतियां प्रचलित थीं जिनसे व्यावहारिक जीवन कष्टप्रद हो रहा था। ऐसे समयमें उन्होंने ग्रन्थोंके द्वारा पश्चिमके नवीन सिद्धान्तोंको देखा और कुछ चुने हुए यूरोपीय लोगोंके संसर्गमें आये। नतीजा यह हुआ कि वे स्वभावतः ही यूरोपियनोंके नवीन ऊंचे सिद्धान्तोंपर मुग्ध होकर उस ओर झुक पड़े। निस्सन्देह उस समय हिन्दू समाजकी अवस्था गिरी हुई थी। किन्तु नवशिक्षित भारतीय युवकोंने दोनों देशोंकी तुलना वैज्ञानिक दृष्टिसे नहीं की थी। अपने व्यावहारिक स्वरूपका मुक़ाबला पश्चिम-के सैद्धान्तिक स्वरूपसे किया था। यदि यहांके सिद्धान्तों और आदर्शोंका मुक़ाबला वहांके सिद्धान्तों और आदर्शोंसे करते तो वे उधर न दौड़ कर अपने आदर्शोंकी ओर ही दौड़े होते। अपने व्यावहारिक जीवनका मुक़ाबला भी यदि वहांके तत्कालीन व्याव-हारिक जीवनसे ही किया होता तो भी उन्हें इतनी अधिक निराशा

न हुई होती। किन्तु उनके सामने एक ओर तो अपना सामाजिक जीवन था जिसके भीतर जीवनका प्रतिक्षण व्यतीत करना पड़ता था, और दूसरी ओर पश्चिमके सिद्धान्त और चुने हुए व्यक्तियोंका संसर्ग। ऐसी परिस्थितिमें उनका पश्चिमकी ओर झुक पड़ना, नितान्त स्वाभाविक था। वे भली बुरी सभी बातोंमें पश्चिमके लोगोंका अनुकरण करने लगे और ऐसा करनेमें ही गौरव समझने लगे। इस बहिर्मुखी विवेकहीन प्रवृत्तिको लौटानेका प्रयत्न ब्रह्म-समाजके द्वारा हुआ—जिसने प्राचीन भारतीय सभ्यताके सच्चे स्वरूपको कुछ कुछ नयी रीतिसे सामने रखते हुए उस आदर्शकी ओर बढ़नेका इङ्गित किया। किन्तु अंगरेज़ी शिक्षाके इस परिणामको देखकर शासकोंका भ्रम दूर हो गया उन्होंने देखा कि नवशिक्षित भारतीय युवक सभी बातोंमें हमारे अनुकूल होने लगते हैं। ऐसी परिस्थितिमें देशमें अँगरेज़ी शिक्षाका प्रचार करनेसे अँगरेज़ी अमलदारीको न केवल कोई ख़तरा नहीं है वरन् इससे उसकी जड़ मज़बूत होगी।

सन् १८३३ में कम्पनीको पार्लमेण्टकी ओरसे नया चार्टर मिलनेका समय आया और इसी समयसे उसने अपनी नीति बदली। सन् १८१३ ईसवी वाला चार्टर भारतसरकारके नवनियुक्त—सर्वप्रथम कानून सदस्य मेकालेके सुपुर्द करके उनकी राय पूछी गई कि तालीमके लिये जो रक़म ख़र्च करनेका उसमें आदेश है वह

अँगरेज़ी शिक्षाके प्रचारमें लगायी जा सकती है या नहीं। मेकालेने लिखा कि ऐसा करनेमें कोई कानूनी रुकावट नहीं है। वास्तवमें मेकालेकी राय किसी कानूनी गुत्थीको सुलझानेके लिये नहीं ली गई थी वरन् नीतिमें परिवर्तन करनेका वह एक बहाना था। मेकालेकी कानूनी राय सरकारके पिछले वर्षोंके अनुभवका सार थी। उन्होंने लिखा 'हमें चाहिये कि कुछ ऐसे लोग तैयार करें जो हमारे और हमारी लाखों प्रजाके बीच दुभाषियेका काम करें। अर्थात् हम उन्हें इस प्रकारका बना दें कि वे रक्त और रंगमें तो भारतीय रहें पर रुचि, विचार, नैतिकता और बुद्धिमें पूरे अँगरेज़ हो जावें।' इसी उद्देश्यको लेकर सरकारने अँगरेज़ी-शिक्षाप्रचारका कार्य अपने हाथोंमें लिया। शासन सम्बन्धी आवश्यकताएँ भी उसे इस बातके लिये मजबूर कर रही थीं। बड़े बड़े ओहदोंपर तो अँगरेज अफसर नियुक्त होते ही थे, पर छोटी छोटी जगहोंपर काम करनेके लिये कम तनख्वाहपर अँगरेज़ी पढ़े लिखे लोगोंकी जरूरत थी। सन् १८४४ में तो गवर्नर-जनरलकी स्पष्ट घोषणा हो गई कि सरकारी नौकरियाँ देनेमें अँगरेज़ी पढ़े लिखे लोगोंको तरजीह दी जायगी। इस घोषणासे अँगरेज़ीके प्रचारमें बहुत सहायता मिली।

सन् १८५३ में कम्पनीको फिर चार्टर देनेका समय आया। सरकारको अँगरेज़ी शिक्षाका काम अपने हाथमें लिये २० बरस हो चुके थे और अब इतने दिनोंके अनुभवको सामने रखते हुए यह

मेकाले नीति

निश्चय करना था कि आगे इस सम्बन्धमें कौनसी नीति वर्ती जाय। पार्लमेएटकी कमेटीके सामने जितनी गवाहियाँ गुजरीं, उन सबके बयानसे यही साबित हुआ कि जिस प्रकारसे देशमें अँगरेज़ी-शिक्षा का प्रचार किया जा रहा है वह अँगरेज़ी राजको कमज़ोर करनेके बजाय उसे मजबूत करनेमें ही अधिक सहायक होगा। सर चार्ल्स ट्रेवेलियनने कहा 'मुसलमान हमें काफ़िर समझते हैं और हिन्दू म्लेच्छ, और दोनों ही की यह धारणा है कि हमने उनके राज्यका अपहरण किया है। अँगरेज़ी शिक्षासे उनकी विचारशैली परिवर्तित होगी और वे हमें अपना मित्र समझने लगेंगे। जो लोग अपने ख़या-लोंके मुताबिक शासन-सुधारकी बात सोचते हैं, उनका बस चले तो हमें एक हो दिनमें हिन्दोस्तानसे निकाल बाहर करें। वे तो इसके लिये षड्यन्त्र भी करते ही रहते हैं। किन्तु यदि हम उन्हें अपने विचारोंके अनुकूल बनाते रहेंगे तो शासनसुधारका कार्य धीरे धीरे होगा और कितने दिनोंमें जाकर पूरा होगा यह नहीं कहा जा सकता।' आगे चलकर उन्होंने यह भी कहा कि 'यह बात अँगरेज़ी शिक्षा-प्राप्त लोगोंके हितके विरुद्ध होगी कि यहां देशी राज्य कायम हो। ऐसा होनेसे उनका ही सबसे पहले नुक़सान होगा। वे लूटे जायँगे और जनताका क्रोध उन्हींपर भड़केगा, इसलिये वे हमें नहीं छोड़ेंगे। इस तरहके लोगोंकी तादाद जितनी ही बढ़ेगी उतनाही हमारे सम-र्थकों और सहायकोंका दल मजबूत होगा।' और भो जो गवाहियाँ

गुजरीं उनसे यह बात स्पष्ट हो गई कि अँगरेज़ी सलतनतको मज़बूत करनेके लिये अँगरेज़ी शिक्षाका प्रचार आवश्यक है। अतः १८५४ ईसवीसे सारी दुविधा छोड़कर सरकार इस मार्गपर अग्रसर हुई।

जिस उद्देश्यको सामने रखकर इस कार्यका प्रारम्भ किया गया उसे देखते हुए इस बातपर आश्चर्य करनेका कोई कारण नहीं है कि इन विद्यालयोंसे लाभके बजाय हानि ही अधिक हुई और हो रही है। आजसे १०० बरस पहले जिन देशोंकी साहित्यिक, औद्योगिक और शिक्षा सम्बन्धी अवस्था भारतवर्षकी तत्कालीन अवस्थासे कहीं गई गुजरी थी वे आज बहुत आगे बढ़ गये हैं--उनका साहित्य समुन्नत है, उद्योग धन्धोंमें उन्होंने बहुत तरक्क़ी की है, बुद्धि और बलमें संसारके प्रथम श्रेणीके देशोंसे वे मुक़ाबला करते हैं। पर भारतवर्षके सम्बन्धमें इनमेंसे कोई भी बात नहीं है। नये नये देशोंके लोगोंने नये नये शास्त्रोंकी रचना की, व्यावहारिक दुनियामें नये नये प्रयोग किये और उन्नतिके नये नये मार्ग ढूँढ़ निकाले। किन्तु भारतवर्षके प्राचीन साहित्यमें अनेक प्रकारके अनुभवों और ज्ञान-भण्डारके होते हुए भी यहाँ कोई उन्नति नहीं हुई। सन् १९११ ईसवीमें माइरन फ़ेल्प्स नामक एक अमेरिक़न शिक्षा-शास्त्रीने भारतवर्षकी शिक्षासंस्थाओंका भ्रमण करके लिखा था— 'यह एक विचित्र घटना है कि बहुत सी बातोंमें पश्चिमके देशोंने किसी सिद्धान्तकी रचना तो नहीं की किन्तु उनपर व्यवहार कर

रहे हैं; लेकिन भारतवर्षके प्राचीन साहित्यमें ऊँचेसे ऊँचे सिद्धान्त भरे पड़े हैं, पर उनपर व्यवहार नहीं होता।' यह विदेशी शासनकी विडम्बना है। शिक्षाका मुख्य उद्देश्य यह है कि शिष्यके भीतर जो शक्तियाँ बीजरूपसे अन्तर्हित हों उन्हें विकसित और प्रस्फुटित होनेकी व्यवस्था करे। लेकिन सरकारी शिक्षाप्रणालीमें न केवल इसका ध्यान ही नहीं रक्खा गया, वरन् ऐसे तरीक़े वरते गये जिनसे वे शक्तियाँ विकसित होनेके बजाय नष्ट हो जायँ। शिक्षाप्रणाली आरम्भसे अन्त तक अस्वाभाविक रक्खी गई। शिक्षाका माध्यम विदेशी भाषा हुई जिसका समुचित ज्ञान प्राप्त करनेमें ही जीवनके अत्यन्त अधिक महत्वपूर्ण अंश–बाल्यावस्था और कुमारावस्था–का अधिकांश समय चला जाता है। भारतीय संस्कृति तथा रीतिनीति आचार मर्यादाकी ओर शिक्षाक्रममें कोई ध्यान ही नहीं दिया गया। उक्त अमेरिकन शिक्षाशास्त्रीने लिखा है कि 'इस देशके स्कूलोंमें जाने-के पहिले मुझे आशा थी कि बालकोंमें हिन्दू चरित्र और हिन्दू वातावरणका कोई ऐसा आभास मिलेगा जिससे मैं जान सकूंगा कि हिन्दोस्तानमें हूँ। पर मुझे निराश होना पड़ा। ···· लड़कोंको शेक्सपीयर, मिल्टन, स्पेन्सर आदिकी किताबें तो रटाई जाती हैं पर दीवारों पर हिन्दू ग्रन्थोंका एक वाक्य तक लिखा हुआ नज़र नहीं आता ····· देखने वालेको यही मालूम होता है कि हिन्दोस्तानियों-को अँगरेज़ बनाया जा रहा है।' ऐसी परिस्थितिमें यह स्वाभाविक

था कि इन विद्यालयोंसे शक्ति सम्पन्न, सदाचारी, भारतीय संस्कृतिके अभिमानी विद्वान् नागरिकोंकी अपेक्षा विदेशी सरकारकी आवश्यताओंको पूरा करने वाले कर्मचारी अधिक मात्रामें उत्पन्न होते।

किन्तु इन पक्तियोंका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि पश्चात्य सभ्यता और विज्ञानकी शिक्षा भारतवर्षके लिये सर्वथा घातक साबित हुई है या उसका यहाँके लिये कोई उपयोग या महत्व नहीं है। उसमें बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन्हें सीखकर हिन्दोस्तानको लाभ हुआ है और होता रहेगा। राजा राममोहनरायने तो इसी उद्देश्यसे देशमें इसका प्रारम्भ कराया था। किन्तु उनके जीवनके साथ साथ शिक्षाके सम्बन्धमें इस महान् उद्देश्यका भी लोप होगया। शासकोंने अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिये नयी रीतिसे उसका प्रचार करना शुरू किया और उनका उद्देश्य सफल हुआ। सरकारी शिक्षा प्रणालीके हिमायती यह दिखलानेका प्रयत्न करते हैं कि देशके धार्मिक सामाजिक राजनैतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रमें आज ऐसे लोग मौजूद हैं जिनपर कोई भी देश अभिमान कर सकता है, और इन सब लोगों की शिक्षा उन्हीं विद्यालयोंमें हुई थी। इस बात की सचाईमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता। किन्तु ऐसे लोगोंने जो कुछ भी उन्नति की है वह उस शिक्षा-प्रणालीके कारण नहीं वरन अपनी शक्तिसे उसकी बुराइयोंका प्रतीकार कर सकनेके कारण।

'कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन १९१७-१९' के सम्मुख श्री जानवुडरफ़ने जो 'मेमोरेण्डम' भेजा था उसमें आपने लिखा है—

"दुनियां की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें केवल बुराई ही बुराई हो। इस दृष्टिसे विचार करते समय मुझे दिखाई देता है कि इस शिक्षासे कुछ लाभ हुए हैं। किन्तु जब इस विषय पर मैं पूर्णतया विचार करता हूँ तब मैं इसी नतीजेपर पहुँचता हूँ कि इससे नुकसान भी बहुत हुआ है। ऐसी अस्वाभाविक अवस्थामें और हो ही क्या सकता था? ग़लत तरीक़ेकी शिक्षासे शारीरिक और मानसिक शक्तिका अपव्यय होनेके अलावा नैतिक शक्तिका भी ह्रास होता है। उससे अस्थिरता उत्पन्न होती है जिसके कारण कुछ लोग तो मारकाटके लिये उत्तेजित होने लगते हैं और कुछ लोगोंके मनमें इस तरहका अन्तर्द्वन्द उठने लगता है कि वह उनके लिये घातक साबित होता है। साधारण स्थितिके बहुतसे लोगोंमें केवल अनुकरण करने और दबे रहनेकी आदत पड़ जाती है। विद्यार्थियों पर इस शिक्षाका असर यह हुआ कि उनकी राष्ट्रीय विशेषतायें नष्ट होगईं और उनकी सभी तरहकी शक्तियां कुण्ठित होगईं।

"यदि इस शिक्षाप्रणालीके सभी घातक असर अभी तक प्रगट नहीं हुए हैं तो उसका कारण यह है कि राष्ट्रीय शक्तिने अपने ऊपर किये जानेवाले प्रहारोंका—जिनकी संख्या और जिनके आघा-

तकी तीव्रता इधर कुछ वर्षोंसे बढ़ती गई है—प्रतीकार करते रहने-की सतत चेष्टा की है।"

किन्तु यदि सरकारका उद्देश्य अच्छा भी होता, वह यदि अपनी राजनैतिक आवश्यकताओंका ही ख़याल करके शिक्षाप्रणालीका निर्माण करने न बैठती, और वास्तवमें भारतीयोंको शिक्षित करने की योजना बनाती तो भी क्या एक देशके लोगोंके लिये यह कभी सम्भव होता कि वह दूसरे देशके मनुष्योंके लिये उचित प्रकारकी शिक्षाकी व्यवस्था कर सकें—और वह भी ऐसी स्थितिमें जब कि दोनोंकी संस्कृतिमें बहुत बड़ा अन्तर हो! शिक्षाका उद्देश्य है आन्तरिक शक्तिको विकसित करना। इसके लिये परिस्थितिके अनुसार भिन्न भिन्न देशोंके लिये भिन्न भिन्न प्रकारकी व्यवस्था आवश्यक है। जिस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकारके जलवायु वाले दो स्थानोंमें उत्पन्न होने वाली वस्तुओंके पोषणके लिये भिन्न भिन्न प्रकारकी प्रक्रिया करनी होती है, उसी प्रकार संस्कृति और परम्परा-की भिन्नताके साथ साथ शिक्षाकी परिपाटीमें भी अन्तर करना होगा। उपरोक्त मेमोरैण्डममें श्री जान वुडरफने आगे कहा है—

"हमें इतना तो मानना ही पड़ेगा कि भारतवासियोंकी राष्ट्रीय विशेषताओंमें बहुत बल है। इसी बलके कारण वे उतनी आफ़तोंका मुक़ाबला कर सके हैं जितनी आफ़तोंका मुक़ावला दुनियांके किसी देशने नहीं किया है। इस बातकी जांच करनेकी आवश्यकता नहीं है

कि पूर्व और पश्चिमकी सभ्यताओंमें कौन अच्छी और ऊँची है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि भारतवर्षके लोगोंके लिये वह भारतीय सभ्यता ही अच्छी है जिसका विकास उनके पूर्वजोंके समयसे होता आ रहा है। हमें यह नहीं चाहिये कि अपने धार्मिक अथवा राजनैतिक विश्वासोंको प्रत्यक्ष रूपसे या परोक्ष रूपसे उन लोगोंपर लादें जिनके लिये वह बिलकुल असङ्गत हैं। हमें सच्चे भारतीय देश भक्तके इस दावेको मंजूर करना चाहिये कि पाठ्यक्रममें भारतीय भाषा, इतिहास, साहित्य-कला, दर्शन, धर्म, संस्कृति और आदर्शोंको प्रथम स्थान मिलना जरूरी है।"

सरकारी शिक्षा-पद्धतिमें देशकी आर्थिक और औद्योगिक शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताओंकी जैसी अवहेलना की गई है उसका उदाहरण किसी भी स्वतन्त्र देशके इतिहासमें नहीं मिलेगा। समाजका आर्थिक सङ्गठन किस प्रकारका है और उसकी उन्नतिके लिये किस प्रकारकी औद्योगिक शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिये - इसका कुछ भी ख़याल नहीं किया गया। प्राकृतिक सम्पत्तिकी प्रचुरता होते हुए भी ऐसे विद्यालय नहीं खोले गये जहाँ उनका उपयोग करनेकी शिक्षा मिल सके। देश कृषिप्रधान है, किन्तु शिक्षाकी योजनामें कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओंको स्थान नहीं है।

स्त्रियोंकी शिक्षाका तो कोई प्रबन्ध ही नहीं किया गया। यहांकी परिस्थितिके अनुकूल उनकी शिक्षासम्बन्धी योजनामें जो विशेषताएं

होनी चाहियें थीं, वे तो रक्खीही नहीं गईं, साधारण विद्यालयोंमें भी ऐसी सुविधाएं नहीं की गईं जिनसे वे वहां जाकर शिक्षित हो सकें। आज स्त्रियों और पुरुषोंकी शिक्षा सम्बन्धी अवस्थामें जितना भयानक वैषम्य इस देशमें पाया जाता है वैसा शायद ही दुनियांके किसी और देशमें हो।

दूसरा अध्याय

राष्ट्रीय शिक्षाका आरम्भ और प्रसार।

कल कारख़ानों और उद्योग धन्धोंकी दृष्टिसे यूरोपीय देशोंके लिये नवीन युगका आरम्भ तो १५ वीं १६ वीं शताब्दीसे ही होता है। किन्तु शिक्षा साहित्य, विज्ञान और कलाके क्षेत्रमें उन्नीसवीं शताब्दीसे सारे संसारमें नये आविष्कार और नये प्रयोग बढ़ने लगे। भारतवर्षकी नवीन जागृति भी इसी शताब्दीमें आरम्भ होती है। इसी समय नये नये धार्मिक और सामाजिक सुधार आरम्भ हुए और आगे चल कर नये प्रकारका राजनैतिक आन्दोलन भी चला। शिक्षाका इन सबसे घनिष्ट सम्बन्ध है। इन सब आन्दोलनोंके साथ साथ शिक्षापद्धतिके सुधारका आन्दोलन भी चला। किन्तु संसारके स्वतन्त्र देशोंके और इस देशके शिक्षा-सुधार आन्दोलनोंमें बड़ा अन्तर है। स्वतन्त्र देशोंने शिक्षाके क्षेत्रमें नये नये प्रयोग किये और वैज्ञानिक दृष्टिसे शिक्षा-का स्वरूप और प्रकार निश्चित करनेका प्रयत्न किया। किन्तु भारत-

वर्षोंमें यह सम्भव न था। यहाँ एक विदेशी राजसत्ता क़ायम थी जो अपने अधिकारोंको अधिकसे अधिक स्थायी बनानेके उद्देश्यसे प्रत्येक कार्यका नियमन करती थी। शिक्षा-प्रणाली भी इसी उद्देश्य-को सामने रखकर निश्चित की गई थी। ऐसी अवस्थामें इस देशमें शिक्षाके स्वतन्त्र प्रयोगोंका होना असम्भव था। पहला कार्य तो यही हो सकता था कि देशमें ऐसी संस्थाएँ क़ायम की जायँ जिनमें सरकारी शिक्षा संस्थाओंकी बुराइयाँ न हों। वैज्ञानिक और औद्यो-गिक दृष्टिसे देश बहुत पिछड़ा हुआ था। परवशताके कारण नये वैज्ञानिक आविष्कारोंका इस देशमें होना ही असम्भव हो गया था। संसारकी प्रगतिसे परिचित रहनेका एक मात्र मार्ग यही था कि यहाँकी पाठशालाओंमें पश्चिमके साहित्य और विज्ञानकी शिक्षा दी जाय। यहाँ तक तो सरकारी विद्यालयोंकी उपयोगिताके सभी क़ायल थे। किन्तु उसकी अन्य बुराइयाँ बहुत भयानक थीं। अस्वाभाविक पद्धतिके कारण विद्यार्थियोंकी शारीरिक, मान-सिक और नैतिक शक्तिका ह्रास होता था, उनकी राष्ट्रीय विशेष-ताएँ नष्ट हो जाती थीं। नतीजा यह होता था कि पश्चिमके विज्ञान और साहित्यका ज्ञान उनकी अवस्थाको सुधारनेमें कोई मदद नहीं कर सकता था। अतः आरम्भमें ऐसी संस्थाओंका उदय हुआ जहाँ शिक्षाका पाठ्यक्रम तो अधिकतर सरकारी विद्यालयोंसा ही रहता था, किन्तु रीतिनीति और आचार-व्यवहारकी पद्धति भार-

तीय आवश्यकताओंके अनुकूल रक्खी जाती थी। लेकिन आगे चलकर इस मार्गमें भी बाधाएँ आईं। अनुभवसे यह मालूम हुआ कि सरकारी नियन्त्रणके भीतर रहते हुए विद्यालयोंकी रीतिनीति-में भी अपनी इच्छानुसार नवीनता ला सकना असम्भव है। तब सरकारी नियन्त्रण और निरीक्षणसे स्वतन्त्र होकर शिक्षाका प्रयोग करने वाली संस्थाएँ स्थापित हुईं। ज्यों ज्यों राष्ट्रीय शक्ति बढ़ती गई और राष्ट्रीयताके भावोंका विकास होता गया त्यों त्यों राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओंका रूप भी बदलता गया।

राष्ट्रीय शिक्षाके इतिहासको मोटे तौरपर तीन भागोंमें बांटा जा सकता है—पहला सन् १८७५ ईसवीसे १९०० तक, दूसरा सन् १९०० से १९२० तक और तीसरा सन् १९२० ईसवीसे चल रहा है। पहले कालमें जो संस्थाएँ स्थापित हुईं उन्होंने सरकारके नियन्त्रणमें रहते हुए अपनी शिक्षाप्रणालीमें उतना सुधार करनेका प्रयत्न किया जितना सुधार वह कर सकती थीं। इनमें अलीगढ़के मोहेमडन एेङ्गलो ओरियण्टल कालेज, पूनेके न्यू इँगलिश स्कूल, लाहौरके दया-नन्द एेङ्गलो वैदिक कालेज और काशीके सेण्ट्रल हिन्दूकालेजके नाम गिनाये जा सकते हैं। इसी कालमें स्त्रीशिक्षाके लिये जालन्धरमें कन्या महाविद्यालय और पूनेके समीप हिंगणेमें अनाथबालिकाश्रमकी स्थापना हुई जिन्होंने धीरे धीरे इतनी उन्नति की कि आज वे देशकी प्रथम कोटिकी शिक्षासंस्थाओंमें गिने जाते हैं। किन्तु ये दोनों ही

संस्थाएँ आरम्भसे ही सरकारी नियन्त्रणके बाहर हैं। इनके अतिरिक्त पहिले कालमें जितनी संस्थाएँ स्थापित हुईं उनके अनुभवसे यह साबित हुआ कि सरकारी नियन्त्रणमें रहते हुए शिक्षाप्रणालीमें समुचित सुधार कर सकना असम्भव है अतः दूसरे कालमें ऐसी संस्थाओं का उदय हुआ जो सरकारी नियन्त्रणसे पूर्णतया स्वतन्त्र थीं। इनमें कलकत्तेके बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद (नेशनल कौंसिल आफ ऐजुकेशन, बङ्गाल), पूनेके समीप तलेगावंके समर्थ-विद्यालय, और वृन्दावनके प्रेम महाविद्यालय तथा कांगड़ी और वृन्दावनके गुरुकुलों के नाम गिनाये जा सकते हैं। इसी कालमें कविवर रवीन्द्रनाथने शान्ति-निकेतनमें एक पाठशालाकी स्थापना की जिसने आज 'विश्व भारती' का रूप धारण कर लिया है। किन्तु इसकी स्थापना शिक्षाके सम्बन्धमें स्वतन्त्र प्रयोग करनेके उद्देश्यसे हुई थी। तीसरा काल असहयोग आन्दोलनके साथ आरम्भ होता है। इस कालमें जितनी संस्थाएँ स्थापित हुईं वे सब सरकारी नियन्त्रणसे स्वतन्त्र रहीं। दूसरे कालमें इस तरहकी केवल थोड़ीसी संस्थाएँ क़ायम हुई थीं, किन्तु इस कालमें वे देश भरमें फैल गईं। इन सबके अतिरिक्त थियासोफ़िकल सोसाइटीके लोगोंने भी इस क्षेत्रमें काम किया है। काशीके सेण्ट्रल हिन्दू कालेजकी स्थापनामें अधिकांश उन्हींका हाथ था। मद्रासमें भी उन्होंने कुछ संस्थाएँ क़ायम कीं जो अबतक चल रही हैं। अन्य स्थानोंपर भी थियासोफ़िकल नेशनल

स्कूल हैं। किन्तु इन सबके द्वारा सरकारी विश्वविद्यालयोंकी परीक्षाके लिये ही विद्यार्थी तैयार किये जाते हैं। सुना जाता है कि आजकल वे लोग शिक्षाके एक बृहत् आयोजनपर विचार कर रहे हैं जिसके अनुसार उत्तर और दक्षिण भारतमें ऐसी संस्थाएँ स्थापित की जायँगी जहाँ शिक्षाके सम्बन्धमें विशेष प्रकारके प्रयोग किये जायँ।

पहला काल—सन् १८७५—१९०० ईसवी।

ऊपर जिसे राष्ट्रीय शिक्षाके इतिहासका पहला काल कहा गया है उसमें सरकारी विद्यालयोंसे भिन्न प्रकारकी जितनी संस्थाएँ स्थापित हुईं उनमें चार मुख्य हैं—अलीगढ़का मोहेमडंन ऐंग्लो ओरियण्टल कालेज, पूनेका न्यू इंगलिश स्कूल, लाहौरका दयानन्द ऐंग्लोवैदिक कालेज और काशीका सेण्ट्रल हिन्दू कालेज। अलीगढ़के कालेजको स्थापित करनेमें मुख्य भाग सर सय्यद अहमदका था। आरम्भसे ही आप अंगरेज़ी शिक्षाके पक्षपाती थे। पहले पहल आपने सन १८६१ ईसवीमें मुरादाबादमें एक अंगरेज़ी स्कूल क़ायम किया जो आगे चलकर डिस्ट्रिक्टबोर्डस्कूलमें मिला दिया गया। सन् १८६४ ईसवीमें गाज़ीपुरके अंगरेज़ी स्कूलकी नींव भी, जो आजकल विक्टोरिया स्कूल कहलाता है, आप हीके हाथोंसे रक्खी गई। किन्तु सन् १८६९–७० ईसवीमें इङ्गलैण्डकी यात्रासे लौटनेके बाद

आपने इस ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया। अनेक कारणोंसे अबतक मुसलमान लोग अँगरेज़ी शिक्षासे बचते आ रहे थे। उनके मनमें राजनैतिक कारणोंसे प्रत्येक अँगरेज़ी वस्तुके प्रति घृणाका भाव होना तो स्वाभाविक ही था, किन्तु विचार-सङ्कीर्णताके कारण वे पाश्चात्य विज्ञान और साहित्यका अध्ययन करना भी धर्मविरुद्ध समझते थे। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा डर उन्हें यह था कि अँगरेज़ी स्कूलोंमें पढ़कर मुसलमान लड़के अपना मज़हब और अपनी तहज़ीब छोड़कर ईसाई होने लगेंगे। बङ्गालका उदाहरण उनके सामने था। सर सय्यद अहमदने देखा कि पाश्चात्य विज्ञान और साहित्यके सम्पर्कमें आये विना मुसलमानोंकी उन्नति हो नहीं सकती। इसके लिये उन्होंने कैम्ब्रिज और आक्सफ़ोर्डके आदर्शपर एक विद्यालय क़ायम करना चाहा। किन्तु उसकी सफलताके लिये दो बातें आवश्यक थीं-एक तो मुसलमानोंकी विचार सङ्कीर्णताको दूर करना और दूसरे विद्यालयका वातावरण ऐसा रखना जिससे वहाँ मुसलमान विद्यार्थियोंके उपयुक्त धार्मिक और नैतिक शिक्षाका प्रबन्ध रहे ताकि अपने धर्म और सभ्यताको छोड़कर उनके ईसाई होनेका भय जाता रहे। पहले उद्देश्यकी पूर्ति—अर्थात् मुसलमानोंकी विचार सङ्कीर्णताको दूर करने—के लिये उन्होंने समाज सुधारका काम अपने हाथमें लिया और सामाजिक कुरीतियों तथा रूढ़ियोंके ख़िलाफ़ प्रचार करने लगे। इसके लिये उन्होंने 'तहज़ीबुल अख़-

लाक्' (समाज-सुधारक) नामक एक मासिकपत्र भी निकाला। दूसरे उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन्होंने कालेजकी जो योजना बनाई उसमें मुसलमान विद्यार्थियोंकी धार्मिक और नैतिक शिक्षाको समुचित स्थान दिया और इस बातका प्रयत्न किया कि मुसलमानोंकी शिक्षा पूर्णतया मुसलमानोंके ही हाथोंमें रहे। आखिर सर सय्यद अहमदके अनवरत प्रयत्नोंने तारीख २४ मई सन् १८७५ ईसवीको अलीगढ़के मोहमडन ऐङ्गलोओरियएटल कालेजका रूप धारण किया। सन् १८७६ से आप स्वतः कालेजमें रहकर उसकी देखभाल करने लगे। मुसलमानोंकी शिक्षासम्बन्धी समस्यापर गम्भीरता पूर्वक विचार करने और तदनुसार देश भरमें शिक्षाका प्रचार करनेके उद्देश्यसे आपने सन् १८८६ ईसवीमें 'मोहेमडन एजुकेशनल कान्फ्रेस' की स्थापना की। आजतक इसके अधिवेशन प्रति वर्ष हुआ करते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षाका दूसरा प्रयत्न पूनेमें हुआ और उसका श्रेय श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर तथा लोकमान्य तिलकको है। श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर देशकी राजनैतिक अवस्था और राष्ट्र-निर्माणके विधायक उपायोंपर गम्भीरता पूर्वक विचार करते थे। राष्ट्रका भविष्य देशके शिक्षित समाजपर ही निर्भर है। किन्तु उन्होंने देखा कि वर्तमान सरकारी विद्यालयोंके द्वारा इस दृष्टिसे बड़ा अनर्थ किया जा रहा है। इन विद्यालयोंकी संख्या दिन ब दिन बढ़ती जाती है। उनके द्वारा जो विद्यार्थी निकलते हैं उनमें ज्ञानकी

मात्रा भी बढ़ी हुई रहती है किन्तु स्वाभिमान और स्वदेश-प्रेमका उनमें नाम भी नहीं रहता। सरकारी विद्यालयोंके विद्यार्थियोंके मनमें अपने ऐतिहासिक पुरुषोंके लिये गौरवका होना तो सर्वथा असम्भव है। देशके सच्चे इतिहासका उन्हें कोई ज्ञान नहीं होता। वाशिंगटन और नेपोलियन आदिके जीवन वृत्तान्तोंको पढ़कर उनमें स्फूर्ति आती है। किन्तु अपने देशके इतिहासके ऐसे वीरोंका उन्हें पता ही नहीं चलने पाता। नतीजा यह होता है कि अपने राष्ट्रके लिये गौरवका भाव उनके मनमें रह ही नहीं जाता। सरकारी विद्यालयों की इन कुरीतियोंको दूर करते हुए उचित रीतिसे स्वदेशप्रेम और स्वदेशाभिमानका भाव भरने वाली शिक्षा देनेके उद्देश्यसे पूनेमें तारीख १ जनवरी सन् १८८० ईसवीको न्यू इङ्गलिशस्कूलकी स्थापना हुई। आरम्भमें इसमें केवल तीन शिक्षक थे—श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर, लोकमान्य तिलक और श्री माधवराव नामजोशी। धीरे धीरे इसमें और लोग भी शामिल होते गये और इन सबने मिलकर तारीख २४ अक्टूबर सन १८८४ ईसवीको 'डेकन एजुकेशनल सोसाइटी' की स्थापना की और न्यू इङ्गलिश स्कूल उसकी मातहतीमें रक्खा गया। आगे चलकर फ़र्ग्यूसन कालेज भी इसीके अन्तर्गत खोला गया।

तीसरा प्रयत्न आर्यसमाजसे सम्बन्ध रखता है और पञ्जाबमें आरम्भ हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वतीने हिन्दूसमाजमें एक

क्रान्ति पैदा कर दी थी। उनके उपदेशोंसे समाजके सभी क्षेत्रों नवीन विचारधारा प्रवाहित हो रही थी। सत्यार्थप्रकाशमें उन्हों शिक्षापद्धतिपर भी अपने विचार प्रकट किये हैं। किन्तु उन आदर्शों अनुसार कोई शिक्षासंस्था स्थापित कर सकनेके पहिले ही सा १८८३ ईसवीमें उनका देहान्त हो गया। इसके अनन्तर स्थान स्थानपर जितनी शोक सभाएँ हुईं उन सबमें स्वामीजीके स्मारक स्वरूप एक शिक्षालयकी स्थापनाका विचार आया। (६ नवम्बर १८८३ को) लाहौरकी सभामें इस कार्यके लिये लगभग सात आठ हज़ार रुपये भी एकत्र हो गये और आगे चलकर 'दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक कालेज इंस्टिट्यूशन' की स्थापना हुई। इसके उद्देश्य ये रक्खे गये—

१. स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी स्मृतिमें पञ्जाबमें एक ऐङ्गलो-वैदिक कालेजकी स्थापना करना जिसके द्वारा—
   (क) हिन्दू साहित्यके अध्ययनका प्रबन्ध हो और उसकी उन्नति और सुधारका प्रयत्न किया जाय।
   (ख) प्राचीन संस्कृत और वेदोंकी शिक्षाकी व्यवस्था की जाय।
   (ग) अँगरेज़ी साहित्य और, विज्ञानकी शिक्षाका प्रबन्ध किया जाय।
२. दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालेजमें कलाकौशल सम्बन्धी शिक्षाकी व्यवस्था करना।

इस इंस्टिट्यूशनके द्वारा पहले सन् १८८६ ईसवीमें एक स्कूल खुला। बादको सन् १८८९ ईसवीमें कालेज खोला गया। आरम्भसे ही लाला हंसराज इस संस्थाके प्राण रहे हैं। इसके सञ्चालनमें इस बातका ध्यान रक्खा गया कि प्रबन्ध और शिक्षा सम्बन्धी कार्य हिन्दुओंके ही हाथोंमें रहे। इसके संस्थापक चाहते तो यह भी थे कि शिक्षा निःशुल्क हो, लेकिन आर्थिक कठिनाइयों और विश्वविद्यालयोंके नियमोंके कारण ऐसा न हो सका। फिर भी यहांका शुल्क सरकारी विद्यालयोंसे कम था। विद्यालयमें स्वामी-दयानन्दकी शिक्षाके अनुसार आर्य संस्कृतिकी रक्षा पर विशेष ज़ोर दिया जाता था।

चौथा प्रयत्न काशीमें हुआ जिसमें थियासोफ़िकल सोसाइटीके सदस्योंका भाग मुख्य था। फलतः तारीख़ ७ जुलाई सन् १८९८ ईसवीको सेण्ट्रल हिन्दू कालेजकी स्थापना हुई। इसके प्रथम वार्षिकोत्सवके अवसरपर कालेजके उद्देश्योंपर प्रकाश डालते हुए श्रीमती एनी बीसेण्ट (अब डाक्टर एनीबीसेण्ट) ने कहा 'यह कालेज सरकारी विद्यालयोंके विरोधमें स्थापित नहीं हुआ है। हमने तो केवल उस क्षेत्रको अपनाया है जो अबतक ख़ाली पड़ा था। बार बार सरकारने कहा है कि हिन्दुओंको अपनी धार्मिक शिक्षा अपने हाथोंमें लेनी चाहिये। हमने उसी सलाहकी पाबन्दी की है। हम चाहते हैं कि इस कालेजके द्वारा पश्चिमके साहित्य और विज्ञानकी ऊँचीसे

ऊँची शिक्षाके साथ पूर्वीय देशोंकी ऊँचीसे ऊँची धार्मिक शिक्षा दी जाय। इसके द्वारा सस्तेमें शिक्षा देनेका प्रयत्न किया जाता है पर वह शिक्षा केवल विद्यार्थियोंके लिये ही सस्ती है। शिक्षा देने वालोंको तो वह बहुत मँहगी पड़ती है। यहांके शिक्षक बड़े त्याग और ग़रीबीका जीवन व्यतीत करते हैं।'

इन सबके अतिरिक्त स्त्रियोंकी शिक्षाके लिये भी दो संस्थाएं क़ायम हुईं--पहला जालन्धरका कन्या महाविद्यालय और दूसरा पूनेके समीप हिंगणेका अनाथ बालिकाश्रम। कन्या महाविद्यालय का आरंभ सन् १८८६ ईसवीके सितम्बर महीनेमें एक छोटेसे 'ज़नानास्कूल' के रूपमें हुआ था। बढ़ते बढ़ते १५ जून सन् १८९६ ईसवीको उसने कन्या महाविद्यालयका रूप धारण किया। सरकार की ओरसे लड़कियोंकी शिक्षाका कोई विशेष प्रबन्ध नहीं था। इस विद्यालयका उद्देश्य यही था कि लड़कियोंको ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे योग्य और सुशिक्षिता गृहिणी बन सकें। परदेकी प्रथा और सामाजिक रूढ़ियोंके कारण विद्यालयके अधिकारियोंको अनेक तरहकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। अन्तमें इसके संस्थापक लाला देवराजके प्रयत्नोंको सफलता मिली और आज यह विद्यालय एक उच्चकोटिकी शिक्षा-संस्था है। हिंगणेका अनाथ बालिकाश्रम अनाथ विधवाओंको आश्रय देने और उन्हें शिक्षा देकर स्वावलम्बी बनानेके उद्देश्यसे सन् १८९६ ईसवीमें खोला गया था।

इसके संस्थापक आचार्य कर्वेके प्रयत्नोंसे इसकी बराबर उन्नति होती गई और सन् १९०६ ईसवीमें सधवा स्त्रियों तथा कुमारी बालिकाओंकी शिक्षाके लिये इसके साथ एक महिलाश्रम भी खोला गया। सामाजिक रूढ़ियोंके कारण इस संस्थाके अधिकारियोंको भी अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। अन्तमें उनकी विजय रही और यह कहा जा सकता है कि पूनेका 'श्रीमती नाथी-बाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ' इसीका विकसित स्वरूप है।

इस प्रकार स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी विद्यालयोंको छोड़कर जितनी संस्थाएँ इस कालमें स्थापित हुईं उनका मुख्य प्रयत्न यही था कि सरकारी विद्यालयोंमें जो पाठ्यक्रम प्रचलित है उसके अतिरिक्त धार्मिक और नैतिक शिक्षाका प्रबन्ध करें और शिक्षाकी पद्धतिमें कुछ सुधार करें। दयानन्द ऐंग्लोवैदिक कालेज और सेण्ट्रल हिन्दूकालेज धार्मिक और नैतिक शिक्षापर विशेष ज़ोर देते थे, और न्यू इंगलिश स्कूलमें शिक्षणपद्धतिकी ओर ध्यान दिया जाता था। किन्तु अलीगढ़के कालेजकी अवस्था इन सबसे कुछ भिन्न थी। इसके स्वरूपमें औरोंके साथ यह समानता अवश्य थी कि यहाँ मुसलमानोंकी धार्मिक और नैतिक शिक्षाका प्रबन्ध था। किन्तु इसके कारण भिन्न थे। अबतक जितने सरकारी विद्यालय स्थापित हुए थे उन सबमें अधिकतर हिन्दुओंके ही लड़के पढ़ते

थे। इतने दिनोंके अनुभवसे उन विद्यालयोंकी बुराइयोंसे विद्यार्थियोंको बचानेके लिये और अपने धर्म तथा आचार व्यवहारकी शिक्षा देनेके लिये हिन्दुओंकी संस्थाएँ स्थापित हुईं। लेकिन मुसलमान अबतक सरकारी विद्यालयोंसे प्रायः अलग ही रहे थे। उन्हें स्वतः इन विद्यालयोंसे कोई हानि लाभ नहीं हुआ था। सर सय्यद मुसलमानोंको पाश्चात्यविज्ञान और अँगरेज़ी साहित्यकी शिक्षा दिलाना चाहते थे। अतः उनके मनसे, बालकोंके ईसाई हो जानेका भय दूर करनेके लिये उस कालेजमें धार्मिक शिक्षाकी व्यवस्था की और उसका पूरा प्रबन्ध मुसलमानोंके हाथमें रक्खा गया।

इस स्थलपर एक बात विचारणीय है। इस अवधिमें संयुक्त प्रान्त, पञ्जाब, और महाराष्ट्रमें तो नवीन प्रकारकी संस्थाएँ स्थापित हुईं, किन्तु बङ्गाल और दक्षिणभारतमें एक भी ऐसी संस्था कायम न हुई। अँगरेज़ी शिक्षाका प्रचार बङ्गालसे ही प्रारम्भ हुआ था और नव शिक्षितोंकी संख्या भी वहीं अधिक थी। इसलिये प्रचलित शिक्षा पद्धतिसे जो हानि होती थी वह भी, वहाँ वालोंको अधिक उठानी पड़ी। फिर भी अन्य प्रान्तोंकी भाँति वहाँ ऐसी संस्थाएं स्थापित नहीं हुईं जो हिन्दू धर्म एवम् आचार विचारकी शिक्षाका प्रबन्ध करतीं। इसके दो मुख्य कारण हैं—एक तो यह कि बंगालका धार्मिक आन्दोलन अन्य प्रान्तोंके धार्मिक आन्दोलनोंसे भिन्न प्रकारका था और दूसरे यह कि कलकत्ता विश्वविद्यालयकी

रचना और कार्यप्रणाली कुछ इस तरहकी थी कि उसके द्वारा शिक्षापद्धतिमें थोड़े बहुत सुधार किये जा सकते थे। भारतवर्षका सबसे पहला धार्मिक आन्दोलन ब्रह्म समाज था जो बङ्गालमें शुरू हुआ और जिसका वहाँके शिक्षित समाजपर बहुत प्रभाव था। इसमें और आर्यसमाज प्रभृति अन्य आन्दोलनोंमें एक मुख्य भेद यह था कि यह प्राचीन भारतीय संस्कृतिपर ही विशेष ज़ोर न देकर अपने सिद्धान्तोंका स्वतन्त्र रूपसे प्रतिपादन करता था। जिन जिन धर्मग्रन्थोंसे उन सिद्धान्तोंका समर्थन होता था उन सबके उतने अंशोंको वह मानता था। किसी विशेष ग्रन्थको अपौरुषेय अथवा धर्मका मूल आधार माननेके लिये वह तैयार न था। इस समाजने हिन्दुओंको ईसाई बननेसे रोकनेका प्रयत्न अवश्य किया लेकिन ईसाई धर्मके अच्छे सिद्धान्तोंको स्वयं भी स्वीकार किया। आचार व्यवहार आदिके सम्बन्धमें किसी विशेष पद्धतिपर ज़ोर न देकर जहाँ जो बात अच्छी मालूम हो उसे ही अपनानेकी प्रेरणा की। नतीजा यह हुआ कि ब्रह्मसमाजकी स्थापनाके बाद यहाँके शिक्षित समाजने इस नवीन धर्ममें दीक्षित होकर ईसाइयोंके अनेक प्रकारके आचार विचारोंको भी अपनाया। उसे प्राचीन भारतीय संस्कृतिसे उस प्रकारका प्रेम न रहा जिस प्रकारका उत्तर भारतमें आर्यसमाज की स्थापनासे उत्पन्न हुआ। अतः यहाँ ऐसे विद्यालयोंकी स्थापना नहीं हुई जिनमें हिन्दू धर्म और आचार व्यवहारकी शिक्षापर ज़ोर

दिया जाता। दक्षिण भारतमें किसी संस्थाके उदय न होनेका कारण यह था कि वहाँ अँगरेज़ी शिक्षाके कुपरिणाम उतने उग्र रूपमें प्रगट नहीं हुए थे। संस्कृत साहित्य और हिन्दू दर्शनोंकी शिक्षा वहाँ भलेप्रकार हो रही थी। भारतवर्षकी प्राचीन सभ्यता उनकी आँखोंसे इतनी अधिक ओझल नहीं हुई थी जितनी कि उत्तर भारतवालोंकी। इसीलिये अँगरेज़ी शिक्षाके आरम्भ होनेपर उनकी आँखें चकाचौंध नहीं हुईं और न उनपर पाश्चात्य सभ्यताका बुरा असर ही पड़ने पाया। धार्मिक और सामाजिक दृष्टिसे नये संस्थाओंकी वहाँ आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई। राजनैतिक दृष्टिसे उनकी ज़रूरत अवश्य थी किन्तु राजनैतिक जागृति हुए बिना वे क़ायम हो नहीं सकती थीं। इसी कारण असहयोग आन्दोलके पहिले उस प्रान्तमें स्वतंत्र विद्यालय देखनेमें नहीं आते। किन्तु यह बात केवल ऊँची कही जाने वाली जातिके लोगोंके सम्बन्धमें लागू होती है। दलित जातियोंकी अवस्था ख़राब थी। ईसाई धर्मका प्रचार भी उनके बीच बहुत हुआ। पर उनमें ख़ुद इतनी शक्ति नहीं थी कि अपना सुधार कर सकें और दूसरे लोगोंने इस ओर ध्यान नहीं दिया।

दूसरा काल—सन् १९००-१९२० ईसवी

उपरियुक्त विद्यालयोंकी स्थापनाके बाद ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों इस बातका अनुभव बढ़ता गया कि सरकारी निय-

ज्ञणमें रहते हुए शिक्षापद्धतिमें किसी प्रकारका सुधार कर सकना सम्भव नहीं है। विश्वविद्यालयोंके नियमोंकी पाबन्दी करते हुए अपने आदर्शोंपर चलते रहना असम्भव है। अतः सन् १६०० के बाद ऐसी संस्थाओंका उदय होने लगा जो सरकारी नियन्त्रणसे बिलकुल बाहर थीं। देशका राजनैतिक आन्दोलन भी अब ज़ोर पकड़ता जा रहा था। और आगे चलकर सरकारने विद्यार्थियोंको उसमें भाग लेनेसे रोका। फल स्वरूप स्वतंत्र विद्यालयोंकी स्थापना और भी अधिक तेज़ीसे होने लगी। लेकिन जो संस्थाएँ केवल राजनैतिक आन्दोलनके फल स्वरूप क़ायम हुई थीं वे तो उक्त आन्दोलनके शिथिल होनेपर कमज़ोर होने लगीं या बन्द हो गईं। लेकिन जिनकी स्थापना स्वतन्त्र रूपसे शिक्षा-प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही हुई थी वे बराबर चलती रहीं। इस कालमें जितनी स्वतन्त्र संस्थाएँ क़ायम हुईं उनपर सरकारकी बहुत कड़ी निगाह रहती थी और अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें उन्हें अनेक तरहकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। इस कालकी संस्थाओंमें मुख्य रूपसे कविवर रवीन्द्रनाथके शान्ति निकेतन, गुरुकुल काँगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन, महाविद्यालय ज्वालापुर, बङ्गीयराष्ट्रीय शिक्षा परिषद (नेशनल कौंसिल आफ़ एजुकेशन, बंगाल), समर्थ विद्यालय तलेगाँव, प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन और आन्ध्र जातीय कलाशालाके नाम गिनाये जा सकते हैं।

कविवर रवीन्द्रनाथने अपने पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोरके आश्रम शान्तिनिकेतनमें दिसम्बर सन् १९०० ईसवीमें एक विद्यालयकी स्थापना की। प्राचीन भारतीय ऋषियोंका आदर्श लेकर आपने यह विद्यालय चलाया था। वह इसके द्वारा विद्यार्थियोंको ऐसी शिक्षा देना चाहते थे जिसका जीवनसे निकट सम्बन्ध हो; सरकारी विद्यालयोंका यान्त्रिक स्वरूप आपको बहुत ही असह्य प्रतीत होता था, और उनके द्वारा विद्यार्थियोंके शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तिका जो ह्रास होता था उसे रोक कर प्राकृतिक वायुमण्डलमें स्वाभाविक पद्धतिसे विद्यार्थियोंकी अन्तर्हित शक्तियोंका विकास करनेके उद्देश्यसे आपने यह विद्यालय खोला। धीरे धीरे उन्नति करते करते आज उसने विश्वभारतीका रूप धारण किया है। इसके अन्तर्गत प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयोंके अतिरिक्त एक कालेज और पुरातत्व विभाग तथा एक कलाभवन भी है। यहां लड़कों और लड़कियोंकी शिक्षा साथ साथ होती है।

ऊपर कहा गया है कि सन् १८८६ ईसवीमें लाहौरमें दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालेज इँस्टिट्यूशनकी ओरसे एक स्कूल खुला और आगे चलकर १८८९ ईसवीमें एक कालेज भी क़ायम किया गया। आर्य समाजके लोग जीजानसे इसकी सफलताके लिये काम करते थे। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद शिक्षाके आदर्शको लेकर कार्यकर्ताओंमें

मतभेद हो गया। कुछ लोगोंका ख़याल हुआ कि यहां वैदिक आदर्शोंके अनुकूल शिक्षाका प्रबन्ध नहीं हो रहा है। कालेजके अधिकारी विश्वविद्यालयकी परीक्षाके लिये अधिक कोशिश करते हैं और उत्तम प्रकारकी राष्ट्रीय शिक्षा देनेकी ओर ध्यान नहीं देते। उन्होंने यह भी देखा कि विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध होनेके कारण इसके पाठ्यक्रममें आवश्यक हेर फेर नहीं किया जा सकता। जब उन्हें इस बातका यक़ीन हो गया कि इस कालेजको वैदिक आदर्शोंके अनुकूल बनाना असम्भव है तब वे उससे अलग हो गये और प्राचीन परिपाटीपर एक गुरुकुल खोलनेका निश्चय किया। पञ्जाबकी प्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि सभामें भी दो दल हो गये और आख़िरको दो सभाएँ हो गईं। गुरुकुल पार्टीके नेता थे महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द)। इस दलकी सभाने २६ नवम्बर सन् १८९८ ईसवी को एक गुरुकुल खोलनेका निश्चय किया और स्वामी श्रद्धानन्दके अथक परिश्रमसे २ मार्च सन् १९०२ ईसवीको गुरुकुल कांगड़ीकी स्थापना हुई। इसके बाद संयुक्त प्रान्तकी आर्य प्रतिनिधि सभाने भी शिक्षा प्रचारकी ओर ध्यान दिया। सन् १९०० ईसवीमें सिकन्दराबादमें एक छोटासा गुरुकुल क़ायम हुआ था। आर्यप्रतिनिधि सभाने १ दिसम्बर सन् १९०५ को उसे अपने अधीन लिया। कई बार स्थान परिवर्तन करनेके बाद सन् १९११ ईसवीसे वह वृन्दावनमें गुरुकुल वृन्दावनके नामसे चल रहा है। इन दोनों गुरुकुलोंके

अतिरिक्त सन् १९०७ में हरिद्वारके समीप महाविद्यालय ज्वाला-पुरकी स्थापना हुई।

गुरुकुलोंकी स्थापना आर्यसमाजके द्वारा हुई थी और संस्कृत साहित्य, आर्यसभ्यता एवम् प्राचीन भारतीय आदर्शोंसे इनका विशेष सम्बन्ध था। इनकी स्थापनाके बाद ही दो ऐसी संस्थाएँ स्थापित हुईं जिनका धार्मिक आन्दोलनकी अपेक्षा राज-नैतिक आन्दोलनसे विशेष सम्बन्ध था। ये हैं—कलकत्तेकी बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् और तलेगाँव का समर्थ विद्यालय। २० वीं शताब्दीके आरम्भसे ही देशके राजनैतिक क्षेत्रमें एक नये दलका उदय हो रहा था जो अपनी शिकायतोंको दूर करनेके लिये सरकार-से प्रार्थना करनेके वजाय स्वावलम्बनके मार्गपर विशेष ज़ोर देता था। शासकोंको अच्छृङ्खल मनोवृत्तिने ही राजनैतिक क्षेत्रमें उग्रताका सञ्चार किया था। लार्ड कर्ज़नने अपने कठोर शासनसे उसे और भी अधिक भड़का दिया। कलकत्ता विश्वविद्यालयकी सञ्चालक सभामें अवतक अधिकतर सदस्य ग़ैर-सरकारी थे। नये क़ानूनके द्वारा उन्होंने उसमें सरकार द्वारा मनोनीत सदस्योंकी संख्या बढ़ाई। इसका बहुत विरोध हुआ, पर लार्ड कर्ज़नने किसीकी न सुनी। इस समय लोगोंके मनमें यह बात उठने लगी कि शिक्षाकी सारी व्यव-स्था स्वतन्त्र राष्ट्रीय विश्वविद्यालयके द्वारा होनी चाहिये। इसके बाद ही वङ्ग भङ्गके बाद राष्ट्रीय आन्दोलनने बहुत ज़ोर पकड़ा

वंगालमें वहुत अधिक उत्तेजना फैली। सरकारके निर्णयको न मानने-का निश्चय करनेके लिये जगह जगह सभाएँ होने लगीं। इनमें विद्यार्थी वड़े उत्साहसे भाग लेने लगे। सरकारने उन्हें रोकना चाहा और इसके लिये सरक्यूलर निकाले। विद्यार्थियोंने उस सरक्यूलरकी अवज्ञा की और सरकारी विद्यालयोंसे अलग होने लगे। इनके लिये स्थान स्थानपर राष्ट्रीय पाठशालाएँ खुलने लगीं। अन्तमें ११ मार्च सन् १९०६ ईसवीको कलकत्तेमें वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्की स्थापना हुई जिसने वंगालके राष्ट्रीय विश्वविद्यालयका स्थान ग्रहण किया। तलेगाँवका समर्थ विद्यालय राजनैतिक आन्दोलनका परिणाम नहीं है। किन्तु उसकी शिक्षाकी योजना इस प्रकार वनाई गई जिससे विद्यार्थियोंमें राष्ट्रीय भाव भरे जा सकें और वे स्वतंत्र नागरिक वन सकें। उन्हीं दिनों काशीमें हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाके लिये कोशिश हो रही थी और समर्थ विद्यालयके आचार विचार सम्बन्धी नियम इसीके ढंगपर रक्खे गये। इसके संस्थापक प्रोफ़ेसर विष्णु गोविन्द वीजापुरकर, कोल्हापुरके राजारामकालेजमें अध्यापक थे। अपने राष्ट्रीय विचारोंके कारण वे सन् १९०५ ईसवीमें नौकरीसे अलग किये गये। उसके वादही ११ जून सन् १९०६ को उन्होंने कोल्हापुर-में ही समर्थ विद्यालयकी स्थापना की। दूसरे वर्ष वह वहाँसे उठकर मिरजमें गया और उसके वाद पूनेके समीप तलेगाँव दभाड़ेमें

आ गया। इसी समय प्रोफ़ेसर बीजापुरकरको 'विश्ववृत्त' नामक मासिक पत्रमें एक राजद्रोहात्मक लेख लिखनेके अभियोगमें जेलकी सज़ा हो गई। इस समय देशका राजनैतिक आन्दोलन एक नया रूप ले रहा था। जनतामें अपूर्व उत्साह था। सरकारी विद्यालयों तकके विद्यार्थी राजनैतिक जुलूसोंमें उत्साहके साथ भाग लेते थे। समर्थ विद्यालयके विद्यार्थियोंमें उत्साहका भाव देखकर सरकारको उसे कुचल देनेका बहाना मिला और सन् १९१० ईसवी में उसने इस विद्यालयको ग़ैर 'कानूनी मंजमा' क़रार देकर बन्द कर दिया। जेलसे लौटनेके बाद प्रोफ़ेसर बीजापुरकरने उसे फिरसे चलाना चाहा। बहुत प्रयत्नके बाद सरकार इस शर्तपर उसकी पुनः स्थापना पर राज़ी हुई कि उसके विश्वासपात्र सर महादेवराव चौबल, विद्यालयकी प्रबन्ध कारिणी सभाके अध्यक्ष हों। इस प्रकार ११ नवम्बर सन् १९१८ को नवीन समर्थ विद्यालयके नामसे वह फिर क़ायम हुआ और अब तक चल रहा है। असहयोग आन्दोलन शुरू होनेके बाद प्रोफ़ेसर बीजापुरकर पूनेके तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठके कार्योंमें योग देने लगे। इसपर सर महादेवरावने समर्थ विद्यालयसे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और सरकारको इसकी सूचना भी दे दी। लेकिन देशके राजनैतिक आन्दोलनमें उस समय इतनी शक्ति आचुकी थी कि सरकार विद्यालयको और क्षति नहीं पहुँचा सकी।

वृन्दावनका प्रेममहाविद्यालय देशकी एक बहुत बड़ी कमीको पूरा करनेके उद्देश्यसे क़ायम किया गया। औद्योगिक शिक्षाकी कमी राजा महेन्द्रप्रतापको बहुत खटक रही थी। बौद्धिक शिक्षाके लिये तो अनेक विद्यालय थे किन्तु औद्योगिक शिक्षाके लिये कोई प्रबन्ध नहीं था। कालेजोंसे निकले हुए विद्यार्थियोंका बौद्धिक ज्ञान तो बहुत बढ़ा हुआ रहता था, किन्तु अपने हाथसे वे मामूली काम भी नहीं कर सकते थे; दूसरी ओर देशके कारीगरोंमें बौद्धिक शिक्षा-का बिलकुल अभाव था, अतः वे अपने पेशेमें समुचित उन्नति नहीं कर सकते थे। प्रेममहाविद्यालयकी योजनामें भिन्न भिन्न उद्योगोंकी शिक्षाकी व्यवस्था करनेके अतिरिक्त इस बातका ख़याल रक्खा गया कि औद्योगिक शिक्षाके साथ कुछ साहित्यिक शिक्षा भी दी जाय और बौद्धिक साहित्यिक शिक्षाके विद्यालयोंमें कुछ औद्योगिक शिक्षा भी दी जाय। थोड़े दिनोंसे ग्रामसङ्गठनका काम करने वाले कार्यकर्ताओंकी शिक्षाके लिये भी एक वर्ग खोला गया है।

इन्हीं दिनों आन्ध्रमें भी जातीय-कला-शालाके नामसे एक संस्था-की स्थापना हुई जो अबतक क़ायम है।

तीसरा काल—सन् १९२० ईसवी और उसके बाद।

इधर राजनैतिक आन्दोलनकी तीव्रता बढ़ती गई और राष्ट्रीय-ताके भावोंका भी विकास होता गया। नये भावोंके प्रकाशमें सर-

कारी विद्यालयोंकी त्रुटियां अधिकाधिक स्पष्ट रूपसे दिखाई देने लगीं और स्वतन्त्र रूपसे चलने वाले राष्ट्रीय विद्यालयोंकी आवश्यकता महसूस होने लगी। राष्ट्रीय जीवनमें शक्तिका सञ्चार तो हो ही रहा था। अतः कई स्थानोंपर-शिक्षा समस्यापर गम्भीरता पूर्वक विचार होने लगा। चम्पारनकी जांचके सम्बन्धमें जिन दिनों महात्मा गान्धी बिहारमें गये हुए थे उन्हीं दिनों वहां राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित करनेकी चर्चा छिड़ी। अन्य स्थानोंपर भी यह समस्या विचारवान् लोगोंके मनपर कब्ज़ा किये हुए थी। इसी समय राजनैतिक क्षेत्रमें एक आँधी उठी जिससे समस्त देश हिल उठा। महात्मा गान्धीके असहयोग आन्दोलनने देशमें एक नवीन युगका आरम्भ, और नई शक्तिका सञ्चार किया। राष्ट्रके प्रत्येक अङ्गमें नयी स्फूर्ति दिखाई देने लगी। शिक्षाके क्षेत्रमें भी इस आन्दोलनने क्रान्ति कर दी।

सन् १९२० ईसवीके सितम्बर महीनेमें कांग्रेसका विशेष अधिवेशन कलकत्तेमें हुआ। इस अधिवेशनमें सरकारसे असहयोग करने सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पास हुआ उसके शिक्षा सम्बन्धी अंशका आशय यह था कि 'सरकार अपनी मातहतीमें चलनेवाले स्कूलों द्वारा भी अपनी शक्तिको मजबूत करती है इसलिये लोगोंको चाहिये कि सरकारी अथवा सरकारी सहायताप्राप्त स्कूलों और कालेजों धीरे धीरे अपने बच्चोंको अलग कर लें और उनकी शिक्षाका प्रबन्ध

करनेके लिये भिन्न भिन्न स्थानोंपर राष्ट्रीय स्कूल और कालेज खोलें।' उसी वर्ष दिसम्बरके महीनेमें कांग्रेसका साधारण अधिवेशन नागपुरमें हुआ। इस अधिवेशनमें यह प्रस्ताव और भी अधिक दृढ़ताके साथ दुहराया गया। इस प्रस्तावका आशय यह था कि 'स्कूलोंमें १६ वर्षसे कम उम्रके जितने बालक पढ़ते हैं उनके अभिभावकोंसे कांग्रेस अनुरोध करती है कि वे अपने बालकोंको सरकारी अथवा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलोंसे निकाल कर राष्ट्रीय स्कूलोंमें पढ़ावें या उनकी शिक्षाका कोई दूसरा प्रबन्ध करें; और १६ वर्ष या इससे अधिक उम्रके बालकोंसे कांग्रेस यह अनुरोध करती है कि अगर वे यह समझते हों कि राष्ट्रने जिस शासन-पद्धतिको नष्ट कर देनेका निश्चय किया है उसके नियन्त्रणमें चलने वाली संस्थाओंमें पढ़ना हमारी अन्तरात्माके विचारोंके प्रतिकूल है—तो तुरन्त उन संस्थाओंसे निकल आवें और इस बातका ख़याल तक न करें कि इसका नतीजा क्या होगा; ऐसे विद्यार्थियोंको कांग्रेस सलाह देती है कि या तो वे असहयोग आन्दोलनके सम्बन्धमें देशका कोई काम करें या राष्ट्रीय संस्थाओंमें पढ़ें।'

इन प्रस्तावोंपर बड़े उत्साहके साथ अमल हुआ। देश भरमें विद्यार्थियोंने सरकारी विद्यालयोंसे असहयोग करना शुरू किया। ऐसी परिस्थितिमें जिन स्थानोंपर पहलेसे ही स्वतन्त्र शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करनेका विचार हो रहा था—वहां तो वे कायम हुई हीं,

किन्तु उनके सिवाय तमाम देशमें राष्ट्रीय विद्यालय खुलने लगे
प्रायः सभीका जन्म सन् १९२० के अक्टूबरसे सन् १९२१ के अक्
बरके बीच हुआ। इनमेंसे मुख्य मुख्य संस्थाएँ ये हैं, जो अवत
क़ायम हैं—

गुजरात विद्यापीठ (अहमदाबाद)— १८ अक्टूबर १९२
जामिया मिल्लिया इसलामियां (अलीगढ़)— २९ अक्टूबर १९२
तिलक महाविद्यालय (पूना)— ८ दिसम्बर १९२
विहार विद्यापीठ (पटना)— १० जनवरी १९२१
काशी विद्यापीठ (काशी)— १० फरवरी १९२१

इनके अतिरिक्त लाहौरमें क़ौमी महाविद्यालय, नागपुरमें
तिलक विद्यालय तथा बङ्गालमें गौड़ीय सर्वविद्यायतन भी क़ायम
हुए लेकिन अब वे बन्द हो चुके हैं। ऊपर केवल ऐसे महाविद्यालयों
के नाम दिये गये हैं जो विश्वविद्यालयकी कोटिके हैं। इनके अति
रिक्त हाईस्कूल और प्राइमरी स्कूल तो देश भरमें क़ायम हुए जिन
मेंसे अधिकांश बन्द हो चुके हैं, किन्तु लगभग ६० अबतक चल
रहे हैं।

आरम्भमें दो वर्षों तक राजनैतिक आन्दोलन बहुत ज़ोरपर था।
अतः उस समय उन विद्यालयोंके द्वारा शिक्षाकी अपेक्षा राजनैतिक
कार्य ही अधिक हुए। तात्कालिक उद्देश्य तो यही था कि सरकारी
विद्यालयोंसे निकल कर आनेवाले विद्यार्थियोंके लिये नये विद्या

लयोंका प्रबन्ध किया जाय। शिक्षाकी योजना और पाठ्यक्रमपर उस समय बारीकीसे विचार नहीं किया गया। किन्तु ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों अपनी योजनाको निश्चित स्वरूप देनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। काशीमें सन् १९२३ ई० में २३ फ़रवरीसे ६ मार्च तक एक राष्ट्रीय शिक्षा समितिकी बैठक हुई जिसमें भिन्न भिन्न संस्थाओंके २८ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इस समितिने राष्ट्रीय शिक्षाकी एक योजना तैयार की। लेकिन उसके बाद उस पर अमल नहीं हुआ। असहयोग आन्दोलनकी शिथिलताके साथ अनेक विद्यालय बन्द होने लगे। जो बच रहे उन्होंने अपनी अपनी योजना बनाकर एक निश्चित लक्ष्य अपने सामने रखकर काम करना शुरू किया। पिछले आठ बरसोंमें इन सभी संस्थाओंने अपना अपना स्वरूप निश्चित कर लिया है। प्रायः सभीके अधिकारी और विद्यार्थी अग्रगामी राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनोंके साथ रहते हैं और इनके स्नातक राष्ट्रनिर्माणके भिन्न भिन्न क्षेत्रोंमें काम करते हैं। इन संस्थाओंमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, छूत अछूतका कोई भेदभाव नहीं माना जाता।

तीसरा अध्याय

राष्ट्रीय शिक्षाका स्वरूप और वर्तमान संस्थाएँ।

जैसा कि पिछले अध्यायसे प्रगट होता है, भारतीय ढङ्ग शिक्षाकी व्यवस्था करनेवाली संस्थाएँ १९ वीं शताब्दीके चौं चरणमें ही पहले पहल क़ायम हुईं। इसके बाद ज्यों ज्यों सम बीतता गया, त्यों त्यों नई नई संस्थाएँ स्थापित होने लगीं। इन संस्थाओंके स्वरूप—उनकी कार्यप्रणाली और उनके आदर्शोंमें बराबर भेद होता गया। आरम्भकी संस्थाएँ खासकर दो उद्देश्यों सामने रखकर क़ायम हुईं—एक तो विद्यार्थियोंके लिये धार्मिक औ नैतिक शिक्षाका बन्दोबस्त करना और दूसरे प्रचलित पाठ्यप्रणाली में थोड़ा-बहुत सुधार करना। हिन्दुओंकी संस्थाओंमें हिन्दू धर्म और आचार विचारकी शिक्षा दी जाती थी, मुसलमानोंकी संस्थाओंमें इसलामधर्म और मुसलिम आचार विचारकी हिन्दुओंमें भी आर्यसमाज और सनातनधर्मकी संस्थाएँ अपने अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल व्यवहार करती थीं। ये सब संस्था

सरकारी नियन्त्रणके भीतर रहते हुए काम कर रही थीं। यह हुई उस समयकी बात जिसे राष्ट्रीय शिक्षाके इतिहासका पहला काल कह सकते हैं।

दूसरे कालकी संस्थाओंकी मुख्य विशेषता यह थी कि उन्होंने सरकारसे कोई सम्पर्क नहीं रक्खा। इतने दिनोंके अनुभवसे यह मालूम हो चुका था कि सरकारी नियन्त्रणमें रहते हुए अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल व्यवहार कर सकना कठिन है। अस्तु। इस कालमें जो राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाएँ क़ायम हुईं उनको मोटे तौरपर दो भागोंमें बाँट सकते हैं। पहले भागमें गुरुकुल आदि ऐसी संस्थाएँ आवेंगी जो उन्हीं सिद्धान्तोंपर अमल करना चाहती थीं जिनपर अमल करनेके लिये दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालेजकी स्थापना पहले कालमें हुई थी। दूसरे भागमें वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद आदि ऐसी संस्थाएँ आवेंगी जिन्होंने शिक्षाके क्षेत्रमें नये सिद्धान्त प्रविष्ट किये। इन संस्थाओंमें किसी धर्म विशेषको शिक्षा अथवा विशेष प्रकारके आचार व्यवहारपर ज़ोर नहीं दिया गया। सभी धर्मों और मज़हबोंके विद्यार्थी उनमें पढ़ सकते थे और नैतिक आचार व्यवहारके सम्बन्धमें अपनी स्वतंत्रता क़ायम रख सकते थे। वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्की योजनामें ऐसी व्यवस्था रक्खी गई थी कि जो विद्यार्थी जिस धर्मका मानने वाला हो, उसे उसी धर्मकी शिक्षा दी जाय। बल्कि कुछ लोग इतनेसे भी सन्तुष्ट नहीं

थे। उनका कहना था कि किसी भी प्रकारकी धार्मिक शिक्षा दी
न जाय। सत्य, अहिंसा आदि यम नियमोंके अनुसार विद्यार्थि
आचरणका नियमन किया जाय, लेकिन इन नियमोंका किसी
विशेषसे कोई सम्बन्ध स्थापित न किया जाय। यह, विचारशीलता
उदारता तथा भारतवर्षमें रहनेवाले सभी धर्म के लोगोंकी राष्
एकताका अनुभव होनेके कारण हुआ। पहले कालमें एकता
व्यवहारिक रूप धर्मों और सम्प्रदायोंके भीतर आबद्ध था, कि
दूसरे कालसे यह दीवार टूटने लगी। इसका अर्थ यह नहीं है
इस खयालके लोग अपना अपना धर्म छोड़ने लगे। सभी अ
अपने धर्मपर क़ायम थे—लेकिन धर्मका भेद, राष्ट्रीय एकता
मार्गमें बाधा न डाल सका। इस समयसे धर्मको एक वैयक्ति
वस्तु माननेकी ओर प्रवृत्ति होने लगी। राष्ट्रीय जीवन भी
शक्तिशाली होने लगा था। राजनैतिक क्षेत्रमें स्वावलम्बनपर
दिया जाने लगा था। औद्योगिक शिक्षाका देशमें सर्वथा अभाव
अतः इन संस्थाओंके द्वारा उसका भी प्रबन्ध किया गया। पह
कालमें जो संस्थाएँ क़ायम हुईं उनके अधिकारियोंको इस बात
चिन्ता नहीं करनी पड़ी कि यहाँसे निकलकर विद्यार्थी अप
जीविका किस प्रकार कमाएँगे। क्योंकि सरकारी विद्यालय
विद्यार्थियोंको जो सहूलियतें हासिल थीं वे उनके विद्यार्थियोंको
थीं। किन्तु दूसरे कालकी संस्थाओंको इस बातपर विचार कर

पड़ा। यद्यपि सरकारी कालेजोंके भी बहुत कम ग्रेजुएटोंको सरकारी नौकरियाँ मिलती थीं, किन्तु आशा प्रत्येकको रहती थी। यहाँ वह बात न थी। अतः स्वावलम्बनका पाठ इन विद्यालयोंकी एक बहुत बड़ी विशेषता थी।

राष्ट्रीय एकता और स्वावलम्बनके भावने तीसरे काल तक और भी अधिक जोर पकड़ लिया था। अतः इस कालकी संस्थाओं-में ये विशेषताएँ और भी अधिक स्पष्ट रूपसे देखनेमें आती हैं। सभी विद्यालयोंमें धर्म मज़हब, छुआछूत और जातपाँतका भेदभाव छोड़कर सब काम होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारोंके अनु-सार धर्मका आचरण करनेके लिये स्वतन्त्र है। समाजके सामने प्रत्येक व्यक्ति भारतीय है और अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे किसी धर्म विशेषका अनुयायी—इस सिद्धान्तको लेकर सब धर्मोंके प्रति समान आदरका भाव रखते हुए इन संस्थाओंका कार्यसञ्चालन होता है। मनुष्य मनुष्यके बीच अकारण भेदभाव उपस्थित करने-वाले अस्पृश्यता आदिके भावोंको कोई स्थान नहीं दिया जाता। किन्तु यह साधारण अवस्था हुई। अपवाद स्वरूप कुछ ऐसी संस्थाएँ भी क़ायम हुईं जो किसी सम्प्रदाय विशेषके लिये ही शिक्षा-का प्रबन्ध करती रहीं। जैसे जामिया मिल्लिया इसलामियाँ। इसकी और सब बातें तो इस कालमें स्थापित अन्य संस्थाओंके ही समान हैं, लेकिन धार्मिक शिक्षा और आचार विचारकी दृष्टिसे यह पूर्ण-

तथा इसलाम धर्मसे सम्बन्ध रखती है। किन्तु हिन्दू या अन्य धर्मके विद्यार्थियोंके प्रवेशकी मनाई नहीं है।

शिक्षा संस्थाओंमें पाठ्यक्रम और पाठ्यप्रणाली ही सबसे मुख्य वस्तु है। पहले कालकी संस्थाओंमें तो इस दृष्टिसे कोई विशेषता नहीं थी। उनके हाथ इतने बँधे हुए थे कि वे सरकारी पाठ्यक्रममें अधिक अन्तर कर ही नहीं सकते थे। किन्तु दूसरे कालमें जो संस्थाएँ क़ायम हुई उन्होंने इस ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया। विद्यार्थियोंकी मातृभाषा शिक्षाका माध्यम रक्खी गई। पाठ्यपुस्तकोंके चुनावमें भी सतर्कतासे काम लिया गया। भारतवर्षके इतिहासकी सच्ची घटनाओंपर जोर दिया गया और शिक्षाका प्रकार भी ऐसा रक्खा गया जो भारतीय परिस्थितिके अनुकूल हो। तीसरे कालकी संस्थाओंमें भी स्वभावतः ये सब विशेषताएँ पाई जाती हैं। आरम्भसे ही उच्च शिक्षाके लिये भारतीय भाषाओंमें पाठ्यपुस्तकोंके अभावके कारण कठिनाई पड़ती आ रही है। किंतु नये नये ग्रन्थोंके प्रकाशनके द्वारा इस कठिनाईको हल करनेका उद्योग भी हो रहा है। पाठशालाकी ऊपरकी श्रेणियोंमें तथा कालेजोंमें अँगरेजी भाषाकी शिक्षा तो अनिवार्य रूपसे दी ही जाती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ज्यों ज्यों देशमें राष्ट्रीयताके भाव और राष्ट्रीय शक्तिकी वृद्धि होती गई त्यों त्यों राष्ट्रीय शिक्षाका रूप भी विकसित होता गया। पुरानी संस्थाओंमेंसे जिन

परिवर्तित परिस्थितिकी आवश्यकताओंको पूरा किया और अपनी कार्यप्रणाली राष्ट्रीय शिक्षाकी नई परिभाषाके अनुसार बना ली, या जो नई संस्थाएँ इस परिभाषाके अनुकूल क़ायम हुईं—वे तो इस कोटिमें गिनी जाने लगीं किन्तु शेषका महत्व जाता रहा। इसी कारण दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालेज, न्यू इंगलिश स्कूल, मोहमडन एङ्गलो ओरियण्टल कालेज और सेण्ट्रल हिन्दू कालेज, राष्ट्रीय शिक्षणालयोंकी सूचीसे निकल गये और हिन्दूविश्वविद्यालय तथा अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटीकी गणना भी राष्ट्रीय संस्थाओंमें नहीं की गई।

राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें कुछ लोगोंका यह एतराज़ है कि शिक्षामें राष्ट्रीयताका क्या प्रश्न? शिक्षाका मुख्य उद्देश्य यह है कि विद्यार्थीके भीतर बीजरूपसे जो विशेषता मौजूद हो उसे प्रस्फुटित करना, और प्रस्फुटित होनेपर उसे शक्तिशाली बनाना। जिस प्रकारसे यह उद्देश्य अधिक सफल होगा—वही प्रकार शिक्षाका उत्तम प्रकार होगा। किन्तु भारतवर्षकी वर्तमान परिस्थितिमें इस बातको भुलाया नहीं जा सकता कि सरकारी विद्यालयोंकी योजना इस आदर्शको सामने रखकर नहीं हुई है। ऐसी अवस्थामें इस आदर्श तक पहुँचनेके लिये भी स्वतंत्र विद्यालयोंकी आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि शिक्षा इसीलिये दी जाती है कि मनुष्यके मनसे हर तरहकी सङ्कीर्णताएँ निकल जायँ

और उसका हृदय विशाल हो, किन्तु इसके लिये भी परिस्थि
भिन्नताके साथ उसकी प्रणालीमें भेद होना अनिवार्य है।
स्थानपर जिस प्रणालीसे यह काम पूरा हो सकता है उस स
लिये वही प्रणाली राष्ट्रीय-शिक्षा-प्रणाली है। कलकत्ता विश्ववि
लय कमीशनके सामने इस विषयपर श्री जान उडरफ़ने अपने
रैएडममें कहा था कि—

"यदि शिक्षा का अर्थ है विकसित करना, तो भारतीयोंके
से, सिवाय उनके जातीय संस्कारोंके और किन चीज़ोंका वि
हो सकता है? क्या इसकी अवहेलना करके उसे विदेशी भा
भर देना शिक्षा कहलावेगा? इसका यह अर्थ नहीं है कि
प्रकारके ज्ञानसे चाहे वह पश्चिमी हो या और कुछ उन्हें व
रक्खा जाय। ज्ञान तो ज्ञान है, चाहे वह पूर्वसे आवे या पश्चिम
भारतीय विद्यार्थी यदि पश्चिमकी कोई अच्छी बात सीख कर
पैत्रिक ज्ञानकी वृद्धि कर ले तो उसकी भारतीयतामें कुछ फ़र्क नहीं
जाता। उसका उद्देश्य ही यह है कि भारतीय संस्कृतिको सम्पन्न
और अपना भाव ऐसा रक्खे जिससे इस उद्देश्यकी पूर्तिमें को
यता मिले।"

कांग्रेसने अपने सन् १९२४ के अधिवेशनमें राष्ट्रीय शि
सम्बन्धमें जो प्रस्ताव स्वीकृत किया उसमें कहा गया है कि

'कांग्रेस उन संस्थाओंको राष्ट्रीय शिक्षा संस्था नहीं मान

(१) जिनमें शिक्षाका माध्यम कोई भारतीय भाषा न हो,
(२) जो हिन्दू मुसलिम ऐक्यके लिये कोशिश न करती हों,
(३) जो अछूतोंके बीच शिक्षा प्रचार करने और अस्पृश्यता निवारण करनेका प्रयत्न न करती हों,
(४) जहाँ सूत कातने और रूई धुननेकी शिक्षा अनिवार्य रूपसे न दी जाती हो,
(५) जहाँ शारीरिक व्यायाम और आत्मरक्षाकी शिक्षा अनिवार्य रूपसे न दी जाती हो, और
(६) जहाँ अध्यापक तथा १२ वर्षसे अधिक उम्रके विद्यार्थी हर कामके दिन, कमसे कम आध घण्टा सूत न कातते हों, और सभी अध्यापक तथा विद्यार्थी स्वभावतः ही खादीके वस्त्र न पहनते हों।

इस प्रस्तावके सम्बन्धमें अकसर यह आलोचना की जाती है कि कांग्रेसने राष्ट्रीय शिक्षाका स्वरूप बहुत ही सङ्कुचित कर दिया। किन्तु प्रस्तावके शब्दोंसे स्पष्ट है कि कांग्रेसने इसके द्वारा राष्ट्रीय शिक्षाकी कोई परिभाषा नहीं की है। उसका यह अभिप्राय नहीं है कि जिन संस्थाओंके द्वारा उपरोक्त कार्य होते हों उनके द्वारा और चाहे कोई कार्य हों या न हों—बौद्धिक और साहित्यिक शिक्षा चाहे जैसी दी जाय या न दी जाय—फिर भी वे राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाएँ कहलायँगी। इसका अभिप्राय तो यह है कि शिक्षाका प्रबन्ध करते समय जिन

संस्थाओंमें उपरोक्त बातोंका ख़याल न रक्खा जायगा वे कांग्रे
दृष्टिमें राष्ट्रीय संस्थाएँ न कहलायेंगी। उन बातोंमें खादीको
कर शेष सब ऐसी हैं जिनसे राष्ट्रीयताके भावका विकसित
ही प्रगट होता है। उन शर्तोंके कारण राष्ट्रीय शिक्षाका स्वरूप
उदार होता है न कि सङ्कुचित। खादीकी शर्तके सम्बन्ध में यह
ध्यानमें रखनी आवश्यक है कि कांग्रेस खादीको राष्ट्रीय
समझती है। उसके पिछले अधिवेशनोंके प्रस्तावोंमें यह बात
बार दुहराई गई है कि चरखे और खादीके पुनरुद्धारसे देशकी ग़
बहुत हद तक दूर हो सकती है। कांग्रेसके कार्यक्रमके भीतर र
त्मक कार्य करने वाली संस्थाओंमें चरखासङ्घ ही सबसे प्रमुख
जब कांग्रेसकी दृष्टिमें राष्ट्रीय पुनरुद्धारके लिये खादी इतना मह
पूर्ण स्थान रखती है, तब राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओंमें उसकी अनि
शिक्षा तथा अध्यापकों और विद्यार्थियोंके लिये अनिवार्य रूपसे ख
पहननेकी शर्त लगाना कांग्रेसके लिये स्वाभाविक ही है। यह
विवादग्रस्त हो सकती है कि भारतकी आर्थिक उन्नतिके
खादीको राष्ट्रीय उद्योग बनाना नितान्त आवश्यक है य
किन्तु यह तो निर्विवाद है कि भारतवर्षके राष्ट्रीय जीवनमें ख
आज एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और इस दृष्टिसे कांग्रेसका प्र
असङ्गत प्रतीत नहीं होता। किन्तु यह कांग्रेसका दृष्टिकोण
साधारणतया विचार करते समय उन सब संस्थाओंको

शिक्षा संस्थाओंकी कोटिसे निकाल देना अनुचित होगा, जिनकी कार्यप्रणाली, और सब बातोंमें तो राष्ट्रीय शिक्षाप्रणालीके अनुकूल हो, लेकिन जहाँ खादीका व्यवहार अनिवार्य रूपसे न हो रहा हो।

कुछ लोग यह एतराज़ करते हैं कि अब राष्ट्रीयताका युग चला गया। सारा संसार, वंश, जाति, सम्प्रदाय और राष्ट्रकी दीवारोंको तोड़ रहा है। संसारके अन्य देश विश्वकी अखण्डताका स्वप्न देख रहे हैं और उन्हें आशा है कि एक दिन दुनियाँके सभी देश, एक सूत्रमें बँध जाएँगे। जब राजनैतिक क्षेत्रमें ही इस प्रकारके उदार विचार फैल रहे हैं तब क्या भारतवर्षके लिये यह उचित है कि वह शिक्षा तकको, राष्ट्रीय सङ्कीर्णतासे आच्छादित कर दे। यह एतराज़ एक ग़लतफ़हमीपर अवलम्बित है। भारतवर्षकी राष्ट्रीय शिक्षामें राष्ट्रीय सङ्कीर्णताको बिलकुल ही स्थान नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षा, केवल उन राष्ट्रीय विशेषताओंकी रक्षा करना चाहती है जिन्हें नष्ट कर देनेका प्रयत्न यहाँके विदेशी शासक करते आ रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीयताके भावका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी विशेषताएँ छोड़ दे। यह तो सम्भव भी नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीयता-का भाव यह बतलाता है कि दो राष्ट्रोंके बीच किसी प्रकारका हित विरोध नहीं होना चाहिये, सभी राष्ट्रोंको विश्वकी एकताका अनुभव करना चाहिये। भारतवर्षकी राष्ट्रीय शिक्षाप्रणाली इस आदर्शका विरोध नहीं करती, बल्कि उसीकी ओर अग्रसर होती है।

यदि भारतवर्षपर विदेशियोंका शासन न हुआ होता और उन्होंने इसकी राष्ट्रीय विशेषताओंको नष्ट करके—उसे क्लीव बनाकर—अपनी शक्ति क़ायम करनेका प्रयत्न न किया होता, तो इस शिक्षाका नाम राष्ट्रीय शिक्षा न पड़ता, और न सरकारी नियन्त्रणसे स्वतन्त्र रहनेकी आवश्यकतापर इतना जोर ही दिया जाता। राष्ट्रीय शिक्षाके द्वारा राष्ट्रीय संस्कृतिको सम्पन्न करने और राष्ट्रीय साहित्यकी सर्वांगीण उन्नति करनेका प्रयत्न किया जाता है। इसके लिये दूसरी सभ्यता और दूसरे साहित्योंसे जितनी सहायता ली जा सके उतनी ली जाती है—लेकिन जिस हद तक वह भारतीय सभ्यताको परिपुष्ट करने एवम् भारतीय साहित्यको समृद्ध करनेमें सहायक हो उसी हद तक। भारतवर्षकी वर्तमान परिस्थितिमें राष्ट्रीय शिक्षाका यह भी अर्थ है कि इसके द्वारा ऐसी शक्ति प्राप्त हो जिससे राष्ट्रकी परतन्त्रता दूर हो। और जबतक भारतवर्षके समाजमें धर्म और जातिकी दीवारें इस भाँति खड़ी हैं कि उनसे मनुष्य मनुष्यके बीच ईर्ष्या और द्वेषकी वृद्धि होती है तबतक राष्ट्रीय शिक्षाका एक विशेष लक्षण यह भी होगा कि वह धर्म और जातिके इस घातक भेदभावको मिटावे और जनतामें ऐसे भावका सञ्चार करे जिससे वह मनुष्य मनुष्यके बीच इस प्रकारका अन्तर न करे। इन आदर्शोंको प्रा[illegible] रखते हुए मानसिक और शारीरिक शक्तियोंके सर्वांगीण विका[illegible] प्रयत्न करना राष्ट्रीय शिक्षाका उद्देश्य है।

वर्तमान ग़ैर सरकारी शिक्षासंस्थाओंको मोटे तौरपर पांच भागोंमें बाँटा जा सकता है—

(१) जिनका सम्बन्ध आर्यसमाजसे है। इस कोटिमें विशेष रूपसे उल्लेखनीय ये संस्थाएँ हैं—
 १ गुरुकुल कांगड़ी और उसकी शाखाएँ
 २ गुरुकुल वृन्दावन
 ३. महाविद्यालय ज्वालापुर

(२) जिनका सम्बन्ध किसी धार्मिक या सामाजिक आन्दोलनसे नहीं है, वरन् जो देशकी राजनैतिक जागृतिके फलस्वरूप उत्पन्न हुईं, लेकिन जिनका जन्म असहयोग आन्दोलनके पहलेही हो चुका था। इस कोटिमें इन संस्थाओंके नाम गिनाये जा सकते हैं—
 १. वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद (नैशनल कौंसिल आफ़ एजुकेशन बङ्गाल) और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ
 २. नवीन श्री समर्थ विद्यालय तलेगांव दाभाड़े
 ३ प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन

(३) जो संस्थाएँ असहयोग आन्दोलनके समय स्थापित हुईं। इनकी संख्या सबसे अधिक है। इस कोटिमें ये नाम गिनाये जा सकते हैं—
 १. काशी विद्यापीठ काशी, और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ

२. गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद, और उससे सम्बद्ध संस्थाएं
३. तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ पूना, और उससे सम्बद्ध तथा उसके द्वारा स्वीकृत, महाराष्ट्रकी अन्य संस्थाएँ
४. बिहार विद्यापीठ पटना और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ
५. जामिआ मिल्लिया इसलामियां, दिल्ली और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ

(४) जिन संस्थाओंका सम्बन्ध न तो किसी धार्मिक या सामाजिक आन्दोलनसे है और न किसी राजनैतिक आन्दोलनसे, लेकिन जो स्वतन्त्र रूपसे शिक्षाके सम्बन्धमें नये नये वैज्ञानिक और शास्त्रीय प्रयोग करती हैं। इनमें मुख्य रूपसे ये दो संस्थाएँ हैं-

१. विश्वभारती, शान्तिनिकेतन
२. श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन, भावनगर

(५) स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ। इनमें मुख्य मुख्य ये हैं—

१. कन्या महाविद्यालय, जालन्धर
२. कन्या गुरुकुल, देहरादून
३. अनाथ बालिकाश्रम, हिंगणें
४. श्रीमती नाथी बाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ पूना, तथा इससे सम्बद्ध अन्य संस्थाएँ।

इनमेंसे स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी संस्थाओंको छोड़कर शेषमेंसे विश्वभारती, गुजरात विद्यापीठ और दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवनको

सहशिक्षणकी पद्धति है। लड़कियाँ और लड़के साथ साथ पढ़ते हैं। तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठमें भी लड़कियाँ पढ़ सकती हैं। शेष संस्थाएँ केवल लड़कोंकी शिक्षाके लिये हैं।

चौथा अध्याय।

विशेषताएँ और सामान्य अवस्था।

इन सब संस्थाओंकी पहली विशेषता तो यह है कि सभीं
शिक्षाका माध्यम मातृभाषा है। विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा देने
नियम भारतवर्षके सरकारी विद्यालयोंको छोड़कर और कहीं देखने
न आवेगा। उसका ज्ञान प्राप्त करनेमें शक्तिका कितना अपव्य
होता है, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है। जितना समय कि
शास्त्रका साधारण ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पर्याप्त होता उत
समय विदेशी भाषाके ही सीखनेमें चला जाता है और तब श
उस शास्त्रकी शिक्षा आरम्भ होती है। राष्ट्रीय विद्यालयोंमें शिक्षा
माध्यम मातृभाषा होनेसे, वहाँ समय और शक्तिका यह अपव्
नहीं होने पाता। जितना ज्ञान विदेशी भाषाके द्वारा दस व
मिलेगा उतना मातृभाषाके द्वारा आठ वर्षोंमें ही प्राप्त कर लिया
सकता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रीय विद्याल
विदेशी भाषाकी शिक्षाको कोई स्थान ही नहीं है। प्रायः सभी

अँगरेजी भाषाकी शिक्षा अनिवार्य रूपसे दी जाती है। वर्त्तमान परिस्थितिमें संसारकी प्रगतिसे सम्बन्ध रखनेके लिये भारतवर्षमें अँगरेजीकी शिक्षा आवश्यक है। प्रान्तीय भाषाओंमें अभी भिन्न भिन्न शास्त्रोंकी पाठ्य पुस्तकें भी इतनी तैयार नहीं हुई हैं, कि केवल उन्हींके आधारपर शिक्षाकी व्यवस्था की जा सके। इसके अतिरिक्त दूसरी भाषा और साहित्यका ज्ञान प्राप्त करके अपने साहित्यकी उन्नति करना हर हालतमें आवश्यक और वाञ्छनीय है। एतराज तो इस बातपर किया जाता है कि विदेशी भाषा शिक्षाकी माध्यम हो। विद्यार्थियोंको प्रत्येक शास्त्रका ज्ञान अपनी भाषाके द्वारा मिलना चाहिये। उसके बाद भिन्न भिन्न साहित्योंके ज्ञान भण्डारसे परिचित होनेके लिये तो उन भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करना ही होगा। भारतवर्षमें प्रान्तीय भाषाओंको शिक्षाका माध्यम बनाने के सम्बन्धमें कुछ लोगोंका एतराज यह है कि ये भाषाएँ समृद्ध नहीं हैं, इनके साहित्यमें वह भण्डार ही नहीं है जिससे शिक्षा दी जा सके। किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि संसारकी किसी भी भाषाके इतिहासमें कोई ऐसा समय न था जब कि उसके द्वारा शिक्षा तो न दी जाती हो, लेकिन उसका साहित्य समृद्ध रहा हो। भारतीय भाषाओंकी अवस्था पिछड़ी हुई होनेका एक मात्र कारण तो यही है कि ये भाषाएँ शिक्षाका माध्यम नहीं हैं। आजसे पचास वर्ष पहले जापानी साहित्य बहुत ही पिछड़ा हुआ था। आज वह बहुत

उन्नत हो गया है, क्योंकि उसमें आवश्यकताके अनुसार नये नये ग्रन्थोंका निर्माण होता गया। यदि वहाँ भी शिक्षाका माध्यम कोई विदेशी भाषा रक्खी जाती तो जापानी साहित्यको उन्नति करनेका कोई अवसर न मिलता। भारतवर्षमें भी जबसे मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेकी व्यवस्था शुरू हुई तबसे भारतीय भाषाओंका साहित्य दिन प्रति दिन उन्नति कर रहा है। मुख्य मुख्य संस्थाओंमें शिक्षा-विभागके साथ साथ एक एक प्रकाशन विभाग भी है जिनके द्वारा सभी कोटिके ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं। धीरे धीरे प्रान्तीय भाषाओंमें पाठ्य पुस्तकोंके मिलनेकी कठिनाई दूर होती जा रही है।

दूसरी विशेषता है इनकी शिक्षा पद्धतिकी स्वाभाविकता। सरकारी विद्यालयोंकी कार्यप्रणालीको देखकर जो बात एकाएक खटकती है, वह है उनके अध्यापकों और विद्यार्थियोंके बीचका सम्बन्ध। क्लासरूमके बाहर दोनोंके बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। थोड़ेसे अध्यापक वहाँ भी ऐसे मिलेंगे जो अपने स्वभाव और चरित्रसे विद्यार्थियोंको अपनी ओर आकर्षित करते हैं और जीवनके प्रत्येक अङ्गमें उनकी सहायता करनेका प्रयत्न करते हैं। किन्तु विद्यालयोंकी रचनामें इस विशेषताको कोई स्थान नहीं है। राष्ट्रीय विद्यालयोंकी कार्यप्रणालीको देखकर ही यह मालूम हो जायगा कि वहाँ अध्यापकों और विद्यार्थियोंका सम्बन्ध केवल क्लासरूमके भीतरका नहीं है। विद्यालयोंका कार्यक्रम और रीति-नीति निर्धारित

करनेमें इस बातपर ध्यान रक्खा जाता है कि ये विद्यालय, अध्यापकों और विद्यार्थियोंके एक सम्मिलित परिवारका रूप धारण करें। नियम पालन करानेकी व्यवस्था, किसी दण्डका भय दिलाकर नहीं, वरन् उन नियमोंकी उपयोगिता बतलाकर की जाती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी संस्थाओंमें पूरी तरह इस आदर्शके अनुकूल व्यवहार होने लगा है। कमी बहुत कुछ है, किन्तु कार्यप्रणाली इसी सिद्धान्तको सामने रखकर निश्चित की जाती है।

पाठ्यक्रमके सम्बन्धमें सबकी अपनी अपनी विशेषताएं हैं। कहीं संस्कृतको अधिक महत्व दिया गया है तो कहीं समाजशास्त्र और वर्तमान इतिहासको। किन्तु पाठ्यपुस्तकोंके चुननेमें सर्वत्र इस बातका ध्यान रक्खा गया है कि देशकी सच्ची अवस्थासे विद्यार्थियोंका परिचय हो, प्रत्येक विषयका अध्ययन भारतवर्षकी दृष्टिसे कराया जाय, भारतीय इतिहासकी सच्ची घटनाएं बतलाई जायँ और अर्थशास्त्रकी शिक्षा देते समय भारतीय परिस्थितिकी विशेषताओं और उसकी आवश्यकताओंकी विवेचना की जाय। गुजरात विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ और गुरुकुल कांगड़ीमें भारतीय अर्थशास्त्रके अध्ययनपर विशेष ज़ोर दिया गया है।

शिक्षा-संस्थाके लिये जितनी आवश्यकता विद्यार्थीके बौद्धिक विकासका प्रयत्न करने की है, उतनी ही, बल्कि उससे भी अधिक, आवश्यकता इस बात की है कि उनके चरित्रगठनकी ओर ध्यान दिया

जाय तथा आचार विचार और रहन सहनका परिष्कार किया जाय। जहाँ सरकारी विद्यालयोंमें इस बातका ख़याल ही नहीं रक्खा जाता, वहाँ राष्ट्रीय विद्यालय इसे अपनी एक विशेषता बनाना चाहते हैं। किन्तु यह तभी सम्भव है जब अध्यापकोंका निर्वाचन बड़ी सतर्कता-से किया जाय--केवल इस बातका ख़याल न रक्खा जाय कि उनका शास्त्रज्ञान कितना अधिक है, वरन् उनके जीवनकी उच्चताकी ओर भी ध्यान दिया जाय। यह कहना अनुचित होगा कि इन सब राष्ट्रीय विद्यालयोंके अध्यापक इसी उच्चकोटि के हैं। लेकिन विद्यालयोंका झुकाव अवश्य ही ऐसे अध्यापकोंका संग्रह करनेकी ओर है। सरकारी विद्यालयोंमें ऐसे अध्यापक न हों—ऐसी बात नहीं है। किन्तु सरकारी शिक्षा विभागका सङ्गठन ऐसे अध्यापकोंके संग्रहको प्रोत्साहन नहीं देता। शिक्षा विभाग भी सरकारके अन्य महकमोंकी तरह एक महकमा है। जिस तरह अन्य महकमोंमें लोग जीविका उपार्जन के लिये नौकरी करते हैं, उसी प्रकार शिक्षा विभागमें भी करते हैं। यह अवस्था शिक्षणकार्यकी गुरुताको नष्ट करती है। राष्ट्रीय विद्यालयोंमें ऐसे अध्यापक अधिक तादादमें मिलेंगे, जिनके लिये अध्यापनकार्य जीविकोपार्जनका साधन नहीं, वरन् जीवनका लक्ष्य है।

भारतवर्षकी पुरानी परिपाटी निःशुल्क शिक्षा देनेकी थी। विद्यार्थी या उसके अभिभावकको विद्यार्थीके भरणपोषणकी भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। समाजके वर्तमान सङ्गठनमें अध्यापक

उसी पद्धतिके अनुसार कार्य कर सकना असम्भव है। लेकिन सभी सभ्य देशोंमें इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि शिक्षा सुलभ हो। प्रारम्भिक शिक्षा तो मुफ़्त ही दी जाय, साथही ऊँची शिक्षा देनेके लिये भी अधिक से अधिक सुविधाएं की जायँ। ज्ञानका भण्डार ग़रीब अमीर सबके लिये समान रूपसे खुला रखनेका प्रयत्न किया जाय। लेकिन भारतवर्षके सरकारी विद्यालयोंमें शुल्क और विद्यार्थियोंके रहन सहनका ख़र्च इतना अधिक पड़ता है कि सामान्य अवस्थाके मनुष्यको अपनी सन्तानकी शिक्षाका प्रबन्ध करनेमें बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं। राष्ट्रीय विद्यालयोंमें यह बात नहीं है। अधिकांश स्थानोंपर तो शिक्षा बिलकुल निःशुल्क है, और जहाँ शुल्क लिया भी जाता है वहाँ बहुत कम।

यह तो वे बातें हुईं जो सभी संस्थाओंमें पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक संस्थाकी वैयक्तिक विशेषताएं हैं। हर एकका अपना अपना लक्ष्य है और उसके अनुसार उनके आन्तरिक प्रबन्ध और पाठ्यक्रममें भिन्नता है। गुरुकुलोंकी स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वतीके आदर्शों और सिद्धान्तोंके अनुसार हुई है। ब्रह्मचर्यका पुनरुद्धार और प्राचीन आर्यसंस्कृतिको पुनरुज्जीवित करना इनका विशेष लक्ष्य है। गुरुकुलोंमें कांगड़ीके गुरुकुलका स्थान सर्वोत्कृष्ट है। वेदारम्भ संस्कारके बाद ही बालक प्रविष्ट किये जाते हैं। अभिभावकोंको यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि २५ वर्षकी आयुके पूर्व ब्रह्मचारीका

विवाह या वाग्दान संस्कार नहीं करेंगे। अधिकारी परीक्षासे उत्तीर्ण होकर महाविद्यालय (कालेज) में प्रवेश करते समय ब्रह्मचारीको स्वयं भी यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। पाठ्यक्रममें संस्कृत भाषा और वैदिक साहित्यके अध्ययनपर विशेष ज़ोर दिया गया है। प्रारम्भिक श्रेणियोंके छोटे छोटे बच्चे भी संस्कृतके श्लोकोंका शुद्ध और स्पष्ट उच्चारण करते हैं। संस्कृत भाषा और वैदिक साहित्यपर विशेष ज़ोर दिये जानेका यह अर्थ नहीं है कि अन्य विषयोंकी उपेक्षा की जाती है। सरकारी विद्यालयोंमें जिन विषयोंकी पढ़ाई होती है उन सबकी यहाँ भी होती है और उनमें विद्यार्थियोंके ज्ञानकी मात्रा कम नहीं होती। महाविद्यालय तीन भागोंमें विभक्त है—वेद महाविद्यालय, गुरुकुल महाविद्यालय और आयुर्वेद महाविद्यालय। वेद महाविद्यालयसे उत्तम कोटिके वेद प्रचारक गुरुकुल महाविद्यालयसे सच्चे देशसेवक, सम्पादक और लेखक तथा आयुर्वेद महाविद्यालयसे ब्राह्मण वृत्तिके वैद्य उत्पन्न करना—इस गुरुकुलका ध्येय है। गुरुकुल महाविद्यालयमें अर्थशास्त्रकी शिक्षा भारतीय परिस्थितिका ख़याल रखकर दी जाती है। व्रताभ्यास परीक्षाप्रणाली, इस गुरुकुलकी एक और विशेषता है। इसका उद्देश्य यह है कि ब्रह्मचारी अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक कर्तव्योंको जिम्मेदारीके साथ, बिना किसी तरहके शासन भयके, नियमपूर्वक पूरा करें। प्रत्येक विद्यार्थीके पास एक व्रताभ्यास-पत्रिका होती है, जिसमें वह प्रतिदिन यह

लिखता जाता है कि किन किन नियमोंका उसने यथासमय पालन किया, और यदि वह किन्हीं नियमोंका पालन नहीं कर सका तो क्यों? प्रत्येक मासके अन्तमें इस लेखेके अनुसार अङ्क दिये जाते हैं। यद्यपि इस गुरुकुलका सारा कार्य आर्यसमाजके सिद्धान्तोंके अनुसार होता है, किन्तु यहाँके वातावरणमें साम्प्रदायिक सङ्कीर्णता नहीं पाई जाती। गुरुकुलके सञ्चालक इस बातपर विश्वास करते हैं कि सभी धर्मोंमें सत्यका अंश है और सभीके लिये उनके मनमें आदरका भाव है। निस्सन्देह अपने धर्मको वे अन्य धर्मोंसे ऊँचा समझते हैं। गुरुकुल वृन्दावनका कार्य भी इन्ही आदर्शोंके अनुकूल होता है, लेकिन साधनोंकी कमीके कारण वहाँका प्रवन्ध गुरुकुल काँगड़ीकी अपेक्षा कुछ नीचे दरजेका है। महाविद्यालयमें इतिहास अर्थशास्त्र रसायन आदि विषयोंकी शिक्षा नहीं दी जाती। मोटे तौरपर कहा जा सकता है कि गुरुकुल काँगड़ीके गुरुकुल महाविद्यालयकी कोटि-का कोई महाविद्यालय यहाँ नहीं है। महाविद्यालय ज्वालापुरमें संस्कृत भाषा और वैदिक साहित्यकी शिक्षापर ही विशेष ज़ोर दिया जाता है। काँगड़ी और वृन्दावनके गुरुकुलोंमें जातपांत छुआछूतका भेदभाव नहीं माना जाता। पर महाविद्यालय ज्वाला-पुरमें शूद्र कहलानेवाली जातियोंके विद्यार्थी नहीं लिये जाते।

वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्के अधीन बङ्गालके भिन्न भिन्न स्थानोंमें १४ राष्ट्रीय विद्यालय हैं, जहाँ परिषद्के पाठ्यक्रमके अनु-

सार शिक्षा होती है। किन्तु इस परिषद्का मुख्य कार्य आजकल 'कालेज आफ़ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी, बेङ्गाल' के द्वारा होता है जो कलकत्तेके समीप जादवपुरमें है। यहाँ मिकैनिकल इञ्जिनियरिंग, इलेक्ट्रिकल इञ्जिनियरिङ्ग और केमिकल इञ्जिनियरिङ्गके कालेज हैं। इनके अतिरिक्त जूनियर टेकनिकल कोर्स, 'सर्वे, और ड्राफ्ट्समैनशिप' और 'मिकैनिकल अपरेण्टिस' की भी शिक्षाका प्रबन्ध है। एक प्रकाशन-विभाग भी है जिसके द्वारा बँगला भाषामें विविध विषयोंपर उच्च कोटिके ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं।

प्रेम महाविद्यालयकी ख्याति उसके शिल्प विद्यालयोंके कारण है। किन्तु यहाँ एक साधारण हाईस्कूल और वाणिज्य (कामर्स) शिक्षा विभाग भी है। सन् १९२८ ईसवीसे ग्राम कार्यकर्ता शिक्षण विभाग भी खोला गया है। शिल्प विद्यालयोंमें मिकैनिकल इञ्जिनियरिङ्गका एक कालेज है जिसका पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है। मैट्रिकुलेशनकी योग्यता रखने वाले विद्यार्थी उसमें लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बढ़ईगीरी और लोहारी, ग़लीचा बुनना, चीनीके खिलौने और बर्तन बनाना, दर्जीका काम, लोहेका ढालना खराद और फिटिङ्गका काम—इन सबके भी अलग अलग विद्यालय हैं। इन विद्यालयोंमें उपरोक्त शिल्पोंके साथ साथ कुछ साहित्यिक शिक्षा भी दी जाती है। इसी प्रकार हाईस्कूलमें साहित्यिक शिक्षा-के अतिरिक्त कुछ शिल्प शिक्षा भी अनिवार्य है। ग्रामकार्यकर्ता

शिक्षण विभाग उन लोगोंके लिये खोला गया है जो ग्राम सङ्गठनका काम करना चाहते हों और ग्रामवासियोंको उनकी आर्थिक, सामाजिक, सफ़ाई एवम् शिक्षा सम्बन्धी अवस्थाको सुधारनेमें विचारपूर्ण और व्यावहारिक सहायता पहुँचाना चाहते हों। यहाँ ग्राम्य जीवन और ग्राम सङ्गठनके कार्यके सम्बन्धमें आवश्यक, भिन्न भिन्न विषयोंकी सुसम्बद्ध, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। पाठ्यक्रम दो वर्षों का है। उलट फेर करके विद्यार्थियोंको आधा समय विद्यालयमें और आधा गाँवोंमें व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करनेके लिये बिताना पड़ता है।

तलेगांवके नवीन श्री समर्थ विद्यालयकी विशेषता यह है कि वहाँ बौद्धिक और साहित्यिक शिक्षाके साथ शिल्प शिक्षा भी दी जाती है। विद्यालयमें सात श्रेणियाँ हैं पहली और दूसरी श्रेणियोंमें शिल्पकी ओर रुचि उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे ही शिल्प शिक्षाका पाठ्यक्रम रक्खा गया है। इसके बाद एक एक वर्ष तक बुनाई, खेती, और बढ़ईगीरीकी साधारण शिक्षा दी जाती है। छठवीं और सातवीं श्रेणियोंमें शिल्प शिक्षाको प्रधानता दी गयी है। खेती, बढ़ईगीरी और लोहारी, चित्रकला, और चीनी मिट्टीके बर्तन बनाना इनमेंसे कोई एक काम अपनी रुचिके अनुसार विद्यार्थीको लेना पड़ता है। प्रथम पाँच वर्षोंमें प्रति सप्ताह विद्यालयका १/४ समय शिल्पशिक्षाके लिये और ३/४ साहित्यिक शिक्षाके लिये दिया जाता है। अन्तिम दो

श्रेणियोंमें यह क्रम उलट दिया जाता है। $\frac{1}{4}$ साहित्यिक शिक्षाके लिये और $\frac{3}{4}$ शिल्पशिक्षाके लिये दिया जाता है। साहित्यिक विषयोंमें मराठी, संस्कृत, गणित, इतिहास, भूगोल, अंग्रेज़ी और विज्ञानकी शिक्षा दी जाती है। साम्प्रदायिकतासे अलग रहते हुए धार्मिक और नैतिक शिक्षा भी दी जाती है।

असहयोग आन्दोलनके समय जितने विद्यापीठ क़ायम हुए उन सबका देशके राजनैतिक आन्दोलनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। गुजरात विद्यापीठका मुख्य उद्देश्य है, स्वराज्य प्राप्तिके चलते हुए आन्दोलनोंके लिये शिक्षा द्वारा चरित्रवान, शक्ति सम्पन्न, संस्कारी और कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ता तैयार करना। यहाँ खादीको केन्द्रमें रखकर सब शिक्षाकी योजना की गयी है। आरम्भसे अन्त तक सभी श्रेणियोंके पाठ्यक्रममें बौद्धिक और औद्योगिक शिक्षाको एक सा स्थान, महत्व और समय दिया जाता है। पुरातत्व विभागसे प्राचीन खोज और पुस्तक प्रकाशनका कार्य होता है। शिक्षा विभागमें प्रारम्भिक शालाकी पहली श्रेणीसे कालेजकी अन्तिम श्रेणी तकका पाठ्यक्रम उपरोक्त प्रकारसे बनाया गया है। भारतीय अर्थशास्त्रके अध्ययनपर विशेष ज़ोर दिया जाता है और देहातोंकी आर्थिक स्थिति का निरीक्षण करके भारतवर्षका स्वतन्त्र अर्थशास्त्र निर्माण करनेका प्रयत्न किया जाता है। शिक्षाका माध्यम तो गुजराती भाषा है ही हिन्दोस्तानी भाषा भी राष्ट्रभाषाके तौरपर अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जा

है। अँगरेज़ीको पाठ्यक्रममें कोई विशेष स्थान नहीं दिया गया है। किन्तु प्रत्येक विद्यार्थीके लिये अंगरेज़ी, बँगला, हिन्दी और मराठी, इन चार अर्वाचीन भाषाओंमेंसे किसी एकका सीखना आवश्यक है, और आजकल विद्यापीठमें केवल अंगरेज़ीका ही प्रबन्ध है। कालेजका पाठ्यक्रम चार वर्षोंका है। प्रथम वर्षमें गुजराती, अर्वाचीन भाषा, उर्दू, सम्पत्ति शास्त्र, संसारके इतिहासकी रूप रेखा, राष्ट्रीय प्रगतिका इतिहास और संस्कृतकी शिक्षा होती है। अन्तिम तीन वर्षोंमें विद्यार्थी साहित्य मन्दिर, समाज विद्या-मन्दिर और वाणिज्य मन्दिरमेंसे किसी एकके पाठ्यक्रमके अनुसार पढ़ता है, किन्तु इन सभी मन्दिरोंमें भारतीय सम्पत्तिशास्त्र, गांवोंकी आर्थिक अवस्था, वही खाता और हिन्दी-उर्दू अथवा संस्कृत अनिवार्य विषय हैं। अर्थ शास्त्रकी शिक्षा महात्मा गान्धी, रस्किन और टाल्स्टायकी दृष्टिसे दी जाती है। यों तो इस विद्यापीठमें हाईस्कूल और कालेजके पाठ्यक्रमभी इसी दृष्टिसे बनाये गये हैं कि यहाँसे शिक्षा पाकर निकले हुए स्नातक स्वराज्य प्राप्तिके लिये काम करेंगे। किन्तु ग्रामसङ्गठनके लिये कार्यकर्ता तैयार करनेके उद्देश्यसे इसी वर्ष एक ग्राम सेवा मन्दिर अलग भी खोला गया है। इसमें मैट्रिकुलेट और स्नातक लिये जाते हैं। स्नातकोंको तरजीह दी जाती है। विद्यापीठमें विद्यार्थियों और अध्यापकों सबके लिये शुद्ध खादीके वस्त्र पहिनना और सूत कातना अनिवार्य है। जातपांत और छुआछूतका भेद भाव नहीं

माना जाता। यहाँ आरम्भसे अन्त तक लड़के और लड़कियोंकी शिक्षा साथ साथ होती है। किन्तु लड़कियोंकी संख्या बहुत कम है।

विहार विद्यापीठमें स्कूल और कालेजके पाठ्यक्रम क्रमशः आठ और तीन वर्षोंके हैं। कालेज दो खण्डोंमें बटा हुआ है—एकके द्वारा राष्ट्रीय विद्यालयोंके लिये शिक्षक तैयार किये जाते हैं और दूसरेके द्वारा ग्रामसंगठनके लिये कार्यकर्ता। हिन्दी और अँगरेजी सबके लिये अनिवार्य विषय हैं। इनके अतिरिक्त शिक्षण विभागके विद्यार्थी गणित, संस्कृत, और इतिहास अर्थशास्त्र राजनीतिमेंसे कोई एक विषय ले सकते हैं। ग्रामसंगठन विभागके विद्यार्थियोंको अनिवार्य रूपसे इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीति ही लेना होता है। इन्हें अर्थशास्त्रका विशेष ज्ञान कराया जाता है। सभी विद्यार्थी ग्राम्य जीवनका अनुभव प्राप्त करनेके लिये दो महीनेके लिये गाँवोंमें भेजे जाते हैं। खादी पहिरना अनिवार्य है। विद्यार्थियोंको प्रतिवर्ष २० हजार गज सूत भी कात कर देना पड़ता है। इस वर्षसे कुछ विद्यार्थी अपना दिया हुआ सूत विद्यापीठसे खरीद लेते हैं, और अपने लिये उससे कपड़ा तैयार कराते हैं। छुआछूत और जाँतपाँत का भेदभाव यहाँ भी नहीं माना जाता।

तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठमें साधारण कालेजके अतिरिक्त एक आयुर्वेद महाविद्यालय और एक वैदिक संशोधन मण्डल भी है। वैदिक संशोधन मण्डलका उद्देश्य है वेदोंकी चर्चा बढ़ाना और

उनका संशोधन करना। यहाँका आयुर्वेद महाविद्यालय विशेष सफलता पूर्वक चल रहा है। उसके अन्तर्गत एक चिकित्सालय और एक रसशाला भी है। प्रत्यक्ष रूपसे विद्यापीठके सञ्चालनमें कोई स्कूल नहीं है। किन्तु महाराष्ट्रके प्रायः सभी राष्ट्रीय स्कूल या तो इससे सम्बद्ध हैं या इसके द्वारा स्वीकृत हैं।

महाराष्ट्रकी सभी संस्थाओंकी एक विशेषता यह है कि वहाँ प्रत्येकमें शारीरिक व्यायामका अच्छा प्रबन्ध किया गया है। धार्मिक शिक्षामें गीता पाठका नियम भी सभी स्थानोंपर अनिवार्यरूपसे पाया जाता है। शायद ही ऐसा कोई स्कूल हो जहाँ गीता न पढ़ाई जाती हो और जिसके अन्तर्गत एक अच्छा अखाड़ा न हो। इन अखाड़ोंमें लाठी, तलवार, छुरी, मुद्गर, मलखम, कुश्ती, लेजिम आदिकी शिक्षा नित्य दी जाती है। अन्य प्रान्तोंकी संस्थाएं भी शारीरिक व्यायाम-की उपेक्षा नहीं करतीं, किन्तु महाराष्ट्रकी संस्थाएं इस ओर विशेष रूपसे ध्यान देती हैं।

काशी विद्यापीठमें स्कूल और कालेजके अतिरिक्त एक प्रकाशन-विभाग भी है जिसकी ओर से हिन्दी भाषामें विविध विषयोंकी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। एक वर्षसे एक उच्चकोटिकी त्रैमासिक पत्रिका भी निकल रही है। स्कूलका पाठ्यक्रम दस वर्षोंका और कालेजका चार वर्षोंका है। कालेजके प्रथम वर्षमें हिन्दी अंग्रेज़ी और संस्कृत इन तीन भाषाओंकी ही विशेष शिक्षा दी जाती है। इनके

अतिरिक्त अर्थशास्त्र और भारतवर्षकी सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक अवस्थापर साधारण व्याख्यान होते हैं। अन्तिम तीन वर्षोंमें अँगरेजी अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जाती है। इसके सिवाय इतिहास-अर्थशास्त्र राजनीति, प्राच्य और पाश्चात्यदर्शन, और प्राचीन भारतीय संस्कृति इन तीन विषयोंमेंसे किसी एकका विशेष अध्ययन करना होता है। विद्यार्थियोंके लिये खादी पहनना और सूत कातना अनिवार्य है। जातपाँत और छुआछूतका भेदभाव नहीं माना जाता।

जामिया मिल्लिया इसलामियाँमें स्कूल और कालेजके सिवाय एक प्रकाशन-विभाग भी है जिसके द्वारा उर्दू भाषामें पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। स्कूल और कालेजमें इसलाम धर्मकी भी शिक्षा दी जाती है। यहाँ अधिकतर मुसलमान विद्यार्थी ही हैं। इसकी रचना भी उन्हींकी आवश्यकताओंका ख़याल रखकर की गई है, किन्तु अन्य धर्मोंके विद्यार्थी भी प्रविष्ट हो सकते हैं।

विश्वभारती और श्रीदक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन शुद्ध रूपसे शिक्षा संस्थाएँ हैं। पूर्व और पश्चिमके बीच प्रेमका भाव स्थापित करना, भिन्न भिन्न जातियों और सभ्यताओंके बीच सम्बन्ध स्थापित करना और इसके द्वारा सारे मानवसमाजमें एकता लानेका प्रयत्न करना—विश्वभारतीका मुख्य उद्देश्य है। विश्वभारतीका कार्य मोटे तौरपर दो भागोंमें बँटा है शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन। शान्तिनिकेतनमें

विद्याभवन, कलाभवन और शिक्षा विभाग हैं। विद्याभवनमें प्राचीन खोज सम्बन्धी कार्य होता है। कलाभवनमें चित्रकला और सङ्गीतकी शिक्षा होती है। शिक्षाविभागमें प्रारम्भिक स्कूलसे कालेजतककी श्रेणियाँ हैं। यहाँ आरम्भसे अन्ततक लड़के और लड़कियोंकी शिक्षा साथ साथ होती है। पाठ्यक्रम तो कलकत्ता विश्वविद्यालयके ही अनुसार है। किन्तु शिक्षणप्रणालीमें प्राचीन भारतीय पद्धतिका अनुसरण करनेका प्रयत्न किया गया है। शिक्षक और छात्र वृक्षोंके नीचे ज़मीनपर आसन बिछाकर बैठते हैं। स्कूलमें बौद्धिक शिक्षाके अतिरिक्त कुछ औद्योगिक शिक्षा भी दी जाती है। नियम पालनके सम्बन्धमें अधिकारियोंकी ओरसे कोई सख़्ती नहीं की जाती। विद्यार्थियोंके प्रतिनिधियोंकी एक आश्रम-समिति है जो प्रत्येक छात्रावासके लिये दो तीन विद्यार्थियोंकी एक विचार-सभा नियत कर देती है। किसी विद्यार्थीके नियम भङ्ग करनेपर उस छात्रावास-का नायक उसे विचार-समितिके सम्मुख उपस्थित करता है और उसीके द्वारा उसे दण्ड मिलता है। अपना अन्य सब प्रबन्ध भी विद्यार्थी स्वयं करते हैं। अध्यापक केवल मार्गप्रदर्शन करते हैं। लड़कियोंका छात्रावास नारीभवन कहलाता है। १२ बरससे कम उम्रके लड़कोंके भोजनका प्रबन्ध भी वहीं होता है। शेषके लिये एक अलग भोजनालय है। दोनों ही भोजनालयोंके प्रबन्धमें विद्या-र्थियों अथवा विद्यार्थिनियोंका हाथ रहता है। शान्तिनिकेतनका

वातावरण कवित्व और कलामय है। श्रीनिकेतनमें ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले कार्यौंकी शिक्षा एवम् प्रयोगशालाएँ हैं।

दक्षिणामूर्तिविद्यार्थीभवनमें एक छात्रावासके अतिरिक्त प्रारम्भिक पाठशाला, हाईस्कूल, अध्यापकशाला और प्रकाशन मन्दिर हैं। सभी विभागोंमें सहशिक्षणकी पद्धति है। प्रारम्भिक पाठशालामें माण्टीसरी पद्धति और हाईस्कूलमें डाल्टन पद्धतिके अनुसार शिक्षा दी जाती है। इन पद्धतियोंमें भारतीय परिस्थितिके अनुकूल परिवर्त्तन कर लिया जाता है और शिक्षाके सम्बन्धमें नये नये प्रयोग किये जाते हैं। अध्यापकशालाके द्वारा योग्य अध्यापक तैयार किये जाते हैं। प्रकाशन विभागसे गुजराती भाषामें शिक्षा विषयक ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं।

कन्या गुरुकुल देहरादून, कन्या महाविद्यालय जालन्धर और श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ, स्त्री शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएं हैं। हिंगणेंका अनाथबालिकाश्रम महिला विद्यापीठसे सम्बद्ध है। इन सबका पाठ्यक्रम बनानेमें इस बातका ख़याल रक्खा गया है कि लड़कियोंका पाठ्यक्रम लड़कोंके पाठ्यक्रमकी अपेक्षा कुछ भिन्न प्रकारका होना चाहिये। कन्यागुरुकुलमें छः सात वर्षकी लड़कियाँ ही ली जाती हैं और जबतक वे गुरुकुलके ११ वर्षोंका पाठ्यक्रम समाप्त न कर लें तबतक साधारणतया उन्हें घर जाने देनेका नियम नहीं है।

अभिभावकोंको यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि १६ वर्षकी उम्रके पूर्व उनका वाग्दान या विवाह संस्कार नहीं करेंगे। यहाँ केवल स्त्री अध्यापिकाएं ही हैं। लड़कियोंको पहननेके लिये केवल खादीके वस्त्र दिये जाते हैं। संस्कृतकी शिक्षापर विशेष जोर दिया गया है। कन्यामहाविद्यालय जालन्धर, उत्तर भारतमें स्त्री शिक्षाकी सर्वप्रथम संस्था है। इसके अन्तर्गत एक प्रकाशन विभाग भी है जिसके द्वारा स्त्री शिक्षोपयोगी ग्रन्थ प्रचुर परिमाणमें प्रकाशित हुए हैं और अबतक हो रहे हैं। उपरोक्त महिलाविद्यापीठ भारतवर्षका सर्वप्रथम महिला विश्वविद्यालय है। इसके द्वारा भिन्न भिन्न प्रान्तोंकी विद्यार्थिनियोंके लिये उसी प्रान्तकी भाषामें परीक्षा लेनेका प्रबन्ध कर दिया जाता है। महाराष्ट्रके भिन्न भिन्न स्थानोंमें इसके अन्तर्गत ३ कालेज, और १५ स्कूल तथा ट्रेनिङ्ग कालेज हैं। जालन्धरके कन्या महाविद्यालयसे निकली हुई स्नातिकाओंमेंसे भी अनेक अध्यापन कार्यमें प्रवृत्त होती हैं।

पाँचवाँ अध्याय

आजतककी सफलता ।

पिछले अध्यायमें वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओंके आदर्श, सिद्धान्त, कार्यक्रम और पाठ्यक्रम आदिपर विचार किया गया है। अब प्रश्न यह है कि अपने अपने आदर्शों और सिद्धान्तोंके अनुसार कार्य करते हुए इन विद्यालयोंने आज तक कितनी सफलता प्राप्त की है। क्या देशकी किसी कमीको इन्होंने पूरा किया है ? क्या अपने आज तकके कामका ब्योरा पेश करते हुए ये कह सकते हैं कि हमारे द्वारा देशकी कुछ सेवा हो रही है और देशको हमारी आवश्यकता है ? यदि इन प्रश्नोंका सन्तोषजनक उत्तर न मिल सके तो ऊँचे आदर्शों और सिद्धान्तोंके होते हुए भी इनकी कोई उपयोगिता नहीं है। किसी भी आदर्श या सिद्धान्तके वास्तविक मूल्यकी परख व्यावहारिक क्षेत्रमें ही हो सकती है ।

किन्तु इन विद्यालयोंकी सफलताका हिसाब लगाते समय उन कठिनाइयों और बाधाओंका भी ख़याल रखना होगा जिनका

सामना करते हुए इन्हें आगे बढ़ना पड़ रहा है। सबसे पहिली कठिनाई आर्थिक है। अपनी योजना और पाठ्यक्रमके अनुसार पूरा पूरा काम करनेके लिये जितनी सम्पत्ति चाहिये उतनी किसी भी संस्थाके पास नहीं है। बङ्गीय, राष्ट्रीय शिक्षा परिषद, विश्व भारती, प्रेम महाविद्यालय, काशीविद्यापीठ और महिला विद्या पीठमेंसे प्रत्येकके पास कुछ स्थायी सम्पत्ति है। यद्यपि उसकी आय इनकी समस्त योजनाओंको कार्यान्वित करनेके लिये पर्याप्त नहीं है, किन्तु अन्य संस्थाओंके लिये तो उनके खर्चके किसी अंशका भी स्थायी प्रवन्ध नहीं है। दूसरी एक बहुत बड़ी कठिनाई है कार्यकर्ताओंके कमी की। ऐसे कार्यकर्ता बहुत ही कम हैं जो अपना सारा समय इन्ही संस्थाओंको दे सकें। उन्हें देशके सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक आन्दोलनोंमें भी भाग लेना पड़ता है। बिहार विद्यापीठ और काशी विद्यापीठ तो अपने अपने प्रान्तोंके राजनैतिक कार्यों-के केन्द्र हो रहे हैं। शिक्षा सम्बन्धी कार्यके महत्वको समझते हुए भी देशकी वर्तमान अस्थिर अवस्थाके कारण इनके कार्यकर्ता एकाग्र चित्तसे शिक्षाके कार्यमें नहीं लग सकते। तीसरी कठिनाई हमारे देशकी वर्तमान विदेशी सरकारके द्वारा उपस्थित होती है—कुछ तो अप्रत्यक्ष रूपसे और कुछ प्रत्यक्ष रूपसे। सरकारी शिक्षानीतिने देशकी मनोवृत्तिको इस प्रकारसे फेर दिया है कि लोग शिक्षाके महत्वको सरकारी नौकरीके पैमानेसे नापते हैं। यद्यपि सरकारी कालेजों

के ग्रेजुएटोंमेंसे भी ६६ प्रतिशतको सरकारी नौकरियाँ नहीं मिलतीं, किन्तु विद्यापीठोंने तो उधरसे अपना मुँह ही मोड़ लिया है। इस-लिये लोग अपने लड़कोंको सरकारी कालेजोंमें ही भेजना चाहते हैं। हर एक यही सोचता है कि शायद हमारा ही लड़का उन एक फ़ीसदी ग्रेजुएटोंमें हो जिन्हें सरकारी नौकरी मिल जाती है। गुजरात और महाराष्ट्रके जिन हिस्सोंमें लोग ज़्यादातर व्यापारसे अपनी जीविका कमाते हैं वहाँ तो राष्ट्रीय विद्यालयोंके लिये विद्यार्थी मिलनेमें अधिक बाधा नहीं पड़ती। लेकिन अन्य प्रान्तोंके राष्ट्रीय विद्यालय अपने अल्प साधनोंके द्वारा जितने विद्यार्थियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध कर सकते हैं—उतने विद्यार्थी भी उन्हें नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त इन सब संस्थाओंपर सरकारकी कड़ी निगाह तो रहती ही है। वह इन्हें हर प्रकारसे क्षति पहुँचानेका प्रयत्न करती रहती है। कई बरसों तक गुरुकुल काँगड़ीको सङ्कटके दिन बिताने पड़े। समर्थ विद्यालय तो ग़ैर क़ानूनी मजमा करार देदिया गया। और शायद ही कोई ऐसी संस्था हो जिसके कार्यकर्त्ता सरकारके कोप भाजन न हों।

इन बाधाओंके होते हुए भी इन संस्थाओंको आजतक जितनी सफलता मिली है वह कम नहीं है। किसी विद्यालयकी शिक्षाके मूल्यका बहुत कुछ अन्दाज़ वहाँसे निकले हुए विद्यार्थियोंके कार्योंसे लगाया जा सकता है। अतः यदि इन विद्यालयोंके स्नातकोंकी ओर दृष्टि डाली जाय और सरकारी विद्यालयोंके ग्रेजुएटोंसे उनकी तुल-

ना की जाय तो इस विषयपर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है। बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्के 'कालेज आफ़ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी' तथा प्रेम महाविद्यालयके शिल्प विद्यालयोंकी शिक्षा तो ऐसी है कि वहाँसे निकले हुए विद्यार्थियोंके सामने जीविका उपार्जन करनेकी कठिनाई आ नहीं सकती। इसलिये जीविकाकी दृष्टिसे तो इनकी तुलना साधारण सरकारी कालेजोंके ग्रैजुएटोंसे नहीं की जा सकती। किन्तु इसी कोटिके अन्य सरकारी विद्यालयोंकी तुलनामें यहाँके निकले हुए विद्यार्थी कम नहीं साबित होते। इतना ही नहीं वरन् 'कालेज आफ़ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी' अपने तरहकी संस्थाओंमें ऊँचा स्थान रखता है। यहाँके ग्रैजुएट टाटाकम्पनी तथा अन्य बड़े बड़े कारख़ानोंमें सफलता पूर्वक काम कर रहे हैं।

किन्तु मुख्य रूपसे तो उन राष्ट्रीय विद्यालयोंके सम्बन्धमें विचार करना है -जहाँ औद्योगिक शिक्षा या तो दी ही नहीं जाती, या थोड़ी बहुत दी भी जाती है तो इस दृष्टिसे नहीं कि उसके द्वारा जीविकोपार्जन हो सके। साधारण सरकारी कालेजोंसे इन्हीं की तुलना की जा सकती है। ऐसे विद्यालयोंमें कांगड़ी और वृन्दावनके गुरुकुल तथा असहयोग आन्दोलनके समय स्थापित, काशी, अहमदाबाद, पटना और पूनेके विद्यापीठ और दिल्लीका जामिया मिल्लिया इसलामियाँ हैं। आजतक इन सब संस्थाओंसे निकले हुए स्नातकोंकी संख्या इस प्रकार है—

गुरुकुल कांगड़ी	१८४
गुरुकुल वृन्दावन	३३
काशी विद्यापीठ	५१
गुजरात विद्यापीठ	२९७
बिहार विद्यापीठ	६२
तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ	२३१
जामिया मिल्लिया इसलामियां	७१
	९२९

इनमेंसे गुरुकुलकांगड़ी और तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठको छोड़कर अन्य संस्थाओंके स्नातकोंकी संख्या सन् १९२९ के आरम्भ तककी है। गुरुकुल कांगड़ी और तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठकी संख्या १९२८ तक की है।

गुरुकुल कांगड़ीके १८४ स्नातकों मेंसे ६ का देहान्त हो चुका है और ४ के बारेमें ठीक ठीक सूचना नहीं मिली कि वे कहां कौन सा काम कर रहे हैं। शेष १७४ में से ५० अध्यापन कार्यमें लगे हैं, ३ राजनैतिक कार्य कर रहे हैं, जिनमेंसे एक लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित सर्वैंट्स आफ़ दी पीपुल सोसाइटीके सदस्य हैं, १२ पत्र सम्पादन कार्यमें लगे हैं, २२ स्नातक सामाजिक एवम् धार्मिक प्रचारके कार्योंमें लगे हैं, जिनमेंसे कुछ आफ्रीका और फ़िज़ी तक पहुँचे हैं, ३७ चिकित्सकका कार्य कर रहे हैं और ४४ व्यापार व्यव-

साय और ज़मीन्दारी आदि स्वतंत्र पेशोंमें लगे हुए हैं। ६ अभी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस गुरुकुलके स्नातकोंमेंसे ६० अच्छे लेखक हैं और इनमेंसे २६ ने पुस्तकें लिखी हैं।

गुरुकुल वृन्दावनके ३३ स्नातकोंमेंसे १५ अध्यापन कार्यमें तथा ४ धर्मोपदेशमें लगे हैं। १० वैद्य हैं, और शेष ४ स्वतन्त्र रूपसे जीविकोपार्जन में लगे हैं।

क़ाशी विद्यापीठके ५१ स्नातकोंमेंसे २ अभी विशेष अध्ययनमें लगे हैं, ६ अध्यापक हैं, ४ पत्रसम्पादन कार्यमें लगे हैं, ३ खादीका काम कर रहे हैं और ११ कांग्रेस अछूतोद्धार मजदूर संगठन आदिके काममें लगे हैं। शेष २२ व्यापार व्यवसाय कृषि आदि स्वतन्त्र पेशेसे अथवा नौकरीसे जीविकोपार्जनमें लगे हैं। कांग्रेस अछूतोद्धार आदिका काम करने वाले ११ स्नातकोंमेंसे ५ लाला लाजपतरायकी सर्वेंएट्स आफ दि पीपुल सोसायटीमें हैं जिनमेंसे ३ तो उसके आजीवन सदस्य हैं।

लगभग १ वर्ष पूर्व गुजरात विद्यापीठके स्तानकोंकी सूची उनके कार्योंके विवरण सहित तैयारी की गई थी। उस समय कुल २६८ स्नातक थे, जिनमेंसे १६२ के कार्योंका पता लग सका था, जिसका ब्योरा इस प्रकार है—अध्यापन कार्यमें ६६, पत्रसम्पादनमें ८, देशके रचनात्मक कार्योंमें ४०, स्वतंत्र पेशोंमें २५ और नौकरीमें ५३। तारीख १७ नवम्बर १६२६ के गुजराती नवजीवनमें उक्त

विद्यापीठके स्नातकसङ्घके मन्त्रीका एक पत्र छपा है। जिससे मालूम होता है कि इधर फिर इसका हिसाब लगाया गया है। इस हिसाबमें आजतकके २६७ स्तानकोंमेंसे ६३ के सम्बन्धमें जो पता लगा है वह इस प्रकार है—१४ गुजरात विद्यापीठमें अध्यापक हैं, ११ अन्य राष्ट्रीय शालाओंमें अध्यापक हैं, २२ अन्य संस्थाओंमें काम कर रहे हैं, २७ बारडोली तालुका, मजदूर सङ्घ, अन्त्यज सेवामण्डल और चरखासङ्घ इत्यादिके द्वारा राष्ट्रीय कार्योंमें लगे हैं, ११ पत्र-सम्पादनका काम कर रहे हैं और ८ सरकारी शिक्षा संस्थाओंमें हैं। मन्त्रीने अपने पत्रमें यह भी लिखा है कि २६७ स्नातकोंमेंसे शुद्ध खादीके वस्त्र पहनने वालोंकी संख्या कम से कम १२० है। जो लोग और सब कपड़े खादीके पहनते हुए भी केवल धोती भी मिलकी पहनते हैं उनकी गणना खादी पहनने वालोंमें नहीं की गई है। यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि काशी विद्यापीठ और बिहार विद्यापीठके स्नातकोंमेंसे बहुत कमको छोड़कर सबही केवल खादीके वस्त्र पहिनते हैं।

बिहार विद्यापीठके ६२ स्नातकोंमेंसे १४ के बारेमें कोई सूचना नहीं मिली है। शेष ४८ में से १६ अध्यापनकार्यमें, ८ पत्रसम्पादनमें, ५ खादी कार्यमें, १ ग्राम सङ्गठनमें, २ विशेष अध्ययनमें, १२ खेती व्यवसाय आदि स्वतन्त्र पेशोंमें और १ नौकरीमें लगे हैं।

तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठके २३१ स्नातकोंमेंसे ७६ के बाबत

समाचार मिल सका है जिनमेंसे ४२ अध्यापन कार्यमें, ३ पत्र-सम्पादनमें, ६ देशके रचनात्मक कार्योंमें १५ स्वतंत्र पेशोंमें और १० नौकरीमें लगे हैं।

जामियाँ मिल्लिया इस्लामियाँके कुल ७१ स्नातकोंके कार्योंका कोई विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं हो सका है। किन्तु उक्त संस्थाके रजिस्ट्रारने लिखा है कि वे, शिक्षाकार्य, पत्रसम्पादन, और व्यापार आदिमें लगे हैं, और कुछ विशेष अध्ययनके लिये, यूरपके देशोंमें गये हैं।

इस विवरणसे स्पष्ट है कि जिस संस्थाने जिस उद्देश्यसे कार्य प्रारम्भ किया है, उसके स्नातकोंके द्वारा उन उद्देश्योंकी पूर्ति हो रही है। गुरुकुल काँगड़ीके स्नातकोंमेंसे धर्मप्रचारक, राजनैतिक कार्यकर्ता, लेखक और वैद्य निकले। इसी प्रकार विद्यापीठोंके अधिकाँश स्नातकोंने देशके सामाजिक और राजनैतिक कार्योंको अपने जीवनका लक्ष्य बनाया। जिन जिन कार्योंमें ये सब स्नातक लगे हुए हैं—उन्हें मोटे तौरपर इन पाँच भागोंमें बाँटा जा सकता है –

१. राष्ट्रीय विद्यालयों और महाविद्यालयोंमें अध्यापनकार्य तथा विशेष अध्ययन
२. पत्रसम्पादन कार्य
३. धार्मिक और सामाजिक प्रचार, कांग्रेस, मज़दूर सङ्गठन, ग्राम-सङ्गठन, खादी इत्यादि रचनात्मक कार्य

४. स्वतंत्र पेशा

५. नौकरी

उपरोक्त सातों संस्थाओंमेंसे किस किसके कितने कितने स्नातक इन पाँचों कोटिके कार्योंमेंसे किस किस कोटिके कार्यमें लगे हैं—यह अगले पृष्ठकी तालिकासे प्रगट होगा।

संस्थाका नाम	अध्यापन और अध्ययन	पत्र-सम्पादन	रचनात्मक राष्ट्रीय-कार्य	स्वतन्त्र-पेशा	नौकरी	योग	जिनके सम्बन्धमें मालूम नहीं	स्नातकोंकी कुल संख्या
गुरुकुलकाँगड़ी	५६	१२	२५	८१	×	१७४	४	१८४
गुरुकुलवृन्दावन	१५	×	४	१४	×	३३	×	३३
काशी विद्यापीठ	११	४	१४	१७	५	५१	×	५१
गुजरात विद्यापीठ	४७	११	२७	×	८	९३	२०४	२९७
बिहार विद्यापीठ	२१	८	६	१२	१	४८	१४	६२
तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ	४२	३	९	१५	१०	७९	१५२	२३१
जामिया मिल्लिया इसलामियाँ	×	×	×	×	×	×	७१	७१
	१९२	३८	८५	१३९	२४	४७८	४५१	९२९

इस तालिकासे यह स्पष्ट है कि जिन ४७८ स्नातकोंके सम्बन्धमें जानकारी हासिल हो सकी है उनमेंसे ३१५ (१६२+३८+८५= ३१५) अध्यापन, पत्रसम्पादन तथा कांग्रेस, समाज सुधार, ग्राम-सङ्गठन, खादी कार्य इत्यादि राष्ट्रीय कार्योंमें लगे हैं; १३६ कृषि व्यापार आदि स्वतन्त्र पेशोंमें लगे हैं और केवल २४ अन्य संस्थाओं या व्यक्तियोंकी नौकरी करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि इनमेंसे ६६ प्रतिशत सार्वजनिक कार्यों में हैं ३० प्रतिशत स्वतन्त्र रूपसे व्यापार व्यवसाय आदि कर रहे हैं और ४ प्रतिशत नौकरी करते हैं। शायद यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जो लोग प्रत्यक्ष रूपसे किसी सार्वजनिक कार्यमें नहीं लगे हुए हैं, वे भी अपनी जीविकोपार्जनका कार्य करते हुए अपने अपने स्थानके सार्वजनिक कार्योंमें दिलचस्पीसे भाग लेते हैं। ऊपरकी तालिकासे स्नातकोंके कार्योंका विश्लेषण करके केवल यह दिखलानेका प्रयत्न किया गया है कि उनका अधिकांश राष्ट्रीय कार्योंमें लगा हुआ है। बेकारीकी समस्या तो अभी इन संस्थाओंके सामने है ही नहीं, और जबतक इन्हीं सिद्धान्तोंपर काम होता रहेगा तबतक आवेगी भी नहीं। क्योंकि आज कल जितने स्नातक प्रतिवर्ष निकलते हैं उनसे अधिककी राष्ट्रीय कार्योंके लिये माँग रहती है। ऐसे लोगोंकी संख्या कम नहीं है जो राष्ट्रीय विद्यालयोंमें अपने बालकोंको भेजनेमें केवल इसीलिये हिचकते हैं कि वहाँसे निकलने-पर उनकी जीविकाका कोई प्रबन्ध न होगा। ऊपरके अङ्कोंसे स्पष्ट है

कि यह डर नितान्त भ्रममूलक है। जीविकाकी दृष्टिसे तो उनकी अवस्था सरकारी कालेजोंके ग्रैजुएटोंसे कहीं अच्छी है। निस्सन्देह सरकारी कालेजोंके ग्रैजुएटोंमेंसे कुछको बड़ी तनख्वाहोंकी नौकरियाँ मिल जाती हैं, किन्तु साधारणतया उन्हें बेकारीकी समस्याका ही सामना करना पड़ता है। घरका बहुत कुछ सञ्चित धन और अपने जीवनका सर्वोत्तम समय सरकारी कालेजोंके भीतर ख़र्च कर चुकनेके बाद जब कोई व्यक्ति ग्रैजुएट होकर निकलता है तब भी वह इतना असहाय रहता है कि उसे यह नहीं सूझता कि अपनी जीविका उपार्जन करनेके लिये क्या करे किन्तु राष्ट्रीय संस्थाओंके स्नातकोंने अपनी जीविकाकी समस्या हल करते हुए, समाजके प्रति अपना कर्तव्य पूरा करनेका भी प्रयत्न किया है। काँगड़ीमें गुरुकुल-की स्थापना होनेके कुछ दिनों बाद किसीने स्वामी श्रद्धानन्दसे पूछा था कि यहाँके स्नातकोंकी जीविकाका प्रबन्ध आप किस प्रकार करेंगे। उन्होंने उत्तर दिया कि सरकारी कालेजोंके भी ९९ प्रतिशत ग्रैजुएटोंको नौकरी नहीं मिलती, अधिकसे अधिक तो यही न होगा कि जो हालत वहाँके ९९ प्रतिशतकी होगी वह यहाँके सबोंकी हो लेगी। लेकिन बात ऐसी नहीं है। सरकारी नौकरी न मिलनेके सम्बन्धमें तो दोनोंकी अवस्थाओंमें समानता है। किन्तु जीविकाके लिये दूसरे उपाय खोज निकालनेके सम्बन्धमें जहाँ सरकारी कालेजके ग्रैजुएट अपनेको असहाय पाते हैं, वहाँ राष्ट्रीय संस्थाओंके

स्नातक पहलेसे ही इस कठिनाईका सामना करनेके लिये तैयार रहते हैं। इस दृष्टिसे तो उनकी अवस्था उस १ प्रतिशतसे भी अच्छी है जिसे सरकारी नौकरी मिल तो जाती है लेकिन न मिलनेपर जिसके लिये कोई दूसरा चारा ही नहीं है।

ऊपरके ब्योरेमें विश्वभारती और दक्षिणामूर्ति विद्यार्थीभवन के सम्बन्धमें कोई बात नहीं कही गई है। विश्वभारतीने अपना पाठ्यक्रम कलकत्ता विश्वविद्यालयसे मिला कर रक्खा है और कुछ-को छोड़ कर प्रायः सभी विद्यार्थी उक्त विश्वविद्यालयकी परीक्षाओं-के लिये ही तैयार किये जाते हैं। दक्षिणामूर्ति विद्यार्थीभवनको स्थापित हुए अभी इतने दिन नहीं हुए कि उसके विद्यार्थियोंके जीवनसे उस संस्थाकी महत्ता परखी जा सके।

अभीतक इन संस्थाओंकी उपयोगिताका हिसाब केवल उनके स्नातकोंके कार्यौंको देख कर लगया गया है। किन्तु देशी भाषाओं-के साहित्यकी उन्नति करनेमें भी उन्होंने बहुत हाथ बटाया है। प्रायः सभी मुख्य मुख्य संस्थाओंने एक एक प्रकाशन विभाग खोल रक्खा है और उसके द्वारा उस प्रान्तकी भाषामें विविध विषयोंके ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं। भारतीय भाषाओंमें स्कूलों और कालेजोंके लिये पाठ्य पुस्तकें मिलनेमें जितनी कठिनाई आजसे दस वर्ष पहले थी उतनी आज नहीं है। अन्य पुस्तक प्रकाशकोंको भी इन संस्थाओंके कारण प्रोत्साहन मिला है। स्त्रीशिक्षा विषयक

साहित्यके प्रकाशित करनेकी ओर जालन्धरके कन्यामहाविद्यालयने विशेष प्रयत्न किया है। इसकी स्थापनाके समय हिन्दी भाषामें कन्या पाठशालाओंमें रखी जाने योग्य पुस्तकें थीं ही नहीं। किन्तु आज सभी विषयोंकी पुस्तकें मौजूद हैं जो अन्य प्रान्तोंकी कन्या पाठशालओंमें भी पाठ्य पुस्तकों के तौरपर रखी गई हैं।

यहाँतक तो रुपये पैसेके रूपमें या अङ्कोंसे प्रगट किये जाने योग्य हानि लाभकी तुलना हुई। किन्तु संसारके सभी लाभ सिक्कों या अङ्कोंके द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते। राष्ट्रीय संस्थाओंका वास्तविक महत्व उनके उस प्रयत्नमें है जो देशके वर्तमान वातावरण और समाजके दूषित-परम्परामूलक मनोवृत्तिको बदलनेके लिये किया जा रहा है। यह तो अङ्कों या व्यक्तिगत लाभोंके रूपमें प्रगट नहीं किया जा सकता। सरकारी विद्यालयोंके पाठ्यक्रममें जो सुधार हुआ है और होता जा रहा है उसके मूलमें राष्ट्रीय शिक्षाका आन्दोलन ही है। देशपरसे विदेशी सरकारके आतङ्कको कम करनेमें, और निर्भयताका संचार करनेमें इन संस्थाओंसे जो सहायता मिली है और मिल रही है उसका नाप किसी पैमानेके द्वारा तो किया नहीं जा सकता। राष्ट्रके लिये त्याग करनेकी जो भावना दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है उसे किन अङ्कोंके द्वारा प्रगट किया जा सकता है! शासनकार्यके लिये आज सिविल सर्विसके ओहदोंपर बड़ी बड़ी तनख्वाहें पानेवाले अधिकांश विदेशी और कुछ देशी लोग नियुक्त

हैं। हिन्दोस्तानकी आर्थिक अवस्थाके साथ इन तनख़्वाहोंका कोई मेल नहीं बैठता। राष्ट्रीय संस्थाओंकी प्रवृत्ति इस घातक असामञ्जस्यको दूर करनेकी ओर है। उनको चेष्टा यह है कि बड़ीसे बड़ी योग्यताके लोग निकलें, किन्तु वे अपने कार्योंके लिये उतनी ही बड़ी तनख़्वाहें भी न माँगें। यह इन संस्थाओंकी चेष्टामात्र नहीं है, किन्तु इसमें वे सफल भी हो रहे हैं। इन संस्थाओंके कार्यकर्त्ता और यहाँसे निकले हुए स्नातक जितने पुरस्कारपर राष्ट्रका काम करते हैं उतने पुरस्कारपर उसी योग्यताके अन्य व्यक्ति कठिनाईसे मिलेंगे।

अब स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी संस्थाओंकी ओर दृष्टि डालिये। इनमें चार मुख्य हैं। कन्यामहाविद्यालय जालन्धर, कन्यागुरुकुल देहरादून, अनाथबालिकाश्रम हिंगणे और श्रीमतीनाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ पूना। इन संस्थाओंके द्वारा सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ है कि इनके द्वारा स्त्रीशिक्षाके लिये देशमें एक नई लहर उठी। सरकारकी ओरसे तो इसके लिये कोई प्रयत्न ही नहीं किया गया। जिन दिनों जालन्धरमें कन्या महाविद्यालय या हिंगणेमें महिलाश्रम स्कूलकी स्थापना हुई थी उन दिनों उन प्रान्तोंमें इने गिने लोग ही ऐसे थे जो स्त्रियोंकी शिक्षा-समस्यापर विचार करते थे। उनके मार्गमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ आईं किन्तु उन सबका सामना करते हुए वे अपना काम करते गये। आज सारा देश इसकी आवश्यकताका अनुभव करते

हुए उसके लिये प्रयत्नशील है। समाजकी अनुचित रूढ़ियोंको तोड़नेमें भी स्त्री शिक्षासे बहुत सहायता मिली है। पञ्जाब तथा महाराष्ट्रमें लड़कियोंका विवाहवय बढ़ानेमें इन संस्थाओंका विशेष हाथ रहा है। जातपाँतके अनुचित भेदभावको तोड़नेमें भी इनसे बहुत सहायता मिली है। सन् १६२६ के आरम्भ तक पूनेके महिला विद्यापीठसे ६२ तथा जालन्धरके कन्यामहाविद्यालयसे ३४ स्नातिकाएं निकल चुकी थीं। उनके अतिरिक्त विद्यापीठकी एण्ट्रेन्स परीक्षासे २५०, सेकेण्डरी स्कूल सर्टीफ़िकेट परीक्षासे ४१ तथा प्राइमरी स्कूल अध्यापन परीक्षासे ४६ विद्यार्थिनियाँ उत्तीर्ण हो चुकी थीं। इन सबने तथा नार्मल स्कूलसे निकली हुई अध्यापिकाओंने शिक्षा प्रचारका कार्य बहुत अधिक किया है। पूनेके महिला विद्यापीठने १० वर्षके भीतर महाराष्ट्रमें स्त्रीशिक्षाकी इतनी संस्थाएं क़ायम की हैं जितनी आरम्भसे आजतक सरकारने नहीं की। किन्तु ऐसी संस्थाओंकी उपयोगिताका अनुमान इन कार्योंकी अपेक्षा उन देवियोंके जीवनसे अधिक लगाया जा सकता है जो यहाँसे शिक्षा पाकर अपने अपने परिवारको शिक्षित और सुन्दर बनानेमें लगी हैं। इसका तो कोई लेखा उपस्थित किया नहीं जा सकता।

ऊपरका विवरण इस बातको अच्छी तरह सिद्ध करता है कि राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओंको अपने कार्यमें काफ़ी सफलता मिल रही है। प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही प्रकारसे वे देशको लाभ पहुँचा रही

हैं। जो लोग कहते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षाका प्रयोग असफल हो रहा है उनकी एक बड़ी दलील यह होती है कि इन संस्थाओंकी संख्या घटती जा रही है। असहयोग आन्दोलनके समय जितने राष्ट्रीय विद्यालय थे उनमेंसे अनेक बन्द हो चुके और जो थोड़ेसे रह गये हैं, उनमें भी विद्यार्थियोंकी संख्या बहुत कम है। यह बात बिलकुल सत्य है, किन्तु इससे यह नहीं साबित होता कि राष्ट्रीय शिक्षाका प्रयोग असफल हो रहा है या इन संस्थाओंकी उपयोगिता कम है। असहयोगके समय यदि इन विद्यालयों और उनके विद्यार्थियोंकी संख्या अधिक थी और आज कम है तो इन दोनों ही बातोंका कारण राजनैतिक है। असहयोगकी तरहका ही दूसरा आन्दोलन आरम्भ होनेपर ऐसी संस्थाओं और उनके विद्यार्थियोंकी संख्या फिर बढ़ सकती है, लेकिन केवल इसी कारण उस अवस्थामें यह नहीं कहा जा सकेगा कि ऐसी संस्थाओंका प्रयोग सफल हो रहा है। भावावेशमें किये गये कामसे वास्तविकताका पता नहीं लगता। इन विद्यालयोंकी तुलना सरकारी विद्यालयोंसे करनेके लिये देखना यह होगा कि स्थायी रूपसे समाजको कौन अधिक हानि या लाभ पहुँचा रहा है। और इस दृष्टिसे राष्ट्रीय विद्यालयोंकी उपयोगिता बिलकुल स्पष्ट है। विद्यार्थियोंकी संख्या कम है, किन्तु उसका कारण तो सरकारी नौकरियोंके मोहके सिवाय और कुछ नहीं है। महाराष्ट्रमें खामगांव, येवला, वाई, तलेगांव और सासवने आदि

स्थानोंके विद्यालय इस बातके प्रमाण हैं कि जिस स्थानके लोग अपनी जीविकाके लिये सरकारी नौकरियोंकी अपेक्षा नहीं रखते, वहां राष्ट्रीय विद्यालयोंमें ही अधिक विद्यार्थी जाते हैं। महाराष्ट्रके उपरोक्त स्कूल बहुत ही सफलता पूर्वक चल रहे हैं।

छठवाँ अध्याय ।

वर्तमान आवश्यकताएँ और भावी कार्यक्रम ।

पिछले तीन अध्यायोंमें वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओंके उद्देश्य, उनकी वर्तमान अवस्था और आजतककी सफलतापर संक्षेपमें विचार किया गया है। उससे प्रगट होता है कि बहुत सी बातोंमें इनमें परस्पर समानता है और बहुत सी बातोंमें भिन्नता भी है। भिन्नता विस्तारकी बातोंमें है, और एकता सिद्धान्तकी बातोंमें। राष्ट्रकी उन्नतिके लिये शिक्षाकी व्यवस्था करना सभीका प्रधान लक्ष्य है। गुरुकुल आदिने धार्मिक और सामाजिक दृष्टिसे इस कामको उठाया, कुछ संस्थाओंने औद्योगिक दृष्टिसे और असहयोगके समयकी संस्थाओंने राजनैनिक दृष्टिसे। गुरुकुलोंने सामाजिक और धार्मिक प्रचारक उत्पन्न किये, औद्योगिक विद्यालयोंने कार्यकुशल इञ्जीनियर और कारीगर, तथा विद्यापीठोंने राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्ता। ये सब संस्थाएं शिक्षा संस्थाएं तो हैं ही, किन्तु शिक्षाकी योजना बनाते समय अपने लक्ष्यकी ओर

ही विशेष ध्यान रखती हैं। उस लक्ष्य तक पहुँचनेके लिये तत्काल जिन बातोंको आवश्यकता प्रतीत होती है उनपर विशेष ज़ोर दिया जाता है। शेषकी उपेक्षा तो नहींकी जाती किन्तु शिक्षा, शिक्षाकी दृष्टिसे ही दी जाय इस प्रकारका उदार विचार भी नहीं रक्खा जाता। अबतक इसकी सम्भावना भी न थी। जिन परिस्थितियोंमें इन संस्थाओंकी स्थापना हुई उन परिस्थितियोंमें उन विशेष बातोंकी ओर ही ध्यान देना एक मात्र आवश्यक और अनिवार्य था। किन्तु अब परिस्थिति बदलती जा रही है और कार्यक्षेत्र अधिकाधिक समतल और विस्तृत होता जा रहा है। ऐसी अवस्थामें शिक्षाकी योजनामें केवल तत्कालीन अथवा साम्प्रदायिक आवश्यकताओंका ही ख़याल रखना उचित न होगा। ऐसा कहनेका यह अभिप्राय नहीं है कि तत्कालीन आवश्यकताओंका ख़याल न रखा जाय या उनपर ज़ोर न दिया जाय। उनका विचार करना तो अनिवार्य है किन्तु उनके साथ साथ अन्य स्थायी बातोंकी भी अब उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस दृष्टिसे जो पाठ्यक्रम बनाया जायगा और जो शिक्षा प्रणाली निश्चितकी जायगी उसका पूरा पूरा लाभ इसी समय दृष्टिगोचर न होगा किन्तु आगे चलकर राष्ट्रनिर्माणके कार्यमें उससे बहुत अधिक सहायता मिलेगी।

शिक्षाके नवीन प्रकारोंका हम बहुत कम उपयोग करते हैं। अपने देशमें बाल-शिक्षाको कोई विशेष महत्व नहीं दिया

जाता। यहाँ प्रायः यह समझा जाता है कि बच्चोंके पढ़ानेके लिये किसी विशेष योग्यताकी आवश्यकता नहीं है। पर बात ऐसी नहीं है। शिशु-शिक्षाका महत्व सबसे अधिक है। अपने देशमें शिशु-शिक्षा-के प्रति जो उपेक्षाभाव हम पाते हैं वह अन्यत्र कहीं नहीं दिखलाई पड़ता। यदि हम बालकोंकी आरम्भिक शिक्षाका समुचित प्रबन्ध करें तो इससे देशकी एक बड़ी कमी पूरी होगी और हम इस प्रकार अन्य संस्थाओंको भी इस विषयमें आवश्यक सुधार करनेके लिये विवश कर सकेंगे। पाश्चात्य देशोंमें शिक्षाकी कई प्रणालियाँ इस समय प्रचलित हैं। नित्य नये नये प्रयोग होते रहते हैं और इन प्रयोगोंका फल प्रकाशित होता रहता है। हमको भी चाहिये कि इस शिक्षाके विभिन्न प्रकारोंकी परख करें और जो प्रकार हमको उपयुक्त जँचे उसे प्रयोगमें लावें। शिक्षाके सिद्धान्तोंको ध्यानमें रखकर हम-को एक सुन्दर शिक्षा-प्रणालीका निर्माण करना चाहिये। इन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार पाठ्य-पुस्तकोंकी भी रचना होनी चाहिये। राष्ट्रीय विद्यालयोंको मिलकर अध्यापकोंके लिये एक ट्रेनिंग कालेज भी खोलना चाहिये, जहाँ शिक्षाके सिद्धान्तों और प्रकारोंका अध्ययन किया जाय और नवीन प्रकारोंका अनुसन्धान भी हो सके। राष्ट्रीय शिक्षाकी सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि उसके लिये ऐसे उत्साही और योग्य शिक्षक मिलें जिन्होंने शिक्षाको अपने जीवनका मुख्य ध्येय बना लिया हो।

दूसरा प्रश्न देशी भाषाओंका है। प्रत्येक संस्थामें शिक्षाका माध्यम उस प्रान्तकी भाषा है। बाहरी दुनियांकी प्रगतिसे सम्बन्ध बनाये रखनेके लिये तथा पाठ्यपुस्तकोंकी कमीके कारण अँगरेज़ी भाषा भी एक प्रकारसे अनिवार्य रूपसे ही सिखाई जाती है। किन्तु अपने ही देशके अन्य प्रान्तोंकी भाषासे विद्यार्थीका परिचय नहीं होने पाता। नतीजा यह होता है कि अन्य प्रान्तोंकी रीति रिवाज सम्बन्धी विशेषताओं तथा उसके साहित्यसे वह सर्वथा अनभिज्ञ रहता है। यह एक बड़ी कमी है और इसको दूर करनेका प्रयत्न किया जाना चाहिये। जिन प्रान्तोंकी मातृभाषा हिन्दोस्तानी नहीं है उन प्रान्तोंके राष्ट्रीय विद्यालयोंने तो राष्ट्रभाषाके तौर पर हिन्दोस्तानी भाषाकी थोड़ी बहुत शिक्षा अनिवार्य रूपसे देनेका प्रयत्न आरम्भ किया है। किन्तु अभी तक हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तोंमें अन्य प्रान्तीय भाषाओंकी शिक्षाका प्रबन्ध नहीं किया गया। बँगला और गुजराती तो ऐसी भाषाएं हैं जिन्हें हिन्दी बोलने वाले बहुत ही कम प्रयाससे सीख लेते हैं। पाठ्यक्रममें इनका कोई स्थान न रहने पर भी विद्यार्थी इन भाषाओंकी पुस्तकें पढ़ने लगते हैं। यही बात हिन्दीके सम्बन्धमें बंगाल या गुजरात वालोंकी है। बहुत ही थोड़े प्रयत्नसे वे हिन्दी भाषा सीख सकते हैं। किन्तु उत्तर भारत वालोंके लिये दक्षिणकी और दक्षिण वालोंके लिये उत्तरकी भाषाएं इतनी सुगम नहीं हैं। उत्तर और दक्षिणके बीच

घनिष्टता बढ़ानेके लिये यह आवश्यक है कि दोनों हीको एक दूसरेको भाषाओंका ज्ञान हो। अतः उत्तर भारतकी प्रत्येक संस्थामें मराठी, कर्नाटकी, तेलगू आदि भाषाओंमेंसे किसी एक की शिक्षाका प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये। दक्षिण प्रान्तोंमें तो राष्ट्र भाषा प्रचारके रूपमें यह प्रयत्न किया ही जा रहा है।

तीसरा प्रश्न विदेशी भाषाका है। बाहरको दुनियाँसे बौद्धिक सम्बन्ध स्थापित रखने तथा भिन्न भिन्न देशोंके उन्नत साहित्यका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये विदेशी भाषाका जानना आवश्यक है। अभी तक इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये अँगरेज़ी ही एक मात्र भाषा रही है। विद्यापीठोंका पाठ्यक्रम बनानेमें सिद्धान्त तो यही रक्खा गया है है कि कोई भी विद्यार्थी किसी भी विदेशी भाषाका ज्ञान प्राप्त किये बिना भी अपने विद्यापीठकी ऊँचीसे ऊँची परीक्षा पास कर सके। महाराष्ट्र प्रान्तीय शिक्षा सम्मेलन द्वारा पाठ्यक्रमपर विचार करनेके लिये नियुक्त कमेटीने पिछले वर्ष अपनी रिपोर्टमें कहा था कि जिस विद्यालयके विद्यार्थियोंके लिये विदेशी भाषाकी शिक्षा अनिवार्य हो वह विद्यालय राष्ट्रीय विद्यालय नहीं कहा जा सकता। सिद्धान्त रूपमें तो यह बात बिलकुल ठीक है, किन्तु व्यावहारिक कठिनाइयोंके कारण अभीतक राष्ट्रीय विद्यालयोंमें अंगरेज़ी भाषा-को एक प्रकारसे अनिवार्य स्थान प्राप्त है। जबतक प्रान्तीय भाषाओं-का साहित्य समृद्ध न हो जाय और अँगरेज़ीके स्थानपर किसी

दूसरी विदेशी भाषाकी शिक्षाका प्रबन्ध न हो तबतक परिस्थिति ऐसी ही रहेगी। किन्तु इससे बहुत अधिक हानि हो रही है। हम पश्चिमकी जितनी चीजें देखते या सुनते हैं वह सब इङ्गलैण्डकी आँख और कानसे। अन्य यूरोपीय भाषाओंकी जो पुस्तकें अँगरेज़ीमें अनुवादित होकर आती हैं—उनके द्वारा ही हम मूल ग्रन्थका कुछ अनुमान कर पाते हैं। अतः अन्य यूरोपीय देशोंके साहित्यके सम्बन्धमें हमारा ज्ञान अधूरा और कभी कभी भ्रमात्मक भी होता है। इस असहायावस्थाको दूर करनेका प्रयत्न होना आवश्यक है। और इसके लिये मुख्य मुख्य विद्यापीठोंमें जर्मन फ़्रेंच आदि यूरोपीय भाषाओंकी शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिये। अँगरेज़ीकी अपेक्षा इन भाषाओंके लिये अध्यापक प्राप्त करनेमें कठिनाई होगी। किन्तु इसे दूर करनेका यह उपाय हो सकता है कि प्रत्येक विद्यापीठमें सभी भाषाओंकी शिक्षाका प्रबन्ध न किया जाकर एक एक विद्यापीठमें एक एक भाषाके लिये प्रबन्ध रहे। इस प्रकार यह कठिनाई भी दूर हो जायगी और हमारे ज्ञानका मार्ग भी विस्तृत होगा। यह बात तो यूरोपीय देशोंकी भाषाओंके सम्बन्धमें हुई। लेकिन ज्यों ज्यों एशियामें जागृति बढ़ती जायगी त्यों त्यों एशियाई देशोंका पारस्परिक सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ होता जायगा। अतः किसी एक एशियाई भाषाका ज्ञान होना भी आवश्यक है और इसके लिये फ़ारसी ही सबसे अधिक उपयुक्त है। हिन्दोस्तानके लोगोंके लिये उसका सीखना भी

बहुत आसान है और उसके लिये शिक्षक मिलनेमें भी कठिनाई नहीं पड़ेगी। उत्तर भारतके प्रत्येक विद्यापीठमें फ़ारसी पढ़ानेके लिये एक मौलवी रखे जा सकते हैं। किन्तु ऊपरकी पङ्क्तियोंका यह तात्पर्य नहीं है कि जर्मन, फ़्रेञ्च या फ़ारसी भाषाकी शिक्षा, पाठ्यक्रमका एक अनिवार्य अंग हो। इन भाषाओंकी शिक्षाका केवल प्रबन्ध होना चाहिये और विद्यार्थियोंको उन्हें सीखनेके लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

चौथा प्रश्न औद्योगिक शिक्षाके सम्बन्धमें है। धीरे धीरे यह विषय विवादके परे होता जा रहा है कि केवल बौद्धिक, या केवल औद्योगिक शिक्षा बिलकुल अपूर्ण होती है। सरकारी विद्यालयों और अधिकाँश राष्ट्रीय विद्यालयोंकी शिक्षाप्रणालीमें औद्योगिक शिक्षाको कोई स्थान ही नहीं दिया गया है। किन्तु आरम्भिक श्रेणियोंमें शिक्षाकी दृष्टिसे ही हाथसे काम करनेका अभ्यास कराना आवश्यक है। और माध्यमिक विद्यालयोंके पाठ्यक्रमका तो स्वरूप ही बदल दिया जाना चाहिये। जो विद्यार्थी माध्यमिक विद्यालयकी शिक्षा समाप्त करके कालेजमें जाना चाहें उनका पाठ्यक्रम एक प्रकारका हो और जो कालेजमें न जाकर किसी उद्योग धन्धेके द्वारा जीविका उपार्जन करना चाहें उनका दूसरे प्रकारका हो। प्रथम प्रकारके विद्यार्थियोंको भी औद्योगिक शिक्षा दी तो अवश्य जाय लेकिन वह साधारण ही हो। लेकिन दूसरे प्रकारके विद्यार्थियोंको

उद्योग ही प्रधान रूपसे सिखलाया जाय। पाठ्यक्रम बनाते समय इस सम्बन्धमें विस्तारसे विचार किया जा सकता है।

पांचवाँ प्रश्न शारीरिक शिक्षा और व्यायामका है। महाराष्ट्रको छोड़कर अन्य प्रान्तोंके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि वहाँकी संस्थाओंमें इसके लिये कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। महाराष्ट्रमें तो प्रत्येक संस्थाके साथ उसके साधनोंके अनुरूप एक व्यायामशाला है। किन्तु अन्य प्रान्तोंमें इसकी कोई व्यवस्था नहीं है। व्यायाम-शिक्षक रक्खे जाते हैं, किन्तु इस विषयको काफ़ी महत्व नहीं दिया जाता। आवश्यकता इस बातकी है कि प्रत्येक संस्थाके साथ एक अच्छी व्यायामशाला हो जहाँ विद्यार्थियोंका शारीरिक बल बढ़ानेके अतिरिक्त उन्हें आत्मरक्षा कर सकने योग्य बनाया जाय।

राष्ट्रीय विद्यालयोंमेंसे अधिकाँशमें शिक्षा निःशुल्क है। यदि कहीं शुल्क लिया भी जाता है तो बहुत कम। फिर भी विद्यार्थियोंके भरण पोषणका भार उनके माता पिता पर ही रहता है। कुछ संस्थाओंकी ओरसे कुछ योग्य विद्यार्थियोंको सहायता दी जाती है, किन्तु शिक्षासंस्थाओंके लिये यह सम्भव नहीं है कि वे अपने ख़र्चसे सब विद्यार्थियोंके लिये परवरिशका प्रबन्ध कर सकें। यदि कुछ ऐसे उपाय किये जा सकें जिनके द्वारा विद्यार्थी, अध्ययन करते समय भी अपनी जीविका या उसका कोई अंश उपार्जन कर सकें तो शिक्षाके प्रचारमें बड़ी सहायता मिले। यूरोप-आदि देशोंमें भी विद्यार्थियोंको

स्वावलम्बी बनानेके उपाय खोजे जारहे हैं और इस भावको प्रोत्साहन दिया जा रहा है। भारत ऐसे ग़रीब देशमें तो इसकी और भी अधिक आवश्यकता है। किन्तु यूरोपकी परिस्थितिमें और यहाँ की परिस्थितिमें बहुत अन्तर है। जिन कामोंके द्वारा वहाँके विद्यार्थी जीविका उपार्जन करते हैं, वे काम, यहाँके विद्यार्थियोंको मिल ही नहीं सकते। इसके सिवाय प्रत्येक प्रान्तके लिये यह काम भिन्न भिन्न प्रकारका होगा। किन्तु शिक्षा संस्थाएं यदि इसका ख़याल रक्खें और विद्यार्थियोंको काम दिलानेका प्रबन्ध करें तो बहुत कुछ हो सकता है। गरमी या बरसातकी लम्बी छुट्टियोंमें विद्यार्थी प्रचार कार्यके लिये गाँवोंमें भेजे जा सकते हैं। देहातके लोगोंको अक्षर ज्ञान करानेका यह एक अच्छा तरीक़ा हो सकता है। इन शिक्षा संस्थाओंके अतिरिक्त कुछ अन्य संस्थाएँ इस कामको अपने हाथमें लेकर विद्यार्थियोंसे यह काम करावें तो बड़ी आसानीसे दोनों ही काम हो सकते हैं। इससे विद्यार्थियों द्वारा द्रव्योपार्जन तथा देहातियोंके बीच अक्षरज्ञान बढ़नेके अतिरिक्त एक बड़ा लाभ यह होगा कि शहर और गाँवके बीचकी खाई कम होती जायगी और विद्यार्थियोंको छोटी उम्रसे ही अपने देशकी अवस्थाका और देशवासियोंका परिचय मिलने लगेगा। यह तो बड़ी छुट्टियोंके समयका काम हुआ। किन्तु अध्ययन कालमें भी उपार्जन करनेके तरीक़े निकाले जा सकते हैं।।

यहां तक तो वे सब बातें हुई जो प्रत्येक विद्यालयके द्वारा अलग

अलंग को जानी चाहियें और जो इस प्रकार अलग अलग की भो जा सकती हैं। किन्तु बहुतसे कार्य ऐसे हैं जो राष्ट्रीय शिक्षाके प्रचारके लिये आवश्यक हैं, किन्तु किसी एक संस्थाके द्वारा ही उनका होना असम्भव है। पाठ्यपुस्तकोंकी रचनाको ही लीजिये। सभी भाषाओंमें सभी कोटिकी पाठ्य पुस्तकोंकी आवश्यकता है। भिन्न भिन्न संस्थाएँ इसके लिये प्रयत्न भी कर रही हैं। किन्तु जहां तक ग्रन्थ रचनाकी बात है वहां तक यदि सब संस्थाएं मिल कर काम करें तो इतनी ही शक्तिसे बहुत अधिक काम हो सकता है। इसके लिये यह आवश्यक होगा कि एक पाठ्यक्रम समिति हो जिसमें सभी संस्थाओंके प्रतिनिधि रहें। यह समिति इस बातका निश्चय करे कि किस किस विषय पर किस किस कोटिकी पुस्तकोंकी आवश्यता है और इसका निश्चय होने पर योग्य व्यक्तियों द्वारा वे पुस्तकें लिखवाई जायँ। फिर अन्य भाषाओंमें उन्हीं पुस्तकोंके अनुवाद करा लिये जायँ। इससे एक ही प्रकारकी भिन्न भिन्न पुस्तकें लिखनेका श्रम बचेगा, जो अन्य आवश्यक ग्रन्थोंकी रचनामें लगाया जा सकेगा।

दूसरा कार्य हो सकता है अन्य देशोंके विश्वविद्यालयोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित करने, तथा वहाँ अपने विद्यार्थियों और स्नातकोंकी शिक्षाके लिये सुविधा करनेका। यदि प्रत्येक विद्यापीठ इसके लिये अलग अलग प्रयत्न करे तो यह कार्य बहुत कठिन हो जायगा और इसीमें बहुत कुछ शक्ति लग जायगी। किन्तु सभी

संस्थाओंका एक प्रतिनिधि मण्डल इस कामको अपने हाथमें लेकर इसे अच्छी तरह पूरा कर सकता है।

जितनी आवश्यकता अन्य देशोंके विश्वविद्यालयोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित करनेकी है, उससे कहीं अधिक आवश्यकता इस बातकी है कि राष्ट्रीय विद्यालयोंके बीच आपसमें सम्बन्ध स्थापित हो। एक स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा समितिके द्वारा यह कार्य भलीभाँति हो सकता है। इसके द्वारा इस बातका भी प्रबन्ध किया जा सकता है कि प्रत्येक विद्यापीठके एक या अधिक अध्यापक कुछ कुछ समयके लिये दूसरे विद्यापीठोंमें रहें। इस प्रकार कुछ दिनोंके बाद सभी विद्यापीठोंमें कुछ ऐसे लोग हो जायँगे जो सभी संस्थाओंकी कार्य-प्रणालीसे अच्छी तरह परिचित होंगे। इससे एक दूसरेसे बहुत कुछ सीखने और अपनी कार्यप्रणालीमें आवश्यक और अधिक लाभदायक परिवर्तन करते रहने की अच्छी सुविधा रहेगी।

इन सब तथा सामूहिक रूपसे किये जाने योग्य अन्य कार्योंको पूरा करनेके लिये एक 'स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा समिति' की अत्यन्त आवश्यकता है। यह समिति न केवल समस्त राष्ट्रीय विद्यालयोंकी एक प्रतिनिधि संस्था होगी, बरन् वह ऐसे कार्य भी कर सकेगी जो शिक्षाप्रचार तथा शिक्षा सम्बन्धी समस्याओंको हल करनेके लिये आवश्यक होंगे। इसके द्वारा समय समयपर अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन भी कराये जा सकते हैं और इस प्रकार विचार विनियमसे

बहुत कुछ लाभ हो सकता है। यह समिति विद्यालयोंका नियन्त्रण नहीं करेगी, बरन् उचित सलाह देकर उनका मार्ग प्रदर्शन करती रहेगी। अपनी आन्तरिक व्यवस्थाके सम्बन्धमें तो सभी विद्यालय स्वतन्त्र रहेंगे। यह अच्छा होगा कि इस समितिमें राष्ट्रीय विद्यालयोंके प्रतिनिधियोंके अतिरिक्त ऐसे शिक्षा शास्त्री भी रहें जिनका किसी राष्ट्रीय विद्यालयसे सम्बन्ध न हो। यदि उनका सम्बन्ध किसी सरकारी या अर्धसरकारी संस्थासे हो तौ भी इस कार्यके लिये उनकी व्यक्तिगत सहायता लेना अनुचित न होगा।

सरकारी विद्यालयों और राष्ट्रीय विद्यालयोंके बीच अभी तक कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। इसका हो सकना भी असम्भव था। दोनों, एक दूसरेसे अलग रहते थे और एक दूसरेको अपना विरोधी ही समझते थे। कुछ दिनोंसे सरकारी विद्यालयोंने तो अपना रुख बदला है। राष्ट्रीय विद्यालयोंके अस्तित्वको वे स्वीकार करने लगे हैं और समय समयपर उनकी सहकारिता भी प्राप्त करना चाहते हैं। राष्ट्रीय विद्यालयोंको भी अब अपनी नीति बदलनी चाहिये। जहाँ तक दोनों मिल सकते हैं वहाँ तक मिलकर काम करनेका प्रयत्न करें और जहाँ न मिल सकें वहाँ अलग रहें। साथ ही सरकारके प्रति भी हमें अपनी नीति बदलनी चाहिये। जहाँ तक सरकारी नियन्त्रणसे स्वतन्त्र रहनेकी बात है वहाँ तक तो इस नीतिमें किसी प्रकारके परिवर्त्तनकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन हमें यह

नहीं भूलना चाहिये कि सरकारी नियन्त्रणमें देशके अधिकाँश विद्यालय चल रहे हैं। वहाँकी शिक्षाप्रणालीके दोषोंको दूर करनेके लिये स्वराज्य प्राप्त होने तक ठहरना, देशके लिये बहुत ही घातक होगा। अतः हमें आन्दोलन और प्रचारके द्वारा सरकारी विद्यालयोंकी शिक्षाप्रणालीको भी अपने अनुसार करनेका प्रयत्न करना चाहिये। निस्सन्देह इस प्रकारका काम उसी समय किया जा सकता है—जब कि देशमें सरकारसे असहयोग करनेका कार्यक्रम न चल रहा हो।

जिस राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलनकी योजना की जा रही है उसके सम्मुख ये सब तथा शिक्षासे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य विषय विचारार्थ उपस्थित होंगे। शिक्षाकी समस्या स्वभावतः ही गम्भीर होती है, फिर भारतवर्षमें तो उसके मार्गमें नयी नयी कठिनाइयाँ हैं। ऐसी अवस्थामें इस सम्मेलनका कार्य शीघ्रतासे समाप्त करनेकी चेष्टा न होनी चाहिये। यह इस प्रकारका पहला ही सम्मेलन है। अतः इसमें विचार विनियमके लिये जितना ही अधिक अवसर मिलेगा, इसके निर्णय उतने ही अधिक गम्भीर और स्थायी हो सकेंगे। काशी विद्यापीठने लगभग एक वर्ष पूर्व इस सम्मेलनका आयोजन आरम्भ किया था। तबसे लगातार इसके लिये काम हो रहा है। अन्य संस्थाओंके प्रतिनिधि तथा शिक्षाविशेषज्ञ भी अपना बहुमूल्य समय और धन ख़र्च करके दूर दूरसे आवेंगे। इतने आयोजनके बाद इस सम्मेलनका कार्य किसी प्रकार शीघ्रतासे समाप्त कर देना,

न होगा। इतना काम तो होना ही चाहिये जिससे इसके
में लगने वाले श्रम और सम्पत्तिका प्रतिफल मिल सके।
ा यदि आरम्भके दो एक दिन भिन्न भिन्न संस्थाओंके प्रति-
को अपना अपना दृष्टिकोण समझानेके लिये दिये जायँ।
बाद दो एक दिन शिक्षाकी भिन्न भिन्न समस्याओंपर विशे-
भाषण हों, और तब प्रस्तावोंपर विचार हो एवम् भावी कार्य-
निश्चित किया जाय।

भाग—२

मुख्य मुख्य संस्थाओंका परिचय ।

पहला अध्याय।

अनाथ बालिकाश्रम, हिंगणे।

अन्य प्रान्तोंकी भाँति महाराष्ट्रमें भी स्त्रीशिक्षा और समाज सुधारके आन्दोलन साथ साथ ही चलते हैं। दोनों एक दूसरेपर अपना प्रभाव डालते हैं। समाजके अनुचित रूढ़ियोंके टूटने तथा विचारमें उदारता आनेसे शिक्षाके मार्गकी कठिनाइयाँ दूर होती हैं, और शिक्षाप्रसारसे सामाजिक कुरीतियोंके दूर होनेमें सहायता मिलती है। जालन्धर कन्यामहाविद्यालयके संस्थापक और सञ्चालक लाला देवराजकी तरह आचार्य कर्वेको भी महाराष्ट्र प्रान्तमें स्त्री शिक्षाका प्रचार करनेमें अनेक तरहकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। पर आज उन्हें आश्चर्यकारक सफलता मिल चुकी है। जो बीज सन् १८९६ ईसवीमें अनाथ बालिकाश्रमके रूपमें अङ्कुरित हुआ था उसने अब भारतवर्षकी सर्वप्रथम महिला विद्यापीठका विशाल रूप धारण कर लिया है।

सन् १८९३ ईसवीमें पूनेमें एक विधवा विवाहोत्तेजक मण्डली-

की स्थापना की गई थी। इसके सञ्चालकोंमें आचार्य कर्वे मुख्य
थोड़े ही दिनों बाद सञ्चालकोंने देखा कि इसका नाम भ्रम
है। संस्थाका उद्देश्य यह नहीं था कि विधवाओंको विवाह क
लिये प्रोत्साहित किया जाय, वरन् उसका उद्देश्य यह था कि
वाओंको किसी भी अवस्थामें विवाह न करने देनेकी जो
रूढ़ि समाजमें प्रचलित है उसे तोड़ा जाय और जो विधवाएँ
विवाह करना चाहें उनकी इस सम्बन्धमें सहायता की जाय।
सन् १८९५ में इसका नाम बदल कर विधवा विवाह प्रति
निवारक मण्डली रक्खा गया। इसी बीच आचार्य कर्वे
विधवाओंकी असहायावस्थाकी ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने
कि परिवारके लोग तो विधवाओंकी उपेक्षा करते हैं, और वे स्व
तो अपना भरणपोषण करनेमें ही समर्थ रहती हैं और न स
उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही रहता है। अतः १४ जून सन्
ईसवीको उन्होंने पूनेमें अनाथ बालिकाश्रमकी स्थापना की।
विधवाओंको सुशिक्षा देकर स्वावलम्बिनी बनाना ही इसका
रक्खा गया। बहुत दिनों तक इस संस्थाको तरह तरहके वि
का सामना करना पड़ा। एक तो पुराने ख़यालके लोग स्त्रि
ही विरोधी थे; दूसरे, जो लोग विधवाओंकी सहायताके लि
तरहकी शिक्षाको उचित भी समझते वे इस भयसे कि, यहाँ
कर वह पुनर्विवाह करनेके लिये शिक्षित की जायँगी—विध

यहाँ भेजनेमें हिचकिचाते थे। इसके सिवाय संस्थाको बदनाम करनेके उद्देश्यसे प्रचार करने वाले लोग तो मौजूद थे ही। अनाथ-बालिकाश्रमके अधिकारियोंने यह स्पष्ट रूपसे विज्ञापित कर दिया कि विधवा विवाह आन्दोलन इस संस्थाका कोई उद्देश्य नहीं है - यह तो केवल उन्हें शिक्षित बनाकर वैधव्यावस्थामें उन्हें स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न करती है। हर तरहसे बचे रहनेके लिये इन्होंने यहाँ तक किया कि यदि आश्रमकी कोई विधवा अपनी इच्छासे भी अपना पुनर्विवाह करना चाहती तो भी आश्रमके अधिकारी उसमें योग न देते और न उस कृत्यमें सम्मिलित होते। इसका कारण यह न था कि वे विधवा विवाहके विरोधी हो गये थे या अपने कार्यकी तुलना-में उस कार्यको कम महत्वपूर्ण समझते थे। वे केवल यह प्रदर्शित करना चाहते थे कि इस संस्थाका विधवा विवाह आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नहीं है, ताकि कोई व्यक्ति ग़लतफ़हमीके कारण विधवाओं-को यहाँ भेजनेसे न रुके। आरम्भमें इस आश्रममें केवल एक विधवा थी। धीरे धीरे इनकी संख्या बढ़ती गई। स्थापनाके चार वर्ष बाद ईसवी सन् १९०० के जून महीनेमें यह आश्रम पूनेसे चार मीलकी दूरी पर हिंगणे नामक स्थानमें लाया गया, जहाँ आज तक है। धीरे धीरे आश्रमकी उन्नति होने लगी और आगे चलकर सधवा स्त्रियों और अविवाहित लड़कियोंके लिये भी एक विद्यालयकी आवश्यकता-का अनुभव किया जाने लगा। अन्तमें ४ मार्च सन् १९०७ ईसवीको

एक महिला विद्यालय खोला गया। आजकल प्रारम्भिक पाठशालाओंके लिये अध्यापिकाएँ तैयार करनेके लिये एक अध्यापिका शाला भी है। इस प्रकार इस आश्रमके अन्तर्गत आजकल तीन शालाएँ हैं—प्राथमिक शाला, महिलाश्रम (हाइस्कूल), और अध्यापिका शाला (नार्मलस्कूल)। आरम्भसे ही इनका पाठ्यक्रम विलकुल स्वतंत्र रहा है! पहले यहाँकी विद्यार्थिनियाँ न्यूइंग्लिशस्कूलके मार्फ़त बम्बई विश्वविद्यालयकी मैट्रिकुलेशन परीक्षामें बैठा करती थीं। पर सन् १६१६ ईसवीमें भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ (वर्तमान श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ) के स्थापित होनेपर ये सब संस्थाएँ उसीसे सम्बद्ध कर दी गईं और उसीके पाठ्यक्रमके अनुसार यहाँकी पढ़ाई होती है। इस विद्यापीठकी अध्यापिका शालाके प्रमाणपत्रोंको सरकार स्वीकार करती है और अनाथ बालिकाश्रमका महिला विद्यालय भी सरकार द्वारा मान्य है।

पाठ्यप्रणालीमें इन बातोंका ध्यान रक्खा गया है—(क) विधवाओंको ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे आत्मसम्मान पूर्वक जीविका उपार्जन कर सकें, (ख) अविवाहित लड़कियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध इस ढंगका हो जिससे बालविवाहकी कुप्रथाको बन्द करनेमें सहायता मिले और (ग) विवाहिता स्त्रियोंको ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे योग्य गृहिणी हो सकें; संक्षेपमें यह कि स्त्रियोंको ऐसी शिक्षा दी

जाय जिससे उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नति हो। शिक्षाका माध्यम आरम्भसे अन्ततक मराठी भाषा है। छः वर्षसे अधिक उम्रकी कोई भी विवाहित या अविवाहित हिन्दू लड़की या २५ वर्षसे कम उम्रकी विधवा यहां भरती हो सकती है। आश्रममें दो भोजनालय हैं—एकका मासिक व्यय १३ रुपया और दूसरेका ११ रुपया है। दूध और जलपान आदिका ख़र्च इसमें शामिल नहीं है। शिक्षा शुल्क १ से २ रुपये तक लगता है। साधारणतया सभी विद्यार्थिनियोंको शिक्षाशुल्क और भोजनका व्यय देना पड़ता है। पर ग़रीब विधवाओंका सब ख़र्च माफ़ भी कर दिया जाता है। १ जनवरी सन् १९२९ ईसवीको आश्रममें विद्यार्थिनियोंकी संख्या इस प्रकार थी—

	अविवाहित,	विवाहित	विधवा	योग
महिलाश्रम	५३	१०	३५	९८
अध्यापिकाशाला	२	२	१५	१९
प्राथमिकशाला	३२	९	२७	६८
	८७	२१	७७	१८५

इनमेंसे ७५ का सब ख़र्च माफ़ था।

वौद्धिक शिक्षाका पाठ्यक्रम तो श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठद्वारा निर्धारित है जिसका विवरण उक्त विद्यापीठके वर्णनमें मिलेगा। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन विद्यालय आरम्भ होने पर १५ मिनट धार्मिक और नैतिक

शिक्षाके लिये दिया जाता है, जिसमें भगवद्गीताके श्लोक और महाराष्ट्रीय साधुसन्तोंके भजनों द्वारा प्रवचन होते हैं। ऊपरकी कक्षाओंमें सनातनधर्मकी सुसम्बद्ध शिक्षा भी दी जाती है। सन्ध्या समय भी प्रार्थना होती है जिसमें पुराणके प्रवचन या भजन होते हैं। विद्यालयके समय विभागमें शारीरिक व्यायामके लिये भी समय रक्खा गया है जिसमें भिन्न भिन्न उम्रकी लड़कियोंके शारीरिक गठनके अनुसार खेल और कवायद होते हैं। विद्यार्थिनियोंकी एक वाद सभा है और वे हाथसे लिखकर अपना एक मासिकपत्र भी निकालती हैं।

अध्यापिकाशालासे सन् १९२८ तक ३८ अध्यापिकाएँ निकल चुकी थीं, और सन् १९२९ के आरम्भमें २० वहाँ शिक्षा पा रही थीं।

दूसरा अध्याय ।

कन्यागुरुकुल, देहरादून ।

पञ्जाबकी आर्यप्रतिनिधि सभाने गुरुकुल कांगड़ीके २१ वें वार्षिकोत्सवके अवसरपर एक कन्यागुरुकुल खोलनेका निश्चय किया था। दिल्लीके स्वर्गीय सेठ रघुमलसे इस कार्यके लिये दान मिलनेपर २३ कार्तिक सम्वत् १६८० को दिल्लीमें इसकी स्थापना हुई और तीन साल बाद यह देहरादून लाया गया। तबसे यहीं है। इसके सारे नियमोपनियम कन्याओंके सम्बन्धमें उपयुक्त परिवर्तनके साथ गुरुकुल कांगड़ीकी ही तरह हैं। केवल ऐसी वैदिक धर्मकी विश्वासिनी सदाचारिणी विदुषी ही इस शिक्षणालयमें अध्यापिका पदपर नियुक्त हो सकती हैं जो वैदिक्धर्मके उन ५१ सिद्धान्तोंको मानती हों जिन्हें महर्षि दयानन्द सरस्वतीने माना है। किन्तु अन्तरङ्ग सभाको अधिकार है कि किसी अध्यापिका विशेष (आचार्याके अतिरिक्त) के सम्बन्धमें वैदिकधर्मविश्वास तथा ५१ सिद्धान्तोंको माननेके नियमको जहाँतक उचित समझे शिथिल कर दे। यहाँ पुरुष अध्यापक नियुक्त नहीं हो

सकते। इस गुरुकुलमें साधारणतया छः से आठ वर्ष तककी उम्रकी और विशेष अवस्थामें ९ वर्षकी उम्र तककी वे ही ब्रह्मचारिणियाँ प्रविष्ट हो सकती हैं जिनके माता पिता वा संरक्षक यह प्रतिज्ञा करें कि कमसे कम १६ वर्षके पूर्व ब्रह्मचारिणीका वाग्दान या विवाह संस्कार न करेंगे। अभिभावकोंको यह भी प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि ब्रह्मचारिणीको गुरुकुलमें प्रविष्ट करानेके पश्चात् उसकी १६ वर्षकी उम्र होने तक उसे गुरुकुलसे नहीं ले जायँगे। किसी विशेष अवस्थामें उसे कुछ कालके लिये घर जानेकी अनुमति मिल सकती है। इस गुरुकुलका पाठ्यक्रम ११ वर्षोंका है जो दो भागोंमें बँटा हुआ है—विद्यालय ८ वर्ष और महाविद्यालय ३ वर्ष। शिक्षा आरम्भसे अन्त तक निःशुल्क है। किन्तु भरण पोषणके लिये अभिभावकोंको विद्यालयमें १५ रुपये मासिक देना पड़ता है। महाविद्यालयके लिये कुछ अधिक लिया जाता है। यह रक़म प्रति मास सीधे अध्यक्षके पास भेजी जाती है, और ब्रह्मचारिणियोंका सारा प्रबन्ध गुरुकुलकी ओरसे किया जाता है। अन्तरङ्ग सभाको अधिकार है कि होनहार अनाथों तथा ऐसी बालिकाओं वा संश्रिताओंकी शिक्षाका प्रबन्ध—जिनके माता पिता समस्त वा एक अंशमें भरणपोषणका व्यय न दे सकते हों—अपने ख़र्चसे करे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस गुरुकुलका पाठ्यक्रम ११ वर्षोंका है जो दो भागोंमें बँटा है—विद्यालय ८ वर्ष और महाविद्यालय ३ वर्ष। विद्यालयकी अन्तिम दो श्रेणियोंकी परीक्षा

अधिकारी परीक्षा कहलाती है, जिसमें उत्तीर्ण होनेपर ब्रह्मचारिणी-को महाविद्यालयमें प्रवेशका अधिकार मिलता है। विद्यालयकी प्रथम छः श्रेणियोंमें आर्यभाषा (हिन्दी), धर्मशिक्षा, गणित, इतिहास, भूगोल और कलाकौशलकी शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त आरम्भकी श्रेणियोंमें शिशुवाटिका और वस्तुपाठ, चतुर्थ और पञ्चम श्रेणियोंमें संस्कृत तथा छठीं श्रेणीमें वाद्यकी भी शिक्षा दी जाती है। अधिकारी परीक्षा अर्थात् सप्तम और अष्टम श्रेणियोंके लिये, संस्कृत साहित्य और व्याकरण, आर्यभाषा (हिन्दी) धर्म-शिक्षा, इतिहास, गणित, वाद्य और कलाकौशल रखे गये हैं। इनके अतिरिक्त बँगला, गुजराती और मराठी इन तीन देशी भाषा-ओंमेंसे भी कोई एक लेना पड़ता है। कलाकौशलमें सीने, पिरोनें और बुननेकी तथा वाद्यमें सितार आदिकी शिक्षा दी जाती है। पाठके समयसे बाहर, चरखा कातने, खड्डी चलाने और भोजन बनानेके काम सिखलाये जाते हैं। सप्ताहमें दो बार रोगीसेवा और स्वास्थ्यरक्षापर व्याख्यान दिये जाते हैं। इन सबमें उपस्थित रहना तथा उत्तीर्ण होना आवश्यक है। कृषि तथा अन्य प्रकारके देशी खेलोंके अतिरिक्त कन्योपयोगी व्यायामोंका भी प्रबन्ध किया गया है। महाविद्यालयमें धार्मिक शिक्षा, संस्कृत साहित्य, इतिहास, पदार्थविज्ञान और मनोविज्ञानकी शिक्षा दी जाती है। अँगरेज़ी ऐच्छिक विषयके तौरपर ली जा सकती है।

बालिका समाजके नामसे ब्रह्मचारिणियोंकी एक सभा है। अनध्यायके दिन इसकी बैठकें होती हैं। भजन और प्रार्थनाके पश्चात् ब्रह्मचारिणियोंके भाषण और वादविवाद होते हैं। समय समयपर अन्य सभाएँ भी होती हैं। सन् १९२९ में ब्रह्मचारिणियों-की संख्या १५० थी। अभीतक स्नातिकाएँ नहीं निकली हैं पर दसवीं श्रेणीतककी शिक्षा होने लगी है और एक वर्ष बाद स्नातिकाएँ भी निकलने लगेंगी। यहाँ समस्त ब्रह्मचारिणियोंको केवल खादीके ही वस्त्र पहिननेके लिये दिये जाते हैं।

कन्या गुरुकुलका पाठ्यक्रम तैयार करते समय जो बातें ध्यानमें रक्खी गई हैं उन्हें स्पष्ट करते हुए पाठ्यक्रमकी भूमिकामें कहा गया है कि :—

"स्त्री पुरुष जीवनभरके साथी हैं। भारतवर्षमें तो एक बार विवाह हो चुकनेके पश्चात् उसका तोड़ा जाना धार्मिक आज्ञाके प्रतिकूल समझा जाता है। किन्तु समता न होनेपर तो एक मिनट भी किसीसे बात करना दूभर हो जाता है, फिर जीवनभरका साथ तो सर्वथा ही असम्भव है। अतः स्त्रीपुरुषमें पारिवारिक सुख बढ़ानेके लिये उनमें समता लाना ही मुख्य साधन है।

"परन्तु यह समता कैसे लायी जाय ? कई समझते हैं कि बालकों और बालिकाओंको एक ही प्रकारकी शिक्षा देनेसे उनमें समता आ सकती है। वे बालकोंसे बालिकाओंके प्राकृतिक भेदोंको

ध्यान न रखते हुए दोनोंको एक प्रकारकी शिक्षा देकर उनमें समता लानेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु यह बड़ी भारी भूल है। इसी भूलका यूरुपको शिकार बनना पड़ रहा है। ...... दोनोंकी, प्रकृतिने पृथक् पृथक् रचनाकी है और दोनोंकी अलग २ आकाँक्षाएँ हैं। मानव शरीरकी रचना की इन भिन्नताओंको दृष्टिमें रखते हुए ही उनकी पाठविधिका निर्णय होना चाहिये, अन्यथा अन्धाधुन्ध करनेसे स्त्रियाँ शिक्षिता तो हो जाँयगी परन्तु जिस उद्देश्यसे 'स्त्री-शिक्षा' की आवश्यकता है वह उद्देश्य हल नहीं होगा।

"कन्या गुरुकुलकी पाठविधिमें प्रयत्न किया गया है कि इसके अनुसार शिक्षिता स्त्री सुशिक्षित पुरुषसे बहुत कम न रहे, स्वतन्त्र विचार कर सके और सभ्यसंसारको वह साहित्य दे सके जो स्त्री-जातिके सिवाय और कोई नहीं दे सकता। परन्तु इतनेसे इस भूल-में न पड़ जाना चाहिये कि इस पाठविधिके अनुसार स्त्री पुरुषोंकी एक ही पाठविधि रक्खी गई है। ......पुरुषोंकी पाठविधिसे मिलाते हुए भी इसे उससे बहुत भिन्न रक्खा गया है। इस पाठविधिमें निम्नलिखित बातोंपर विशेष ध्यान रक्खा गया है:—

"संस्कृत साहित्यः—साहित्यका अनुभाव (Emotions) से अधिक सम्बन्ध है। स्त्री जातिका भी अनुभाव (Emotions) का हिस्सा बढ़ा हुआ होता है। अतः साहित्य तथा स्त्री जातिका घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुरुषोंको जीवनरूपी संग्राममें कृतकार्यतासे लड़नेके

लिये जितना आवश्यक विज्ञानों (Sciences) का पढ़ाना है, उतना ही आवश्यक स्त्री जातिको अपने विशेष प्रेमसञ्चारक मिशनको कृतकार्य बनानेके लिये साहित्यका पढ़ाना है। प्रत्येक भाषाके साहित्यकी वृद्धिमें स्त्रियाँ जितनी कृतकार्य हो सकती हैं उतनी कृतकार्यता बहुत-से पुरुष नहीं प्राप्त कर सकते। हम अपने साहित्यकी उन्नति करना चाहते हैं अतः हम स्त्रियोंको साहित्य पढ़ाना चाहते हैं। परन्तु संस्कृत साहित्य क्यों पढ़ाया जाय ? इसी बातमें विवाद हो जाता है। किन्तु इसका उत्तर स्पष्ट है। उर्दूका पण्डित होनेके लिए फ़ारसी जितनी आवश्यक है, अंग्रेज़ीको अच्छी तरह सीखनेके लिये लैटिन आदिका पढ़ना जितना ज़रूरी है, उससे भी बढ़ कर ज़रूरी आर्यभाषाके लिए संस्कृतका पढ़ना है। आर्यभाषा दिनों दिन उन्नति कर रही है परन्तु उसका खज़ाना संस्कृत भाषा ही है। बिना संस्कृतके आर्यभाषामें हाथ डालना अधूरी शिक्षाका—बल्कि, अधूरी-से भी कहीं कम शिक्षाका सूचक है। ………।

"वेदः—आर्यसमाजका जीवन ही वेदके पुनर्जीवनके लिये है। श्री स्वामी दयानन्दजी महाराजका जीवन भी इसी उद्देश्यकी पूर्तिमें लगा; गुरुकुलको भी इसी उद्देश्यको सन्मुख रख कर खोला गया। कन्यागुरुकुल महाविद्यालयकी पाठविधि बनाते हुए स्मरण रखा गया है कि इस समय हम वृक्षकी जड़को, मकानकी नींवको, ठीक करनेके लिये प्रयत्न कर रहे हैं। दृढ़ आर्य वही है जो वेदोंको खुली

आँखसे पढ़ सके, उन्हें समझ सके और तदनुसार अपना जीवन व्यतीत कर सके। परन्तु ऐसे आर्य पैदा होनेसे पहिले इस प्रकारकी देवियोंकी आवश्यकता है जो ऐसी सन्तानोंको जन्म दे सकें।……।

"उपनिषद् तथा दर्शन—ऊपर कहा जा चुका है कि स्त्रियोंमें अनुभाव (Emotions) की प्रधानता है। जीवनका रहस्य ही अनु-भाव (Emotions) में छिपा हुआ है। उपनिषदोंमें वही रहस्य खुला हुआ है। फिर क्या सन्देह हो सकता है कि स्त्रियोंके लिये उपनि-षदोंसे अच्छा कोई भी ग्रन्थ नहीं मिल सकता। मनावेशों (Emo-tions) को ठीक करनेमें और उन्हें ठीक दिशाकी तरफ़ बढ़ानेमें उपनिषदें सहायता देंगी–उन्हें सुन्दर तथा सुललित आर्यभाषामें प्रकट करनेके लिये संस्कृत भाषा सहायता देगी। अनुभाव (Emotions) के लिये जो काम उपनिषदें करेंगी, ज्ञानके (Inte-llect) लिये वही काम दर्शन करेंगे। इस पाठविधिमें सारे दर्शन नहीं रक्खे गये। दिग्दर्शन करानेके लिए प्रशस्तपादभाष्य तथा योगदर्शन ही पर्याप्त समझे गये हैं। इसका कारण यही है कि स्त्रियोंके लिए बहुत दार्शनिक प्रपंचोंमें पड़ना उनके दैनिक जीवनमें बहुत सहायक नहीं हो सकता। किन्तु जितनी जरूरत है वह इतनेसे ही पूरी हो सकती है। जिन कन्याओंको दर्शन पढ़नेके लिए विशेष रुचि हो उनके लिए पृथक् स्नातकोत्तर शिक्षा-पद्धतिका प्रबन्ध हो सकता है।

"निरुक्त तथा व्याकरणः—वेदार्थमें इन दोनोंकी बहुत आवश्यकता है। निरुक्तकी सहायता तो शब्द शब्दपर लेनी पड़ती है। विना निरुक्तके वेदार्थ ही नहीं हो सकता। व्याकरण भी संस्कृत ज्ञानके लिये आवश्यक होनेके कारण रक्खा गया है।......।

"गणितः—घरका काम स्त्रियोंके आधीन होता है अतः व्यावहारिक गणितकी उनके लिये विशेष आवश्यकता है। इसी लिये इस पाठविधिमें गणितके लम्बे चौड़े हिसाबोंकी अपेक्षा व्यवहारिक गणितको स्थान देना अधिक अच्छा समझा गया है।

"साइन्स......प्राकृतिक घटनाओंको न जाननेके कारण स्त्रियाँ बच्चोंमें भूतों और पिशाचोंकी कहानियाँ सुना कर ऐसा भय उत्पन्न कर देती हैं जिसका प्रभाव सन्तानके बड़े होकर प्रचण्ड पण्डित हो जानेके पीछे भी नहीं हटता। बालक को झूठी कहानियाँ न सुना कर उसके प्रश्नोंका ठीक ठीक उत्तर दे सकनेकी योग्यता प्रत्येक मातामें होनी चाहिये, और यह क्षमता विना साइन्सके साधारण ज्ञानके सर्वथा असम्भव है। बचपनके बड़े संस्कार किसे स्मरण नहीं, और उनके कारण कितने जन आज कष्ट उठा रहे हैं?......।

"इतिहासः—झूठको हटाकर सचाईको, और गप्पों, किस्सों, कहानियोंको हटाकर वास्तविक घटनाओंको इतिहासका स्थान देनेका प्रयत्न किया गया है। सीताके पतिव्रत धर्मको सुनकर किस स्त्रीके हृदयमें धर्मके लिये मरनेकी लहर न उठ खड़ी होगी? पूर्वजोंके इति-

हासको पढ़कर किसमें जाति, धर्म, देशसेवाकी अग्नि न प्रज्वलित हो जायगी? जो जिस देशमें उत्पन्न हुआ है उसे उस देशका इतिहास भी न आता हो—इससे बढ़कर शोचनीय दशा क्या हो सकती है? ......

"देश सम्बन्धी ज्ञान आजकलके लोग घरोंमें नहीं बैठते। क्योंकि घरमें उनसे देशकी वर्तमान दशापर विचार करनेवाला साथी कोई नहीं होता। परन्तु स्त्री पुरुषका सम्बन्ध ही क्या हुआ अगर पुरुषोंको अपनी प्रत्येक इच्छाको पूर्ण करनेके लिये घरसे बाहर भागना पड़े...... । स्त्रियोंके अपने हितके लिये, उनके पतियों के हितके लिये, और देशके हितके लिये, यह आवश्यक है कि उन्हें देश सम्बन्धी ज्ञानकी भी कुछ शिक्षा दी जाय।

"आर्य भाषा तथा अन्य देशी भाषाएँ:—इस बातकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि आर्यभाषाके पक्षमें भी कोई युक्ति दी जाय। अन्य देशी भाषाओंमेंसे किसी एकको चुन लेना प्रत्येक कन्याकी अपनी सम्मतिपर छोड़ा गया है। अन्य भाषाओंकी आवश्यकता इसलिये समझी गई है कि आर्यभाषाकी अपेक्षा उनका साहित्य ऊँचा है और वे पढ़ी भी बड़ी सुगमतासे जा सकती हैं।......।

"धात्री शिक्षा और शिशुपालन (Midwifery and child Nursing), आलेख्य, सीना पिरोना तथा गाना:—ये चारों ऐसे विषय हैं जिनके पक्षमें लिखनेकी कोई भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। स्त्रियोंके लिये ये आवश्यक ही नहीं परन्तु अत्यन्त आवश्यक

है। आलेख्य, चित्रकारी तथा गाना मनोभावों (Emotions) को उचित दशामें झुकानेके लिये हैं क्योंकि मनोभावों (Emotions) को उचित झुकाव देना ही शिक्षाका अन्तिम उद्देश्य है। आलेख्य तथा सङ्गीत विद्या इसमें विशेष सहायक हैं अतः इन दोनों विषयोंको इस पाठविधिमें यथास्थान रक्खा गया है। जीवन सरस बनानेके लिये इनकी अत्यन्त आवश्यकता है।...... ।"

तीसरा अध्याय

कन्या महाविद्यालय, जालन्धर।

उत्तर भारतके समाज सुधार और स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी इतिहासमें जालन्धरका कन्या महाविद्यालय और उसके संस्थापक लाला देवराजका नाम विशेष महत्व रखता है। सन् १८८६ ईसवीके सितम्बर महीनेमें 'ज़नाना स्कूल' के नामसे इस महाविद्यालयका आरम्भ हुआ था। उस समय इस स्कूलमें केवल ३ लड़कियाँ थीं। स्थानीय आर्य समाजकी ओरसे इसे सहायता दी जाती थी, पर उसकी दृष्टिमें उस समय यह स्कूल कितने महत्वका था इसका अन्दाज़ इसी बातसे लगाया जा सकता है कि इसके ख़र्चके लिये समाजने एक रुपये मासिक देनेका प्रस्ताव स्वीकार किया था। जालन्धर आर्यसमाजके सन् १८८६ की वार्षिक रिपोर्टमें इस स्कूलका ज़िक्र करते हुए कहा गया है कि "आर्य समाजने एक ज़नाना स्कूल भी खोला है जिसमें १२ विद्यार्थिनियाँ हैं। किन्तु योग्य शिक्षकोंके अभावमें इसकी शिक्षा सम्बन्धी अवस्था अच्छी नहीं है।" आगे

चलकर आर्य समाजकी ओरसे मिलने वाली एक रुपया मासिककी सहायता भी बन्द कर दी गई। आरम्भसे ही स्कूल, लाला देवराजकी माताके उत्साहसे चल रहा था। और समाजके बिलकुल हाथ खींच लेने पर उसका आर्थिक भार भी पूर्णतया उन्हीं पर रहा। ३० अगस्त सन् १८९० ईसवीको लाला देवराजने जालन्धर आर्यसमाजमें इस आशयका प्रस्ताव उपस्थित किया कि आर्यसमाजकी ओरसे एक कन्याशालाकी स्थापना की जाय। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और नियमादि बनाने तथा चन्दा उगाहनेके लिये एक कमेटी भी बनाई गई, पर उसके द्वारा कोई काम न हो सका। सन् १८९१ ईसवीमें उपरोक्त ज़नाना स्कूलका नाम आर्य कन्या पाठशाला रक्खा गया। जालन्धर आर्य समाजके सन् १८९३के वार्षिक रिपोर्टमें कहा गया है कि "आर्य कन्या पाठशालामें—जो एक दिन कन्या महाविद्यालय हो जायगा—५५ विद्यार्थिनियां हैं। पाठशालाके सम्बन्धमें विशेष उल्लेख योग्य बात यह है कि यहाँ शिक्षा पाने वाली अनेक लड़कियोंने आभूषण पहनना छोड़ दिया है।" अन्तमें १५ जून सन् १८९६ ईसवीको कन्या महाविद्यायनके नामसे इसका अन्तिम नामकरण संस्कार हुआ। इसी नामसे यह आज तक विख्यात है। जालन्धरके अतिरिक्त अन्य स्थानोंसे आकर विद्यालयमें शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियोंकी सुविधाके लिये सन् १८९५ ईसवीमें एक छात्रालय खोला गया। विद्यालय द्वारा प्रकाशित एक पुस्तिकामें

कहा गया है कि 'यह छात्रालय न केवल भारतवर्षमें किन्तु उस समयके समस्त एशियाई देशोंमें अपने तरहकी पहली संस्था थी।'

कन्या महाविद्यालयको अपने जन्मकालसे ही अनेक तरहकी बाहरी और भीतरी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। इसकी स्थापनाके समय पञ्जाबके हिन्दू समाजकी और उसमें विशेषकर स्त्रियोंकी अवस्था बहुत गिरी हुई थी। शिक्षाका सर्वथा अभाव था। यदि कोई लड़की थोड़ी बहुत शिक्षा प्राप्त कर लेती तो साधारण समाज उसे नीची दृष्टिसे देखने लगता। बाल-विवाहकी प्रथा भयानक रूपसे प्रचलित थी। परदेकी प्रथा ज़ोरोंपर थी। पुरोहितों और पण्डोंका समाजपर काफ़ी प्रभाव था और वे अपने अज्ञानवश स्त्रियोंका शिक्षिता होना महाअनर्थकारी समझते थे। अनेक सामाजिक बुराइयों और आत्मसम्मानके झूठे भावके कारण पञ्जाबके अनेक ज़िलोंमें कन्यावधकी गर्हित और रोमाञ्चकारी प्रथा भी प्रचलित थी। साधारण समाजमें प्रत्येक जातिके चौधरीका अपनी जातिवालोंपर बड़ा प्रभाव था, और वह तो स्त्रियोंके शिक्षिता किये जानेकी बाततक अपने ख़यालमें नहीं ला सकता था। ऐसी परिस्थितिमें स्त्री शिक्षाका कार्य आरम्भ करनेवालोंकी कठिनाइयोंका अनुमान भली प्रकार किया जा सकता है। एक तो ऐसे वातावरणमें पाठशालाके लिये लड़कियोंका मिलना ही कठिन था, और यदि किसी प्रकार अभिभावकोंको समझा बुझाकर, उनपर ज़ोर डालकर

उनकी लड़कियाँ पाठशालामें भरती भी की जायँ तो बाल-विवाह और परदेकी कुप्रथाके कारण उन्हें बहुतही शीघ्र पाठशालासे अलग होना पड़ता। जितने दिनोंतक वे पाठशालामें रहतीं उतने दिनोंतक भी मानों उनके मां बाप पाठशालाके अधिकारियोंपर एक तरहका अहसान करते। इस अहसानका भार उठाते हुए, पाठशालाके अधिकारियोंको उन लड़कियोंके लिये पुस्तक, कापी और स्लेट आदिका प्रबन्ध अपनी ओरसे करना पड़ता। और यह भी उस समय जब कि हिन्दी भाषामें पाठ्यपुस्तकोंका सर्वथा अभाव था।

ऐसी अवस्थामें स्त्रीशिक्षा और समाज-सुधार, एक ही कार्यके दो अङ्ग थे। सामाजिक रीतिरिवाजोंमें उदारताका भाव आये विना स्त्रियोंमें शिक्षाका प्रचार करना असम्भव था, और स्त्री-शिक्षाका आवश्यक परिणाम होता सामाजिक कुरीतियोंका दूर होना। किन्तु विद्यालयकी शिक्षिता लड़कियाँ यदि किसी सामाजिक बुराईसे अपना नाता तोड़तीं तो, शिक्षाका यह शुभ परिणाम ही, विद्यालयके अधिकारियोंकी कठिनाइयोंको और बढ़ा देता। समाजमें विद्यालयके खिलाफ़ एक आन्दोलन खड़ा हो जाता। सुधारकी प्रवृत्तिपर धर्मभ्रष्टताका आरोप किया जाता। महाविद्यालयकी लड़कियोंमें यदि अनुचित भयका भाव दूर होकर उनके चेहरेपर आत्मसम्मानका भाव दिखाई देता तो लोग उन लड़कियोंको स्त्री-सुलभ लज्जा और सङ्कोचके भावसे वञ्चित कहने लगते। यह तो हुआ उन रूढ़ि-

वादियोंका विरोध जो हर तरहके उदार विचार और समाज सुधार-के ख़िलाफ़ थे। किन्तु कन्या महाविद्यालयको उन लोगोंके विरोधका भी सामना करना पड़ा जो सामाजिक बुराइयोंको दूर करनेके काममें विद्यालयके अधिकारियोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर चलते थे। ये वही दिन थे जब कि लाहौरमें दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालेजकी स्थापना हो चुकी थी और आर्यसमाजका एक दल उसे हर तरहसे सफल बनानेके लिये सिरतोड़ परिश्रम कर रहा था। एक दूसरा दल इस कालेजकी कार्यप्रणालीसे असन्तुष्ट होकर गुरुकुल शिक्षा प्रणालीपर नयी शिक्षा-संस्था क़ायम करने और देशमें अच्छे वेद-प्रचारक पैदा करनेकी धुनमें था। इन दोनों ही दलवालोंने कन्या-महाविद्यालयके कार्यको विशेष महत्व नहीं दिया, वरन् समय समय-पर उसका विरोध ही करते रहे। कालेजपार्टीवालोंको भय था कि कन्यामहाविद्यालयका काम बढ़नेसे जनताका ध्यान बट जायगा और कालेजके लिये काफ़ी चन्दा न मिल सकेगा। इसलिये वे स्त्रियोंके लिये उच्च शिक्षाकी अनावश्यकता आदि कारण रखते हुए महाविद्यालयका विरोध करते। गुरुकुलपार्टीके लोग वेद-प्रचारकी परम आवश्यकताके सामने अन्य कार्योंका महत्व ही स्वीकार न करते।

किन्तु इन सब भीतरी और बाहरी विरोधोंका सामना करते हुए महाविद्यालयने अपना रास्ता साफ़ किया। महाविद्यालयकी

सफलताका अर्थ ही यह है कि जो सामाजिक बुराइयाँ उसके मार्गमें बाधक हो रही थीं उन्हें उसने बहुत हद तक दूर किया।

पञ्जाबमें लड़कियोंके विवाह-वयको ऊँचा करनेमें महाविद्यालयका विशेष हाथ रहा है। साथ ही जातिप्रथाकी सख़्तीको ढीला करने, परदेकी कुप्रथाको दूर करने, लड़कियोंमें व्यायाम तथा स्वास्थ्य और शरीर-रचना सम्बन्धी ज्ञानका प्रचार करने और धार्मिक विचारोंमें उदारताका भाव लानेमें विद्यालयने विशेष सफलता प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त पञ्जाबमें स्त्री अध्यापिकाओंकी कमी भी इस विद्यालयके कारण बहुत हद तक दूर हुई है। शिक्षाके सम्बन्धमें इस विद्यालयका एक विशेष महत्वपूर्ण कार्य यह भी हुआ है कि उसने हिन्दी भाषामें कन्योपयोगी साहित्यकी अच्छी वृद्धि की है। इनमेंसे अधिकांश पुस्तकें लाला देवराजजीकी लिखी हुई हैं, जिनमेंसे अनेक पञ्जाबके सरकारी शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत हैं और अनेक संयुक्तप्रान्त, राजपूताना और बङ्गालकी कन्या पाठशालाओंमें पढ़ाई जाती हैं। महाविद्यालयके पास कन्योपयोगी ग्रन्थोंका एक अच्छा संग्रहालय है जहाँ हर तरहकी पुस्तकें विक्रयार्थ प्रस्तुत रहती हैं। पिछले पाँच वर्षोंसे जलविद सखा नामक एक मासिक पत्र भी निकल रहा है, जिसमें विद्यालय सम्बन्धी समाचारोंके अतिरिक्त अन्य लेख भी प्रकाशित होते हैं।

महाविद्यालयका प्रबन्ध प्रान्तीय अथवा स्थानीय आर्यसमाज-

के आधीन नहीं है, अपितु इसके प्रबन्धके लिये एक स्वतन्त्र सभा है। आजकल महाविद्यालयके साथ, बाहरसे आई हुई छात्राओंके लिये कन्याआश्रमके नामसे एक छात्रावास, अनाथ बालिकाओंके लिये एक कन्या अनाथालय तथा विधवाओंके लिये कन्यामहाविद्यालयकी सबसे प्रथम आचार्या स्वर्गीया श्रीमती सावित्रीदेवीके नामपर 'सावित्री भवन' के नामसे एक विधवा-भवन है। विधवाओंको शिक्षिता करके स्वावलम्बी बनानेके उद्देश्यसे आजसे सात वर्ष पूर्व 'सावित्री भवन' की स्थापना हुई थी। इन्हें उपयुक्त शिक्षा देकर अध्यापनकार्यके योग्य बनानेका प्रयत्न किया जाता है। इससे वे स्वावलम्बी होनेके अतिरिक्त स्त्री शिक्षाके मार्गसे एक बड़ी बाधाको भी दूर करती हैं। सावित्री-भवनमें सन्तानरहित विधवाएँ ही निवास कर सकती हैं। उनसे मकान किराया, भोजन, दूध, घी, औषधि आदिके लिये नव रुपये मासिक लिये जाते हैं। पुस्तक और धोबी आदिका ख़र्च उन्हें अलगसे देना पड़ता है। विधवाओंका रहन सहन सादा रक्खा जाता है। वे किसी तरहका आभूषण न तो पहन सकती हैं और न अपने पास रख सकती हैं। यदि कभी किसी विधवाके सम्बन्धीकी ओरसे कोई खाने पीनेकी वस्तु आती है तो वह सबमें समान रूपसे विभक्त कर दी जाती है। सन् १९२७—२८ में इस भवनमें विधवाओंकी संख्या २३ थी। कन्याअनाथालयमें रहनेवाली अनाथ कन्याओंकी शिक्षा, भोजन, वस्त्र आदिका

समस्त प्रबन्ध विद्यालयकी ओरसे किया जाता है। इसकी स्थापना आजसे पाँच वर्ष पहले हुई थी। जालन्धरके बाहरसे महाविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त करनेके लिये आई हुई छात्राओंके निवासके लिये कन्या-आश्रम है जिसकी स्थापना सन् १८९५ ईसवीमें हुई थी। इसमें सात वर्ष या इससे अधिक उम्रकी अविवाहित कन्याएँ ही रह सकती हैं। प्रत्येक कन्यासे मकान किराया, भोजन, दूध, घी, औषधि और जलानेका तेल आदिके लिये १५ रुपये मासिक लिये जाते हैं। पहनने-के वस्त्र, उनकी धुलाई और पुस्तकादिका व्यय कन्याओंको इसके अतिरिक्त अपने पाससे देना पड़ता है। कन्याएँ आश्रममें न तो किसी तरहका आभूषण पहन सकती हैं और न अपने पास रख ही सकती हैं। यदि किसीके घरसे खाने पीनेकी कोई सामग्री आती है तो वह सबोंमें बाँट दी जाती है। कन्याओंको कामकाज तथा सेवा सिखानेके लिये आश्रमकी मुख्याधिष्ठात्री, उन्हें समय समयपर कुछ व्रत दिया करती हैं, जैसे—भोजन बनाना तथा बनानेमें सहायता देना, भोजन परोसना, हाथ धुलाना, खानेके कमरेमें पात्र आदि रखना, यज्ञशालाका प्रबन्ध करना, रोगीकी सेवा करना, औषधालयमें डाक्टर वा वैद्यकी सहायता करना, दीपक जलाना, प्रदीप साफ़ करना, आश्रमको स्वच्छ रखनेमें सहा-यता देना तथा अन्य गृह सम्बन्धी कार्य करना।

कन्यामहाविद्यालयका पाठ्यक्रम १२ वर्षोंका है जो नीचे लिखे

अनुसार पाँच भागोंमें विभाजित है—सभ्या विभाग—प्रथम पाँच श्रेणियाँ, शिक्षिता विभाग—छठीं और सातवीं श्रेणी, दीक्षिता विभाग—आठवीं और नवीं श्रेणी, उपस्नातिका विभाग—दशम श्रेणी, और स्नातिका विभाग—ग्यारहवीं तथा बारहवीं श्रेणी। शिक्षाका माध्यम आरम्भसे अन्त तक हिन्दी भाषा है। सभ्याविभाग-में हिन्दी, गणित, धर्मशिक्षा, भूगोल, हाथका काम, सङ्गीत, चित्रकला और शिल्पका प्रबन्ध है। भूगोल, हाथका काम और सङ्गीतकी शिक्षा द्वितीय श्रेणीसे, चित्रकलाकी तृतीय श्रेणीसे और शिल्पकी चतुर्थ श्रेणीसे आरम्भ होती है। संस्कृत और अँगरेज़ी केवल पाँचवीं श्रेणीमें पढ़ाये जाते हैं और विद्यार्थिनियोंको इन दोनोंमेंसे केवल एक विषय ही लेना पड़ता है। हाथके काममें, साधारण रूमाल आदि उल्हेड़ना, सामान्य बखिया, तारकशीका मामूली काम और क्रोशियेका साधारण काम सिखलाया जाता है। शिक्षिता विभागमें हिन्दी, धर्मशिक्षा, गणित और शिल्प तथा चरखा आवश्यक विषय हैं। इनके अतिरिक्त संस्कृत और अँगरेज़ीमेंसे कोई एक तथा भूगोल, सङ्गीत और चित्र-कलामेंसे कोई एक विषय लेना पड़ता है। दीक्षिता विभागमें हिन्दी, धर्मशिक्षा, इतिहास, चिकित्सा और चरखा, तथा चरशिक्षा आव-श्यक विषय हैं। इनके अतिरिक्त संस्कृत और अंगरेज़ीमेंसे कोई एक तथा सङ्गीत और चित्रकलामेंसे कोई एक विषय लेना पड़ता है। उपस्नातिका विभागका पाठ्यक्रम दीक्षिता विभागके समान ही है,

सिवाय इस अन्तरके कि इसमें चिकित्साके स्थान पर अर्थशास्त्र है। स्नातिका विभागमें धर्मशिक्षा, शिल्प और चरशिक्षा तो आवश्यक हैं। इनके अतिरिक्त संस्कृत, हिन्दी और अंगरेज़ीमेंसे कोई एक तथा सङ्गीत और चित्रकलामेंसे कोई एक विषय लेना पड़ता है। जहाँ जहाँ चरशिक्षा दी जाती है वहाँ वहाँ उसके साथ बाड़ीका काम भी शामिल है। पाकशास्त्रमें भी परीक्षा होती है और यह आवश्यक विषय समझा जाता है। सातवीं श्रेणीतक व्यायाम और खेती भी आवश्यक विषय हैं। चर्खा कातनेके लिये एक चरखामन्दिर भी बनाया गया है, पर समयाभावके कारण अभी केवल दूसरी और तीसरी श्रेणियोंको ही चरखा सिखानेका प्रबन्ध किया गया है। कन्याओंकी भाषण-शक्तिको उन्नति देनेके लिये विद्यालयमें उनकी दो सभाएँ हैं जिनके साप्ताहिक अधिवेशन होते हैं। इस महाविद्यालयमें अध्यापनकार्यके लिये महिलाओंके अतिरिक्त पुरुष भी नियुक्त होते हैं। आरम्भसे ही इस महाविद्यालयका उद्देश्य यह रहा है कि परिवारोंके लिये योग्य देवियां उत्पन्न की जावें, और इसी उद्देश्यको सामने रखते हुए शिक्षाके सम्बन्धमें पुस्तकें नियत की जाती रही हैं। किसी सरकारी पाठविधिके अनुसार परीक्षा पास करानेका अबतक यत्न नहीं किया गया। परन्तु कुछ वर्षोंसे देखा गया है कि कन्याओंकी रुचि किसी न किसी यूनिवर्सिटीकी परीक्षा पास करनेकी ओर बढ़ रही है। विद्यालय-कमेटीने इस बात

का अनुभव करते हुए इस वर्षसे हिन्दी तथा संस्कृतके लिये ऐसी पाठविधि नियत की है जिससे कन्याओंको पञ्जाब यूनिवर्सिटीकी हिन्दी और संस्कृतकी परीक्षा पास करनेमें सुगमता हो। महाविद्यालयमें कन्याओंकी संख्या सन् १६२८ ईसवीमें १६५ थी। जालन्धर शहरमें इसकी एक और शाखा भी है जिसमें उस समय ३०० से कुछ अधिक कन्याएँ थीं।

सन् १६२६ के आरम्भतक ३४ देवियाँ महाविद्यालयसे स्नातिका हो कर निकल चुकी थीं। इनमेंसे अधिकांश गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके पहिले शिक्षा और प्रचारका कार्य करती रहीं और अनेक स्नातिकाएँ अबतक यही कार्य कर रही हैं।

चौथा अध्याय।

काशी विद्यापीठ, काशी।

देशकी प्रचलित शिक्षाप्रणालीकी त्रुटियोंको देखते हुए काशी-वासी कुछ लोगोंके मनमें बहुत दिनोंसे यह बात उठ रही थी कि एक शिक्षासंस्था ऐसी स्थापित होनी चाहिये जो सब प्रकारसे स्वतन्त्र हो, अर्थात् जो आर्थिक सहायता आदिके विषयमें गवर्मेण्टके अधीन न हो और उसके शिक्षाविभागके नियमोंकी पाबन्द न हो, जिसमें सब प्रकारकी ऊँचीसे ऊँची शिक्षा मातृभाषा द्वारा देनेका प्रयत्न किया जाय, जिसमें मस्तिष्ककी शिक्षाके साथ साथ हृदय और हाथकी शिक्षा भी दी जाय, ज्ञानसम्पादनके साथ साथ सद्भाव और सच्चरित्रता तथा कुछ न कुछ शिल्पकलाकी भी शिक्षा हो, जिससे भारतवर्षीय सभ्यताकी उन्नति हो, जो भारतवर्षकी अवस्था और आवश्यकताओंके अनुकूल और उपयोगी हो, और जिसमें शिक्षा प्राप्त करनेके उपरान्त स्नातकोंको स्वतन्त्र जीविकाके उपार्जन करनेमें सुगमता और सहायता मिले, अर्थात् ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे

इहलोक परलोक, दीन और दुनिया, दोनों बने। जैसा किसी जैन कविने कहा है—

> कला बहत्तर पुरुषकी, वामें दो सरदार।
> एक जीवकी जीविका, एक जीव उद्धार॥

इस बीच भाद्रपद सम्वत् १९७७ (सितम्बर सन् १९२०) में कलकत्तेमें कांग्रेसका जो विशेष अधिवेशन हुआ उसमें बहुत विचार-के बाद यह निश्चय हुआ कि यदि भारतनिवासी अपना कल्याण चाहते हैं और अपने खोये हुए अधिकारोंको फिरसे वापस लेना चाहते हैं तो वर्तमान नौकरशाहीसे शान्तिमय असहयोगके सिवाय आत्मरक्षाका कोई उपाय नहीं है। यह निश्चय हो जानेके उपरान्त अन्य साधनोंके साथ साथ यह भी निश्चय हुआ कि अहलकारी और अर्ध अहलकारी शिक्षासंस्थाओंमें पढ़ना या अपने बालकोंको पढ़ाना उचित नहीं है। इस उपदेशके अनुसार प्रचलित शिक्षालयोंमेंसे विद्यार्थियोंने असहयोग करना आरम्भ कर दिया। काशीकी शिक्षा-संस्थाओंमेंसे भी कुछ विद्यार्थियोंने असहयोग किया। काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके कतिपय छात्रोंने अध्यापक श्री जीवतराम भगवान्-दास कृपलानीका आश्रय लेकर विद्यालयका त्याग किया और श्रीगान्धी आश्रमके नामसे सङ्घ बनाकर ईश्वरगङ्गी तालाबके निकट एक मकान किरायेपर लेकर उसमें निवास आरम्भ किया और उसमें एक पाठशाला भी आरम्भ कर दी। एक तरफ़ यह हो रहा

था और दूसरी ओर नई शिक्षासंस्था स्थापित करनेके अनुरागी अपने विचारोंको पूरा करनेके उद्योगमें लगे थे। और पूस सं० १९७७ (जनवरी सन् १९२१) में महात्मा गान्धीने श्रीभगवान्दासको पत्र लिखा कि "मुझे विश्वास है कि काशीजीमें एक महाविद्यालय शीघ्र खोलना चाहिये।" इसपर उपरोक्त विद्यानुरागी सज्जनोंने यह विचार दृढ़ कर लिया कि अब अपनी मनोकामनाके अनुसार कार्य करनेका समय आ गया। इसी विचारके अनुसार २८ माघ १९७७ (१० फरवरी सन् १९२१ ईसवी) का दिन इस कार्यके लिये निश्चित किया गया और महात्मा गान्धीजीसे प्रार्थना की गई कि वे अपने पवित्र हाथोंसे इसका आरम्भ करें। उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और काशीमें पधारकर उक्त तिथिको ८ बजे प्रातःकाल काशी विद्यापीठका आरम्भ किया।

उसी दिन काशी विद्यापीठके निरीक्षकोंकी एक सभा होकर यह निश्चय हुआ कि काशीविद्यापीठका शिक्षाप्रबन्ध आदि गवर्नमेण्टके अधीन किसी प्रकारसे न रहेगा और यहाँ हिन्दुस्तानी भाषा और देवनागरी लिपिके द्वारा यथासम्भव शिक्षा देनेका यत्न किया जायगा। यह भी निश्चय हुआ कि बुद्धिका परिष्कार करनेवाली शिक्षाके साथ साथ हाथकी कारीगरीकी भी शिक्षा दी जायगी। इस विचारसे कि शिक्षासंस्थाके लिये एकाग्रताकी अधिक आवश्यकता है, जो राजनीतिके क्षेत्रमें सम्भव नहीं है, विद्यापीठके अधिकतर

सञ्चालकोंके प्रचलित असहयोग आन्दोलनमें सम्मिलित रहते हुए भी, और विद्यापीठकी देशोद्धारके उपायोंके साथ पूर्णतया सहानुभूति रहते हुए भी यह संस्था कांग्रेसके अधीन नहीं रखी गई, और इसका नैष्ठिक अधिकार एक निरीक्षक सभाके अधीन किया गया। और निरीक्षक सभाने विद्यापीठके दिन दिनके कार्यके निर्वाहके लिये एक प्रबन्ध समितिको नियुक्त कर दिया।

स्थापनाके लगभग साढ़े छः वर्ष बाद २० श्रावण १९८४ (तारीख ५ अगस्त सन् १९२७ इसवी) को इस संस्थाकी रजिस्ट्री सन् १८६० ईसवीके २१ वें विधानके अनुसार कर दी गई। संकल्प-पत्रमें विद्यापीठके उद्देश्य इस प्रकार बतलाये गये हैं—

"अध्यात्मविद्याकी नींवपर प्रतिष्ठित भारतीय शिष्टताके संस्कार और विकासमें, तथा भारतमें बसी हुई सब जातियोंके भारतीय समाजमें यथास्थान सन्निवेश और भारतमें प्रचलित आचार-विचारोंके समुचित समन्वयमें, तथा स्वाधीनता और स्वदेशप्रेमके भावके साथ साथ लोकसेवा और मानवमात्रकी बन्धुताके भावके सञ्चारमें, तथा संसारके प्राचीन और नवीन शास्त्र शिल्प कला ज्ञान विज्ञान आदिकी वृद्धि और प्रचार करनेमें सहायता देना; और इस उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये निम्नलिखित कार्य करना—

(क) ऐसी संस्थाओंका स्थापन करना, कराना, सम्मिलित करना, चलाना, या आवश्यकतानुसार सहायता करना, जो किसी

प्रकारसे गवर्मेंएटसे सहायता न लेवें और उसके अधीन न हों, और जो ऐसे प्रकारसे हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि द्वारा शिक्षा दें जो भारतवर्षकी अवस्था और आवश्यकताओं-के अनुकूल और उपयोगी हो। ऐसी संस्थाओंके लिये, जो दूसरे प्रान्तोंमें स्थापित हों जहाँकी प्रान्तीय भाषा हिन्दी नहीं है और विद्यापीठमें सम्मिलित होना चाहें, हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि द्वारा शिक्षा देना आवश्यक न होगा। वे अपनी प्रान्तीय भाषा और लिपिद्वारा शिक्षा दे सकेंगी। परन्तु उनके पाठ्यक्रममें हिन्दीभाषा और नागरी लिपिके ज्ञानका स्थान अनिवार्य होगा।

(ख) शिक्षाके सम्बन्धमें नये प्रकारोंकी परख करना।

(ग) संस्थाओंको सम्मिलित करनेके लिये नियम बनाना और सम्मिलित संस्थाओंका समय समयपर निरीक्षण करना।

(घ) योग्य विद्यार्थियोंको प्रतिष्ठापत्र आदि देना और विशिष्ट विद्वानों और लोकहितकारियोंको सम्मानके चिन्ह भेंट करना। ………।

(ज) विद्यार्थियों तथा गवेषकोंको भारतवर्षमें अथवा विदेशोंमें अध्ययन अथवा गवेषण करनेके लिये वृत्तियाँ देना और तत्सम्बन्धी नियम बनाना।

(झ) छात्रावास, पुस्तकागार, योग्याशाला, वेधालय, शिल्पागार, कृषिक्षेत्र आदिका स्थापन करना और चलाना।

(ट) विद्यापीठके उद्देश्यकी पूर्तिके लिये, तथा विद्यापीठ और सम्मिलित संस्थाओंके अध्यापकों और अध्येताओंके और सर्वसाधारणके कामके लिये प्रायः हिन्दी भाषा और नागरी लिपिमें शिक्षाप्रद व्याख्यान दिलाने और ग्रन्थ, निबन्ध आदिके प्रकाश करनेका प्रबन्ध करना।

(ठ) विद्यापीठ तथा सम्मिलित संस्थाओंके विद्यार्थियोंको अध्ययन समाप्त करनेपर उचित जीविका प्राप्त करनेमें सहायता देना। ....।

(ड) अन्य सब ऐसे कार्य करना जिनसे शास्त्र और शिल्प आदिकी वृद्धि और प्रचारमें तथा भारतीय शिष्टताकी पुष्टि, संस्करण, और विकासमें सहायता मिले।"

आरम्भसे ही विद्यापीठकी आमदनीका एकमात्र ज़रिया श्री शिवप्रसाद गुप्त द्वारा स्थापित श्री हरप्रसाद शिक्षानिधिकी ओरसे मिलने वाली रक़म ही रही है। इस निधिकी विधिवत् रजिस्ट्री २ भाद्र १९८१ (१९ अगस्त १९२४) को हुई। किन्तु श्री शिवप्रसाद जीने इसकी स्थापनाका सङ्कल्प बहुत पहलेसे हो कर लिया था और विद्यापीठको आरम्भसे ही इस निधिके नामसे सहायता मिलती रही है। इस बातका निधिके समर्पणपत्रमें स्पष्ट उल्लेख है कि इसकी जो कुछ आय हो वह काशी विद्यापीठको उस समय तक मिलती रहे जबतक निधिके सञ्चालकोंकी सम्मतिमें काशी विद्यापीठ निम्न-

लिखित उद्देश्योंमेंसे कुछ या कुलकी पूर्ति करता रहे। निधिका मूल धन १० लाख रुपया है।

जिन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये निधिकी स्थापना हुई है वे ये हैं—

(क) ऐसी संस्था काशीमें स्थापित करना, या यदि ऐसी कोई संस्था काशीमें विद्यमान हो, या काशीमें ऐसी संस्थाके अभावमें यदि ऐसी कोई संस्था दूसरी जगह विद्यमान हो, तो उसकी सहायता करना, जहाँ हिन्दी भाषा और नागरी लिपि-द्वारा विविध प्राचीन नवीन शास्त्रों और कलाओंकी शिक्षा देनेका यथा शक्ति प्रयत्न किया जाय और वाणिज्य, व्यवसाय व शिल्पसम्बन्धी विषयोंकी व्यवहार रूपसे शिक्षाका भी यथा-सम्भव प्रबन्ध हो जिससे विद्यार्थियोंको अपने शारीरिक परिश्रमसे भी जीवन निर्वाह करनेके साधन मिल सकें।

(ख) प्रत्येक उचित प्रकारसे हिन्दी साहित्यकी वृद्धि करना, विशेषतः विज्ञान आदि विषयोंपर ग्रन्थ प्रस्तुत करके हिन्दी भाषाके भण्डारके प्रत्येक उपयोगी अङ्गको परिपूर्ण करना।

(ग) उच्चकोटिके हर प्रकारके ज्ञानान्वेषणके कार्यको, विशेषकर व्याव-हारिक विज्ञानसम्बन्धी खोजको प्रोत्साहित करना, और इस अनुसन्धानके फलको हिन्दी भाषामें प्रकाशित कराना।

(घ) छात्रवृत्ति देकर सुयोग्य भारतीय विद्यार्थियोंको उच्च कोटिकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये अन्य देशोंमें भेजना।

विद्यापीठके पास लगभग ११॥ एकड़ ज़मीन है जो ४१०००) की लागतमें ख़रीदी गई थी। इसमेंसे आधी ज़मीनका बन्दोबस्त तो काश्तकारोंके साथ है और आधीमें लगभग ६७०००) की लागत से मकानात बनवाये गये हैं जिनमें पठनपाठनका कार्य होता है।

विद्यापीठका कार्य तीन विभागोंमें बटा हुआ है—विद्यालय विभाग, शिल्प विभाग और प्रकाशन विभाग। काशीके ज्ञानमण्डलने अपना पुस्तक प्रकाशन विभाग सम्वत् १९८२ से काशी विद्यापीठको दे दिया है। तबसे ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाकी पुस्तकें विद्यापीठकी ओर-से प्रकाशित होती हैं। सम्वत् १९८५ से विद्यापीठ नामकी एक उच्च कोटिकी त्रैमासिक पत्रिका विद्यापीठके कुलपति श्री भगवान्दास और प्रधानाध्यापक श्रीनरेन्द्रदेवके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिकामें इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र, दर्शन तथा विज्ञानपर गम्भीर और गवेषणापूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं। अबतक पत्रिकाके पाँच अङ्क प्रकाशित हो चुके हैं। प्रकाशन विभागकी ओरसे मीरकासिम, अफ़लातूनकी सामाजिक व्यवस्था तथा अंगरेज़-जातिका इतिहास (द्वितीय संस्करण) ये तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पश्चिमीयूरप और हिन्दूभारतका उत्कर्ष (श्री चिन्तामणि विनायक वैद्यकी मराठी पुस्तकका अनुवाद) शीघ्रही प्रकाशित होने वाले हैं। हिन्दीशब्दसंग्रह छप रहा है। अभिधर्मकोष और बाबर नामक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं, पर इनकी छपाई अभी नहीं शुरू हुई है।

विद्यापीठका शिल्पविभाग आरम्भमें केवल शिक्षाके उद्देश्यसे चलाया गया था और उसमें सूत कातने, बुनने, लकड़ीका काम, बेतका काम और सिलाईकी शिक्षाका प्रबन्ध था। बीचमें एक लकड़ीका कारख़ाना भी खोला गया, पर यह प्रयोग बिलकुल असफल रहा, और कारख़ाना बन्द कर दिया गया। विद्यापीठके विद्यालय विभागके पाठ्यक्रममें ऐसी व्यवस्था है कि कुमार विद्यालयके विद्यार्थियोंको बौद्धिक शिक्षाके अतिरिक्त किसी एक शिल्पकी शिक्षा भी दी जानी चाहिये। इसी नियमकी पूर्तिके लिये आजकल शिल्पविभागमें केवल सिलाईकी शिक्षाका प्रबन्ध है।

विद्यापीठका मुख्य कार्य उसके विद्यालय विभाग द्वारा होता है जिसका पाठ्यक्रम तीन भागोंमें बाँटा गया है—बालविद्यालय, कुमार विद्यालय और महाविद्यालय। बालविद्यालयकी पहली श्रेणीसे महाविद्यालयकी अन्तिम श्रेणी तककी शिक्षा १५ वर्षोंमें समाप्त होती है—बाल विद्यालयकी ५ वर्षोंमें, कुमार विद्यालयकी छः वर्षोंमें और महाविद्यालयकी चार वर्षों में। बाल, कुमार तथा महाविद्यालयोंकी बौद्धिक शिक्षाकी तुलना मोटे तौरपर सरकारी विद्यालयोंके प्राइमरी स्कूल, हाइस्कूल और कालेजके एम० ए० स्टैण्डर्ड तककी शिक्षासे की जा सकती है।

बालविद्यालयमें हिन्दी, गणित, इतिहास, भूगोल, चित्रकला तथा साधारण वस्तुपाठकी शिक्षा दी जाती है। हिन्दीमें लहेरिया-

सराय दरभङ्गा द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय साहित्य चौथे भाग तककी शिक्षा अपेक्षित है। इतिहासमें पुराणोंकी कहानियाँ तथा भूगोलमें संयुक्त प्रान्त तकके भूगोलका ज्ञान कराया जाता है। गणितमें जोड़, बाकी, गुणा, भाग, लघुत्तम समापवर्त्य, महत्तम समापवर्तक तथा भिन्नकी शिक्षा दी जाती है।

कुमार विद्यालयका पाठ्यक्रम छः वर्षों का है जो दो भागोंमें विभाजित है—पहला प्रथम चार वर्षोंका और दूसरा अन्तिम दो वर्षों का। अन्तिम दो वर्षोंके पाठ्यक्रमकी परीक्षा विशारद परीक्षा कहलाती है। प्रथम चार वर्षोंमें हिन्दी, गणित और महाजनी हिसाब, इतिहास, भूगोल, अंगरेज़ी, संस्कृत, विज्ञान तथा किसी एक दस्तकारीकी शिक्षा दी जाती है। विशारद परीक्षाके लिये हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी, विज्ञान, भारतीय शासन, नागरिकशास्त्र, भारतवर्षकी वर्तमान जागृतिका इतिहास, स्वास्थ्यरक्षा, शरीर-रचना तथा कोई एक उद्योग ये आवश्यक विषय हैं। इनके अतिरिक्त विद्यार्थीको गणित, संस्कृत तथा इतिहासभूगोल इन तीन विषयोंमेंसे कोई एक विषय लेना पड़ता है। विशारद परीक्षाका कोर्स अँगरेज़ीको छोड़कर अन्य विषयोंमें सरकारी विश्वविद्यालयोंके मैट्रिकुलेशनके कोर्ससे ऊँचा है। अँगरेज़ी मैट्रिकुलेशनके कोर्सके बराबर है। उद्योगमें पाठ्यक्रमके अनुसार विद्यार्थी बेंतका काम, बढ़ईका काम, मिट्टीका बर्तन बनाना तथा दर्ज़ीके काममेंसे कोई एक

ले सकता है। पर जैसा कि ऊपर कहा गया है आजकल केवल दर्ज़ीके कामकी शिक्षाका प्रबन्ध है।

कुमार विद्यालयके पाठ्यक्रममें बौद्धिक शिक्षाके साथ साथ औद्योगिक शिक्षाको स्थान देनेका एक कारण यह भी है कि यदि कोई विद्यार्थी विशारद तककी शिक्षाका कोर्स समाप्त करके आगे महाविद्यालयमें प्रवेश न करना चाहे तो वह अब तक जिस उद्योगकी शिक्षा पाता रहा है उसीमें विशेष निपुणता प्राप्त करके अपनी जीविका चला सके। पर जो विद्यार्थी ऐसी औद्योगिक शिक्षाको अपनी जीविकाका साधन न बनाना चाहें उनके लिये भी केवल शिक्षाकी दृष्टिसे किसी एक हाथकी कारीगरीका साधारण ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझा गया है। कुमार विद्यालयका पाठ्यक्रम बनाते समय इस बातका ध्यान रक्खा गया है कि उसके प्रथम चार वर्षोंकी शिक्षा समाप्त करनेपर अँगरेज़ीको छोड़ कर अन्य विषयोंमें विद्यार्थीकी योग्यता साधारणतया मैट्रिकुलेशनके बराबर हो जाय। शिक्षाका माध्यम मातृभाषा होनेके कारण यह असम्भव नहीं है। इन श्रेणियोंमें गणित और हिन्दीके अलावा संस्कृत, अँगरेज़ी और विज्ञान इन तीनों विषयोंकी शिक्षा आवश्यक समझी गई है। संस्कृतके ज्ञानके विना भारतीय संस्कृतिका रहस्य समझमें नहीं आ सकता, और वर्त्तमान उन्नतिशील पाश्चात्य देशोंका ज्ञान-भण्डार हमारे लिये अँगरेज़ी भाषाके द्वारा ही सुगमतासे प्राप्य

है। विशारद परीक्षाका पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया गया है कि विद्यार्थीको हिन्दी और अँगरेज़ी भाषाका ज्ञान होनेके अलावा भारत-वर्षके वर्तमान शासन विधान तथा वर्तमान भारतके धार्मिक, सामाजिक एवम् राजनैतिक आन्दोलनोंका भी साधारण ज्ञान हो जाय। इसके अतिरिक्त जिस विषयमें उसकी विशेष रुचि हो उस विषयका वह विशेष ज्ञान प्राप्त करे।

महाविद्यालय विभागका पाठ्यक्रम चार वर्षोंका रक्खा गया है। प्रथम वर्षमें विद्यार्थियोंको हिन्दी, संस्कृत तथा अंगरेज़ीका अध्ययन करना पड़ता है। इनके अतिरिक्त अर्थशास्त्र, शरीर-रचना, शरीर-विज्ञान और भारतवर्षके धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक अवनतिके अध्ययनपर साधारण व्याख्यान होते हैं। शेष तीन वर्षोंमें अंग्रेजी अनिवार्य रूपसे तथा (क) दर्शन, (ख) इतिहास, अर्थशास्त्र, राज-शास्त्र तथा (ग) प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति, इन तीन वैकल्पिक विषयोंमेंसे कोई एक लेना पड़ता है। द्वितीय वर्षमें हिन्दी सब विद्यार्थियोंको तथा संस्कृत उन विद्यार्थियोंको, जो दर्शन अथवा भारतीय संस्कृति लेना चाहते हैं, पढ़नी पड़ती है। वैकल्पिक विषय दर्शन लेनेवाले विद्यार्थियोंको पूर्वीय और पाश्चात्यदर्शन पढ़ना पड़ता है। इतिहास, अर्थशास्त्र और राजशास्त्र लेनेवालोंको आरम्भसे अबतकका भारतीय इतिहास, पन्द्रहवीं शताब्दीसे वर्तमान कालतकका यूरोपीय इतिहास, प्राचीन भारतीय एवम्

अर्वाचीन पाश्चात्य राजशास्त्र और अर्थशास्त्रमें उसके सिद्धान्त, द्रव्य, चलन, बैंकिंग्, कम्पनी सञ्चालन, भारतीय व्यापारिक भूगोल, आर्थिक सिद्धान्तोंका इतिहास और विकास, श्रमजीवी सङ्घ, सहयोग, अन्तर्जातीय व्यापार, भारतवर्षका आर्थिक इतिहास, राष्ट्रीय आय-व्ययशास्त्र, भूमिविधान तथा खद्दरका अर्थशास्त्र पढ़ना पड़ता है। इसके अतिरिक्त इण्डियन पिनलकोड और क्रिमिनल प्रोसीजर कोड भी पढ़ाये जाते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति लेनेवालोंको आरम्भसे १२ वीं शताब्दी तकका भारतका इतिहास, धर्मशास्त्र, प्राचीन भारतीय साहित्य और उसमें अलङ्कार, नाटक, कला शिल्प तथा विज्ञान, दर्शन, तथा राजशास्त्र पढ़ाये जाते हैं। महाविद्यालयका पाठ्यक्रम बनानेमें इस बातका ध्यान रक्खा गया है कि विद्यार्थी अपनी प्रवृत्ति और रुचिके अनुसार कोई एक वैकल्पिक विषय चुन ले और उसीका विशेष अध्ययन करे। अन्तिम वर्षमें विद्यार्थीको अपने वैकल्पिक विषयके किसी अंशपर एक निबन्ध लिखना पड़ता है जिसमें उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। महाविद्यालयकी अन्तिम श्रेणी तककी शिक्षा समाप्त करनेपर विद्यार्थीको शास्त्रीकी उपाधि दी जाती है।

विद्यापीठके विद्यालय विभागमें आरम्भसे अन्ततक शिक्षाका माध्यम हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि है। किन्तु इसका अर्थ केवल इतनाही है कि व्याख्यान सब हिन्दीमें होते हैं। महाविद्या-

लय विभागकी अधिकांश—प्रायः सब—पाठ्यपुस्तकें अंगरेज़ी भाषामें ही हैं, अतः विद्यार्थियोंके लिये उसका पर्याप्त ज्ञान आवश्यक समझा गया है। विद्यार्थियोंके लिये चरखे अथवा तकली पर सूत कातना, खादी पहिनना और खानपानमें जातपाँतके कारण छुआछूतका ख़याल न रखना आवश्यक है। कुमार विद्यालयमें विवाहित विद्यार्थी नहीं लिये जाते। महाविद्यालयमें वे पढ़ तो सकते हैं पर छात्रावासमें नहीं रह सकते। विद्यार्थियोंसे शिक्षा अथवा छात्रावासमें रहने आदिके लिये किसी प्रकारका शुल्क नहीं लिया जाता। रुग्णावस्थामें छात्रावासियोंकी चिकित्साका प्रबन्ध भी विद्यापीठकी ओरसे ही होता है। छात्रावासमें रहनेवाले विद्यार्थियोंका मासिक ख़र्च कुमार विद्यालयमें १२ रुपये और महाविद्यालयमें १५ रुपयेके लगभग होता है। योग्य विद्यार्थियोंको विद्यापीठकी ओरसे कुछ छात्रवृत्ति भी दी जाती है।

विद्यार्थी परिषद और कुमार सभाके नामसे क्रमशः महाविद्यालय तथा कुमार विद्यालयके विद्यार्थियोंकी अलग अलग सभाए हैं जिनका सञ्चालन वे स्वयं करते हैं। वक्तृत्व शक्तिकी वृद्धिके लिये विद्यार्थियोंकी वाद सभाएँ भी हैं जिनके द्वारा प्रति सप्ताह अँगरेज़ी और हिन्दीमें वाद विवाद होते हैं। हिन्दी, संस्कृत और अँगरेज़ीमें विद्यार्थियोंकी हस्तलिखित पत्रिकाएँ भी निकलती हैं। मेलों और अन्य सार्वजनिक कार्योंके अवसरपर यहाँके विद्यार्थी प्रबन्ध और

लोकसेवाका अच्छा कार्य करते हैं। आजकल विद्यापीठमें बाल विद्यालयकी शिक्षाका प्रबन्ध नहीं है। कुमार तथा महाविद्यालयमें विद्यार्थियोंकी संख्या क्रमशः ५५ और २८ है। विद्यापीठकी स्थापनाके एक वर्ष बाद कुमार एवं महाविद्यालयमें विद्यार्थियोंकी संख्या क्रमशः २०० और १०० के लगभग थी। इसमें उत्तरोत्तर कमी आती गई। पर पिछले तीन वर्षोंसे कोई अन्तर नहीं हो रहा है।

विद्यापीठके नियमानुसार ऐसी अन्य शिक्षासंस्थाएँ भी इससे सम्बद्ध हो सकती हैं जो सरकारके नियंत्रणमें न हों और शिक्षाका प्रबन्ध विद्यापीठके पाठ्यक्रमके अनुसार करती हों। आरम्भमें ऐसे सम्बद्ध विद्यालयोंकी संख्या २३ थी जो संवत् १९८५ में घटकर ५ रह गई थी। पर जब निरीक्षण करनेपर मालूम हुआ कि इनमेंसे भी चारका पाठ्यक्रम विद्यापीठके नियमानुसार नहीं है, तब वे असम्बद्ध कर दी गईं। अब केवल एक बालविद्यालय ही विद्यापीठसे सम्बद्ध है। विद्यापीठकी ओरसे कुछ संस्कृत परीक्षाएँ लेनेका भी प्रबन्ध है पर अबतक केवल तीन विद्यार्थी ही उन परीक्षाओंमें सम्मिलित होकर उत्तीर्ण हुए हैं।

विद्यापीठके कुमार और महाविद्यालयसे संवत् १९८६ (सन् १९२९) तक ३१४ विशारद और ५१ शास्त्री (स्नातक) निकल चुके हैं। शास्त्रियोंमेंसे २ अभी विशेष अध्ययनमें लगे हुए हैं, ९ राष्ट्रीय विद्यालयों तथा महाविद्यालयोंमें अध्यापन कार्य कर रहे हैं, ४ पत्र

सम्पादन कार्यमें लगे हैं, ३ खद्दरका काम कर रहे हैं, ११ कांग्रेस, अछूतोद्धार, मज़दूर सङ्गठन एवम् अन्य प्रकारके सार्वजनिक कार्योंमें लगे हुए हैं; १७ घरके काम और व्यापार आदिमें लगे हुए हैं, और ५ अन्य स्थानोंपर नौकरी कर रहे हैं। सार्वजनिक कार्योंमें लगे हुए शास्त्रियोंमेंसे ३ लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लोकसेवकसमितिके सदस्य हैं। जो शास्त्री घरके अथवा अन्य ख़ानगी कामोंमें लगे हुए हैं, वे भी अपने अपने स्थानके सार्वजनिक कार्योंमें अच्छा भाग लेते हैं। शास्त्रीमण्डलके नामसे विद्यापीठके स्नातकोंका एक सङ्घ है जिसके द्वारा सब शास्त्रियोंमें आपसमें, तथा उनके और विद्यापीठके बीच सम्बन्ध स्थापित रहता है।

सम्वत् १९८४ (सन् १९२७) से काशीकी जनताके लाभके लिये विविध शास्त्रीय विषयोंपर विद्यापीठकी ओरसे नगरमें सुलभ व्याख्यान दिलानेका प्रबन्ध किया गया है।

काशी विद्यापीठका स्थापित हुए आठ वर्ष हो चुके। स्थापनाके दो वर्षोंके भीतर इसका जो स्वरूप निश्चित हो गया उसमें, यद्यपि थोड़ा बहुत परिवर्तन बराबर होता रहा है किन्तु कोई मौलिक अन्तर नहीं होने पाया है। विद्यापीठके शिक्षाक्रममें विद्यार्थियोंके आचार विचारके परिष्कारकी ओर भी विशेष ध्यान देनेका प्रयत्न किया जाता है, किन्तु यहाँका वातावरण बौद्धिक शिक्षाप्रधान ही कहा जा सकता है। विद्यापीठ एक शिक्षा संस्था होते हुए भी राजनैतिक

हलचलोंसे अपनेको बिल्कुल अलग नहीं रख सका है। इसके अध्यापक और विद्यार्थी सार्वजनिक कार्योंमें ख़ूब भाग लेते हैं।

सम्वत् १९८६ (सन् १९२९) में विद्यापीठकी निरीक्षक सभाने एक उपसमिति नियत की है, जिसे यह काम सौंपा गया है कि पिछले आठ वर्षोंके अनुभव और देशकी बदली हुई परिस्थितिका ख़याल रखते हुए इस विषयपर विचार करे कि विद्यापीठको अपनी कार्यप्रणालीमें किस प्रकारका परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। इस उपसमितिकी क्या सिफ़ारिशें होंगी और उनके अनुसार विद्यापीठके स्वरूपमें क्या परिवर्तन होगा—यह अभी नहीं कहा जा सकता।

पाँचवाँ अध्याय ।

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद ।

गुजरात विद्यापीठ उन संस्थाओंमेंसे एक समझा जाता है, जिनका जन्म असहयोग आन्दोलनके कारण हुआ था। किन्तु इसकी स्थापनाका निश्चय देशमें असहयोग आन्दोलन आरम्भ होनेके पहले ही किया जा चुका था। श्रावण सुदी ४ संवत् १९७६ (तारीख १९ जुलाई सन् १९२० ईसवी) को चौथी गुजरात प्रान्तीय राजनैतिक परिषदने गुजरात प्रान्तमें राष्ट्रीय शिक्षाका प्रचार करनेके लिये एक कमेटी नियत की। इस कमेटीने उसी वर्ष आश्विन सुदी ७ (तारीख १९ अक्टूबर) को गुजरात विद्यापीठकी स्थापना की। असहयोग आन्दोलनने इसके वाह्य स्वरूपको आरम्भ-में वहुत आकर्षित वनाया। आरम्भमें इसके अन्तर्गत अहमदावाद, वम्बई और सूरतमें एक एक महाविद्यालय (कालेज) खोले गये, एक पुरातत्व मन्दिर स्थापित किया गया, अध्यापकोंकी तालीमके लिये एक अध्यापन मन्दिर खोला गया और इसके नीचे ४१ विनय

मन्दिर (हाइस्कूल) ५४ कुमार मन्दिर (प्राइमरी स्कूल), २ कुमारी मन्दिर (कन्या पाठशालाएँ) ३ अन्त्यज शालाएँ और १ रात्रिशाला चलने लगे। इन सब संस्थाओंमें विद्यार्थियोंकी संख्या भी पर्याप्त थी। केवल अहमदाबादके महाविद्यालयमें सन् १६२२-२३ में २०७ विद्यार्थी थे। पर धीरे धीरे असहयोग आन्दोलनके साथ साथ इन संस्थाओंकी अवस्थामें भी शिथिलता आने लगी। विद्यापीठकी नियामक सभाने पीठके कुलपति महात्मा गान्धीकी सूचनापर अपनी मार्गशीर्ष बदी ५ संवत् १६८२ की बैठकमें आचार्य श्री आनंदशंकर ध्रुवकी अध्यक्षतामें एक उपसमिति नियत की और उसे अन्य बातोंके साथ साथ यह काम सौंपा कि पिछले छःवर्षोंके अनुभव और देशकी तत्कालीन दशाका ख़याल रखते हुए विद्यापीठकी शिक्षाप्रचारपद्धतिके दृष्टिकोण और उसके अनुसार महाविद्यालय तथा विनय और कुमारमन्दिरोंके शिक्षणक्रम, विद्यापीठ एवम् उससे सम्बद्ध संस्थाओंके आपसके सम्बन्ध, और पुरातत्व मन्दिरकी कार्यपद्धति आदि बातोंके सम्बन्धमें विचार करके, विद्यापीठका भावी स्वरूप और कार्यक्रम कैसा हो—इस विषयपर अपनी सम्मति दे। इस उपसमितिकी सिफ़ारिशोंके अनुसार विद्यापीठके सङ्गठन और उसकी कार्यपद्धतिमें कई फेर फार किये गये। एक साल तक तो पुरानी परिपाटीसे ही काम चला। अन्तमें नियामक सभाने गाँधीजीसे प्रार्थना की और उनकी सम्मतिके

अनुसार ट्रस्टिओंका एक स्थायी मण्डल बना, और विद्यापीठका कार्यभार उसे सौंपा गया

गुजरात विद्यापीठका मुख्य उद्देश्य स्वराज्यप्राप्तिके लिये चलते हुए आन्दोलनोंके लिये शिक्षा द्वारा चारित्र्यवान्, शक्ति सम्पन्न, संस्कारी और कर्त्तव्यनिष्ठ कार्यकर्त्ता तैयार करना है। विद्यापीठकी विशेषताएँ इस प्रकार गिनाई जा सकती हैं—

(क) यह असहयोगी संस्था है।

(ख) यहाँ, शिक्षाका प्रबन्ध इस आशा और दृष्टिसे किया जाता है कि आगे चलकर विद्यार्थी गाँवोंमें जनताकी सेवा करेंगे।

(ग) शिक्षाका माध्यम स्वभाषा (गुजराती) है। हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषाके तौरपर आवश्यक स्थान दिया गया है।

(घ) खादीको केन्द्रमें रखकर सब शिक्षाकी योजना की गई है।

(ङ) शिक्षाकी योजनामें साहित्य, सङ्गीत, कलाका और संस्थागत जीवनमें राष्ट्रीय संस्कृतिका ख़याल रक्खा गया है।

(च) देहातोंकी आर्थिक स्थितिका निरीक्षण करके भारतवर्षका स्वतन्त्र अर्थशास्त्र निर्माण करनेकी आशा रक्खी गई है।

(छ) बौद्धिक (मानसिक) और औद्योगिक शिक्षाको बराबर बराबर स्थान महत्व और समय दिया जाता है।

(ज) सब धर्मों और पन्थोंकी ओर समान उपेक्षाकी दृष्टि न रखकर समान आदर भावकी दृष्टि रक्खी गई है।

(झ) अस्पृश्यताको कहीं भी किसी भी रूपमें स्थान नहीं है।

(ञ) 'सा विद्या या विमुक्तये' इस ध्रुवमन्त्रको दृष्टिके सामने रख-कर यह संस्था कार्य करती है।

(ट) लड़के और लड़कियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध साथ साथ है। पर लड़कियोंकी संख्या बहुत कम है।

गुजरात विद्यापीठका वर्तमान कार्यक्षेत्र मोटे तौरपर चार-भागोंमें बाँटा जा सकता है—(१) शिक्षण विभाग (२) ग्राम सेवा मन्दिर (३) पुरातत्व मन्दिर, और (४) प्रकाशन-विभाग। प्रका-शन विभागकी ओरसे अबतक कुमार मन्दिर (बालपाठशाला) विनय मन्दिर (हाईस्कूल) तथा महाविद्यालय (कालेज) के विद्या-र्थियोंके लिये लगभग ३० उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। गुज-राती भाषामें शालोपयोगी राष्ट्रीय पाठ्यपुस्तकोंका अभाव दूर करना इस विभागका उद्देश्य है।

पुरातत्व मन्दिरमें अबतक विशेषकर बौद्ध और जैन साहित्यमें खोज सम्बन्धी काम ही होते रहे हैं। और इन्हीं विषयोंपर महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं। किन्तु अब ऐसे ग्रन्थोंके प्रकाशनकी ओर विशेष रूपसे ध्यान देनेका विचार है जो प्रजाके जीवनके लिये उप-योगी हों और पाठ्यक्रममें रखे जाने योग्य हों। इस विभागके भूतपूर्व आचार्य मुनि जिनविजयजी, जर्मनभाषा और संशोधनपद्धतिका अध्ययन करनेके लिये जर्मनी गये हुए हैं। पहिले इस विभागसे एक

उच्च कोटिकी पुरातत्व त्रैमासिक पत्रिका निकलती थी, किन्तु आज-कल वह बन्द है। थोड़े ही दिन हुए गाँधीजीकी विशेष इच्छाके अनुसार विद्यापीठने एक जोडणी-कोष तैयार करके उसके द्वारा गुजराती शब्दोंका हिज्जे स्थायी करनेका प्रयत्न किया है। अबतक जितने अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमेंसे कुछ ये हैं—

श्री धर्मानन्द कोसंबी संपादित—

१. बौद्धसङ्घका परिचय
२. समाधिमार्ग
३. धम्मपद
४. अभिधम्मत्थसङ्गहो
५. सुत्तनिपात
६. मज्झिम निकाय
७. बुद्धलीलासारसंग्रह

पण्डित सुखलालजी और बेचरदास संपादित—

८–१२. संमति तर्क—५ विभाग (जैन न्यायशास्त्रका बृहद्ग्रंथ)
१३. तत्त्वार्थ सूत्र

पण्डित बेचरदास संपादित—

१४. प्राकृत भाषाओंका व्याकरण

अन्यान्य अध्यापकोंके द्वारा संपादित—

१५. वैदिक पाठावलि

१६. उपनिषत्पाठावलि
१७. पालीपाठावलि
१८ प्राकृतकथासंग्रह
१९. काव्यप्रकाश—पूर्वार्द्ध

ग्रामसेवा मन्दिरकी स्थापना सन् १९२९ ईसवीमें, इस कार्यके लिये श्री नगीनदास अमोलखराय द्वारा मिले हुए एक लाख रुपयेके दानसे हुई है। इसका उद्देश्य है स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये गाँवोंमें काम करनेवाले कार्यकर्त्ता तैयार करना। इस मन्दिरमें वे ही विद्यार्थी प्रविष्ट हो सकते हैं जो विद्यापीठके सिद्धान्तोंको मानते हों और अपनी शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् विद्यापीठकी अधीनतामें पाँच वर्षोंतक गाँवोंका काम करनेकी प्रतिज्ञा करते हों। उनका रहनसहन सादा होना चाहिये, साथही शारीरिक श्रमके लिये मनमें उत्साह और शरीरमें बल भी होना चाहिये। प्रवेशमें अविवाहित नौजवानोंको तरजीह दी जाती है। विनीत (मैट्रिकुलेशन) तककी शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियोंको दो वर्षोंतक और स्नातकोंको एक वर्षतक शिक्षा प्राप्त करनी होती है। प्रवेशमें स्नातकोंको तरजीह दी जाती है। विद्यार्थियोंको विद्यापीठके छात्रावासमें ही रहना पड़ता है और उन्हें बीस रुपये मासिक तककी छात्रवृत्ति दी जाती है। शिक्षा समाप्त करनेपर उन्हें प्रमाणपत्र दिये जायँगे और वे तीससे पचास रुपये तक मासिक पुरस्कारपर गाँवोंका काम करनेके लिये भेजे जायँगे। यह

पुरस्कार बढ़कर साठ रुपये मासिक तक हो सकता है। इन कार्य-कर्ताओंसे यह आशा की जाती है कि वे अपने कामको ज़ीविका निर्वाहका एक ज़रिया न समझकर उसे अपने जीवनका उद्देश्य समझेंगे।

विद्यार्थियोंको गुजराती भाषा, भूगोल, महाजनी हिसाब और सङ्गीतका साधारण ज्ञान करानेके अतिरिक्त नीचे लिखे विषयोंकी शिक्षा दी जाती है:—अर्थशास्त्रके सिद्धान्त, गुजरातके गाँवोंकी आर्थिक और सामाजिक अवस्थाका अध्ययन, धुनना, कातना, और खादी कार्यके लिये आवश्यक बढ़ईगीरीकी शिक्षा, सफ़ाई और स्वास्थ्य-रक्षा, साधारण चिकित्सा, शिक्षा सम्बन्धी बातें और गाँवोंमें पाठ-शालाओंका प्रबन्ध, खेल, शारीरिक व्यायाम और क़वायद, जमीनकी पैमाइश, सार्वजनिक सभाओंके सञ्चालनके नियम और भारतवर्षके भिन्न भिन्न धर्म मज़हबोंके साधारण सिद्धान्त। इनके अतिरिक्त मालगुजारी, गृहउद्योग, सहकारी सभाएँ, किसान सभाएँ, मज़दूर सभाएँ तथा ऐसे ही अन्य विषयोंपर भी व्याख्यान होंगे। विद्यार्थि-योंको नीचे लिखे विषयोंका भी ज्ञान होना चाहिये:—भोजन बनाना, दूध दुहना, गाड़ी हांकना, तैरना, बाजार करना, साधारण चित्र-कारी और हिन्दी बोलना। किन्तु इनके लिये कोई बाक़ायदा पाठ्यक्रम नहीं रक्खा गया है।

इस मन्दिर द्वारा शिक्षित कार्यकर्त्ताओंसे नीचे लिखे कामोंके

करनेकी आशा की जाती है:—काँग्रेसका काम, खादीका काम, ग्राम्य पाठशालाओंका काम, गाँवोंमें सफ़ाई आदिके प्रचारका काम, साधारण चिकित्सा, शारीरिक शिक्षा और गाँवोंमें युवक सभाओं-की स्थापना, भजन मण्डलियोंका सङ्गठन, सामाजिक तथा धार्मिक सुधार, गाँवोंकी आर्थिक और सामाजिक अवस्थाके अध्ययनके लिये अङ्क एकत्रित करना, और पञ्चायतका काम।

शिक्षा विभागका काम तीन भागोंमें बँटा हुआ है—कुमार मन्दिर (प्रारम्भिक पाठशाला) विनय मन्दिर (हाईस्कूल) और महाविद्यालय (कालेज)। सम्पूर्ण-पाठक्रम १४ वर्षोंका है—कुमार मन्दिर ४ वर्षोंका, विनय मन्दिर ६ वर्षोंका और महाविद्यालय ४ वर्षोंका। कुमारमन्दिरकी चारों श्रेणियाँ अहमदाबाद शहरमें हैं और विनय मन्दिर तथा महाविद्यालय शहरके बाहर विद्यापीठके निजी स्थानमें हैं। विनयमन्दिरमें गुजराती, गणित, विज्ञान, हिन्दी, सङ्गीत, चित्रकला, इतिहास, भूगोल, अर्वाचीन भाषा, प्राचीन भाषा और किसी एक उद्योगकी शिक्षा दी जाती है। अर्वाचीन भाषामें पाठ्यक्रमके अनुसार विद्यार्थी अंगरेज़ी, बँगला, हिन्दी और मराठीमेंसे कोई एक ले सकते हैं। पर आजकल केवल अँगरेज़ीका प्रबन्ध है। इसी तरह प्राचीन भाषामें संस्कृत, प्राकृत, पाली और फ़ारसीमेंसे कोई एक ले सकते हैं, पर आजकल केवल संस्कृतका प्रबन्ध है। हिन्दी और प्राचीन भाषाकी शिक्षा विनयमन्दिरकी क्रमशः द्वितीय और तृतीय

श्रेणियोंसे आरम्भ होती है। इतिहास भूगोलमेंसे प्रथम तीन श्रेणियोंमें केवल भूगोल, चतुर्थ और पञ्चममें केवल इतिहास और छठींमें इतिहास भूगोल दोनोंकी शिक्षा दी जाती है। उद्योगमें, बुनाई (रँगाई और छपाईके साथ), बढ़ईगीरी, लोहारी, चमारी, पशुपालन एवम् खेती आदि राष्ट्रपोषक कार्यौंकी शिक्षाका प्रबन्ध होनेवाला है। पर आजकल केवल बुनाई और बढ़ईगीरीका ही प्रबन्ध है। प्रतिदिन आधा समय मानसिक शिक्षाके लिये और आधा औद्योगिक शिक्षाके लिये दिया जाता है।

महाविद्यालयके प्रथम वर्षमें प्रत्येक विद्यार्थीको गुजराती निबन्ध, अर्वाचीन भाषा, उर्दू, सम्पत्तिशास्त्रके मूल तत्व, संसारके इतिहासकी रूपरेखा, राष्ट्रीय प्रगतिका इतिहास और संस्कृतकी शिक्षा दी जाती है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्षौंके लिये भारतीय सम्पत्तिशास्त्र, गाँवोंकी आर्थिक अवस्थाका अध्ययन और अङ्क-शास्त्र, वही खाता, हिन्दी, और उर्दू अथवा संस्कृत ये आवश्यक विषय हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक विद्यार्थीको साहित्य मन्दिर समाजविद्या मन्दिर, और वाणिज्य मन्दिर—इन तीन मन्दिरोंमेंसे किसी एक मन्दिरका पाठ्यक्रम ऐच्छिक विषयके तौरपर लेना पड़ता है। साहित्य मन्दिरमें प्रत्येक विद्यार्थीको गुजराती, संस्कृत और अंगरेज़ीमेंसे किन्हीं दो भाषाओंके साहित्य, मानस शास्त्र, समाजके प्रेरक तत्वोंका साहित्य और विज्ञानका विस्तार—इन विषयोंका

अध्ययन करना पड़ता है। समाजविद्यामन्दिरमें राजनीति शास्त्र, शासन विधानका विकास, समाजके प्रेरक तत्वोंका साहित्य, भारत वर्षका इतिहास, अर्थशास्त्र (टाल्स्टाय, रस्किन और गान्धीजीकी दृष्टिसे), तथा विशेषकर एशियाई देशोंका और साधारणतया संसारके समस्त देशोंका अर्वाचीन इतिहास इन विषयोंकी शिक्षा दी जाती है। वाणिज्य मन्दिरमें रूई और रूईका उद्योग, भारतवर्षका आर्थिक इतिहास, गोसेवा, व्यापारिक भूगोल, व्यापार-व्यवस्था और अर्थशास्त्र (टाल्स्टाय रस्किन और गान्धीजीकी दृष्टिसे) का अध्ययन करना पड़ता है। यह तो मानसिक शिक्षाका पाठ्यक्रम हुआ। इसके साथ साथ प्रत्येक विद्यार्थीको विनयमन्दिरकी तरह किसी एक उद्योगकी भी शिक्षा लेनी पड़ती है। प्रति दिन मानसिक और औद्योगिक शिक्षाको बराबर बराबर समय दिया जाता है।

विद्यापीठका पाठ्यक्रम बनाते समय इस बातका ध्यान रक्खा गया है कि देशमें आजकल साधारणतया जो शिक्षाप्रणाली प्रचलित है वह साहित्य-प्रधान और धर्मशून्य दिखाई देती है, उसकी जगह उद्योग प्रधान और चारित्र्यपरायण शिक्षा दी जाय, और पश्चिमीय देशोंकी तरफ़ शिष्य भाव रखकर उनसे ज्ञान, अभिप्राय और अनुभवका उच्छिष्ट लेनेका विचार छोड़ कर, अपने आदर्श और अपने प्रयोग द्वारा जहाँतक हो सके उक्त तीनों बातें संग्रह करनेका प्रयत्न करना चाहिये। औद्योगिक शिक्षाकी व्यवस्था, खादीके उद्योगको

केन्द्रमें रखकर की गई है। अध्यापकोंका संग्रह करनेमें इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि अध्यापक खादी धारी, खादी सेवक, चारित्र्य सम्पन्न, और स्वराज्यनिष्ठ हों, सत्य और अहिंसामें उनकी श्रद्धा हो, उद्योग और श्रमकी ओर उनकी अरुचि न हो, स्वभापाकी ओर अनन्य भक्ति हो, ग़रीबीका अभिमान हो, सादगीकी आदत हो, कौटुम्बिक आश्रितोंका भार उनपर बहुत न हो, ब्रह्मचर्यका महत्व समझते हों और किसी भी धर्म और जातिसे द्वेष न रखते हों। अध्यापकोंके लिये भी प्रति दिन अपना आधा समय उद्योगके लिये देना आवश्यक है। विद्यार्थियोंके लिये प्रतिदिन सूत कातना और हमेशा शुद्ध खद्दरके वस्त्र पहिनना अनिवार्य है। प्रतिदिन प्रार्थनाके उपरान्त पढ़ाई शुरू होती है। छात्रावासमें भी सायं-प्रातः प्रार्थना होती है। विद्यार्थियोंका जीवन सादा है। भोजनोपरान्त अपनी थालियाँ वे स्वयं धोते हैं। कपड़े धोनेके लिये भी कोई धोबी नहीं है। विद्यार्थी स्वयं धोते हैं।

विद्याशुल्क महाविद्यालयके विद्यार्थियोंसे ७२ रुपये वार्षिक लिया जाता है जिसमेंसे २ रुपया विद्यार्थीमण्डलके जिम्मे किया जाता है। यही शुल्क विनयमन्दिरमें कक्षाके अनुसार १॥ रुपयेसे तीन रुपये तक और कुमारमन्दिरमें १ रुपयेसे डेढ़ रुपये तक मासिक है। छात्रावासमें एक भोजनालय है जिसमें प्रत्येक छात्रावासीको भोजन करना पड़ता है। यहाँ जातपाँतके कारण छुआछूत-

का ख़याल नहीं रखा जाता और केवल निरामिष भोजन ही दिया जाता है। भोजनव्यय लगभग ११ से १३ रुपये तक मासिक पड़ता है। विद्यार्थियोंको विद्यापीठकी ओरसे बाक़ायदा छात्रवृत्ति तो नहीं दी जाती, किन्तु महाविद्यालयके कुछ ग़रीब विद्यार्थियोंको शुल्कके बराबर धन कर्ज़ दिया जाता है जिस पर सूद नहीं लिया जाता, और उनसे आशा की जाती है कि शिक्षा समाप्त करनेके पाँच वर्षोंके भीतर उसे वे अदा कर देंगे। अब विद्यापीठमें ऐसा प्रबन्ध हो रहा है जिससे ग़रीब विद्यार्थी शारीरिक मेहनत करके अपनी आजीविका प्राप्त कर सकें। कुछ लड़के इस प्रकार स्वावलम्बी होकर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। विद्यापीठकी ओरसे ३ रात्रिशालाएँ चलती हैं, और विद्यापीठके भङ्गी, चपरासी आदि सेवकोंके लिये भी एक वर्ग चलता है। यह सब काम थोड़ेसे ग़रीब विद्यार्थी अपने खाली वक़्तमें करते हैं जिसके लिये उन्हें वेतन दिया जाता है। विनयमन्दिरके अधिकाँश विद्यार्थियोंसे विद्याशुल्क नहीं लिया जाता। लड़के और लड़कियोंकी शिक्षा तो साथ साथ होती है। पर लड़कियोंके लिये छात्रावासका प्रबन्ध नहीं है। विनयमन्दिरके छात्रालयमें अब केवल अविवाहित लड़के ही लिये जाते हैं। पहलेके जो थोड़े विवाहित लड़के हैं उनको घर नहीं जाने दिया जाता।

विद्यापीठ द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे सञ्चालित महाविद्यालय, पुरा-

तत्व मन्दिर, ग्रामसेवा मन्दिर, विनयमन्दिर और कुमारमन्दिरके अतिरिक्त ११ अन्य विनय और कुमारमन्दिर भी विद्यापीठसे सम्बद्ध हैं। इन सबमें मिला कर आजकल विद्यार्थियोंकी संख्या लगभग ७०० है जिनमेंसे ३४ अहमदाबादके महाविद्यालय और लगभग १०० विनयमन्दिरमें हैं। सन् १९२१—२२ में विद्यापीठद्वारा प्रत्यक्षरूपसे सञ्चालित और सम्बद्ध संस्थाओंकी संख्या ४९ थी जिनमें ग्यारह हजारसे ऊपर विद्यार्थी थे।

सन् १९२९ के आरम्भतक विद्यापीठसे कुल १११८ विनीत (अर्थात् विनयमन्दिरकी अन्तिम परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी) और २९७ स्नातक निकल चुके थे। इनमेंसे शायद ही किसी स्नातकको जीविकाप्राप्तिमें कठिनाई पड़ी हो। चारोंओरसे राष्ट्रीय कार्यौंके लिये इनकी माँग रहती है। इस कारण अभी तक उन्हें उदर निर्वाहके लिये कठिनाई नहीं पड़ी है। सन् १९२५ में स्नातकोंकी एक सूची तैयार कर उनके कार्यौंका पता लगाया गया था। उस समय तक २६८ स्नातक निकल चुके थे। इनमेंसे १९२ के कार्यौंका पता लग सका जो इस प्रकार था— अध्यापन कार्यमें ६६, पत्रसम्पादन कार्यमें ८, देशके रचनात्मक कार्यौंमें ४०, स्वतंत्र पेशोंमें २५, और नोकरीमें ५३। किन्तु हाल ही में विद्यापीठके स्नातकसङ्घको ओरसे फिर इसका हिसाब लगाया गया है। इस हिसाबमें आज तकके २९७ में से ९३ स्नातकोंके

कार्यौंका जो ब्योरा मालूम हुआ है, वह इस प्रकार है—१४ गुजरात विद्यापीठमें अध्यापक हैं, ११ अन्य राष्ट्रीय शालाओंमें अध्यापक हैं, २२ अन्य संस्थाओंमें काम कर रहे हैं, २७ बारडोली तालुका, मजदूर सङ्घ, अन्त्यज सेवामण्डल, और चरखा सङ्घ इत्यादिके द्वारा राष्ट्रीय कार्योंमें लगे हैं, ११ पत्र सम्पादनका काम कर रहे हैं, और ८ सरकारी शिक्षा संस्थाओंमें हैं। समस्त स्नातकोंमेंसे कमसे कम १२० ऐसे हैं जो केवल शुद्ध खादीके कपड़े पहनते हैं। देश-के अग्रगामी राजनैतिक आन्दोलनको विद्यापीठके विद्यार्थी और स्नातक अच्छी सहायता पहुँचाते हैं। बारडोलीके सत्याग्रहमें उन्होंने बहुत काम किया। विद्यापीठके स्नातकोंका एक स्नातकसङ्घ है जिसके द्वारा सभी स्नातकोंमें परस्पर, तथा उनके और विद्या-पीठके बीच सम्बन्ध बना रहता है।

गुजरात विद्यापीठका प्रबन्ध अब 'गुजरात विद्यापीठ मण्डल' के हाथोंमें है जिसमें १८ सदस्य हैं। विद्यापीठका ख़र्च बराबर चन्दे-से चलता है। कोई स्थायी कोष नहीं है। रुपया जमा करके उसके सूदसे काम चलानेकी इसकी नीति ही नहीं है। अबतक लगभग पन्द्रह लाख रुपये ख़र्च हो चुके हैं। ज़मीन ख़रीदने, मकान बनवाने और अन्य संस्थाओंको सहायता देनेके मदोंको छोड़ देने पर, आज-कल विद्यापीठका चलता ख़र्च लगभग साठ हज़ार रुपये वार्षिक है। ज़मीन और मकानमें अबतक ३ लाख रुपये ख़र्च हो चुके हैं।

छठवाँ अध्याय।

गुरुकुल काँगड़ी।

सन् १८८३ ईसवीमें स्वामी दयानन्द सरस्वतीका देहान्त होनेपर स्थान स्थानपर जो शोकसभाएँ हुईं उनमेंसे अधिकांशमें स्वामीजीके स्मारकमें एक शिक्षा संस्था स्थापित करनेके प्रस्ताव हुए। ये प्रस्ताव फ़ीरोज़पुर, मुल्तान और लाहौरकी सभाओंमें क़रीब क़रीब एक ही साथ रक्खे गये। लाहौरकी सभा तारीख़ ९ नवम्बर १८८३ ईसवीको हुई थी, और इस प्रस्तावके स्वीकृत होनेपर 'दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालेज इंस्टिट्यूशन' की स्थापनाके लिये सभास्थलपर ही सात आठ हज़ार रुपये एकत्रित हो गये। आख़िर नीचे लिखे उद्देश्यको लेकर इस संस्थाकी स्थापना हुई—

'स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी पुण्य स्मृतिमें उनके स्मारक स्वरूप पञ्जाबमें एक एङ्गलो वैदिक कालेज स्थापित करना ज़िसमें एक स्कूल, एक कालेज और एक छात्रावास हों और जिनके उद्देश्य ये हों—

(१) हिन्दू-साहित्यके अध्ययन और उसकी उन्नतिका प्रबन्ध करना और उसे प्रोत्साहन देना।

(२) प्राचीन संस्कृत और वेदोंके अध्ययनका प्रबन्ध करना और उसे प्रोत्साहन देना।

(३) अँगरेज़ी साहित्य, तथा सैद्धान्तिक एवम् व्यावहारिक विज्ञानकी शिक्षाका प्रबन्ध करना और उसे प्रोत्साहन देना।'

इस संस्थाके द्वारा सन् १८८६ ईसवीमें एक स्कूलकी और सन् १८८९ ईसवीमें एक कालेजकी स्थापना हुई जो दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालेजके नामसे विद्यमान है। कालेजको स्थापित हुए मुश्किलसे दो वर्ष बीतने पाये थे जब कि उसके संस्थापकोंमें शिक्षाके आदर्शके सम्बन्धमें मतभेद हो गया। कुछ लोगोंका ख़याल हुआ कि इस संस्थाकी शिक्षाप्रणाली वैदिक शिक्षाके आदर्शोंके अनुकूल नहीं है। उन्होंने यह भी देखा कि कालेजके व्यवस्थापक उत्तम राष्ट्रीय शिक्षाकी ओर ध्यान देनेकी अपेक्षा विश्वविद्यालयके परीक्षाफलकी ओर अधिक ध्यान देते हैं, और सरकारी विश्वविद्यालयसे कालेजका सम्बन्ध रहनेके कारण उसकी रीति नीति और पाठ्यक्रममें अधिक परिवर्तन करना भी सम्भव नहीं है। इन सारी बातोंको देखते हुए वैदिक शिक्षाका पक्षपाती दल,—जिसमें महात्मा मुंशीराम प्रमुख थे—दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेजसे अलग होकर वैदिक आदर्शोंके अनुसार एक शिक्षा संस्थाकी स्थापनाका प्रयत्न करने लगा। यही प्रयत्न

गुरुकुल काँगड़ीकी स्थापनाके रूपमें सफल हुआ। एक अमेरिकन यात्री श्री मायरल फ़ेल्प्सको गुरुकुलकी स्थापनाका इतिहास बतलाते हुए उसके संस्थापक महात्मा मुंशीरामने कहा था 'स्वामी दयानन्दने अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाशमें शिक्षा सम्बन्धी अपने जो विचार प्रगट किये हैं उन्हींको पूरा करनेके उद्देश्यसे दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेजकी स्थापना हुई थी। बादको इस बातपर मतभेद खड़ा हुआ कि इस कालेजमें प्रधान स्थान पश्चिमी विज्ञानको दिया जाय या वेदोंको। यह बात सन् १८९१ में हुई। इस समय तक हम सब लोग कालेजके लिये काम करते थे।' विशेष कर शिक्षा-सम्बन्धी आदर्शको लेकर ही पञ्जाबकी आर्य प्रतिनिधि सभामें भी दो दल हो गये और दो सभाएँ तक क़ायम हो गईं। गुरुकुल पार्टीकी आर्य प्रतिनिधि सभाकी अन्तरङ्ग सभाने तारीख २६ नवम्बर सन् १८९८ ईसवीको निश्चय किया कि इस कार्यके लिये तीस सहस्र रुपया एकत्रित किया जावे जिसमेंसे आठ सहस्र मिल जानेपर गुरुकुलकी स्थापना की जावे। किन्तु इस कुलके कुलपिता महात्मा मुंशीराम (बादमें स्वामी श्रद्धानन्द) तारीख २६ अगस्त सन् १८९९ ईसवी को यह दृढ़ प्रतिज्ञा करके निकले कि जब तक तीस सहस्र रुपये एकत्रित न कर लूँगा, घरमें पैर न रक्खूँगा। लगभग सात महीनोंके प्रयत्नसे ही उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। अब वे इस संस्थाके लिये एक उपयुक्त स्थानकी खोजमें ही थे कि स्वर्गीय

मुंशी अमनसिंहने अपना सम्पूर्ण काँगड़ी ग्राम—जो हरद्वार स्टेशनसे साढ़ेचार मीलकी दूरीपर हिमालय और गङ्गाके बीच है—इस कार्यके लिये अर्पित किया। यह ज़मीन ९०० एकड़ है। तारीख २ मार्च सन् १९०२ ईसवी (फाल्गुन बदी १० संवत् १९५८) को ३२ ब्रह्मचारियों सहित महात्मा मुंशीरामने इस भूमिमें पदार्पण किया और उसी दिनसे इस गुरुकुलकी स्थापना हुई। यह गुरुकुल प्राथमिक चार श्रेणियोंसे प्रारम्भ हुआ था। सम्वत् १९६५ (सन् १९०८) में इसने महाविद्यालय और संवत् १९६८ (सन् १९११) में विश्वविद्यालयका रूप धारण किया। संवत् १९८० (सन् १९२३) से इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत वेदमहाविद्यालय, महाविद्यालय (आर्ट्स कालेज) और आयुर्वेद महाविद्यालय ये तीन महाविद्यालय हैं। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न स्थानोंपर अब तक इसकी निम्नलिखित छः शाखाएँ भी खुल चुकी हैं—गुरुकुल मुलतान, गुरुकुल कुरुक्षेत्र, गुरुकुल मटिण्डू, गुरुकुल रायकोट, गुरुकुल सूपा, और गुरुकुल झज्झर।

नियमावलीमें गुरुकुलकी परिभाषा इस प्रकार दी हुई है 'गुरुकुल उस वैदिक शिक्षणालयका नाम है जिसमें वे बालक वा बालिकाएँ, जिनका यथोचित वेदारम्भ संस्कार हो चुका हो, शिक्षा और विद्या प्राप्त करें।' काँगड़ीके गुरुकुलमें केवल बालकोंकी शिक्षाका प्रबन्ध है। बालिकाओंके लिये २३ कार्तिक १९८० (तारीख ८ नवम्बर १९२४ ईसवी) से देहलीमें पृथक् गुरुकुल स्थापित किया

गया था जो अब देहरादून आ गया है। अध्यापक सम्बन्धी नियमों में कहा गया है कि केवल ऐसे वैदिक धर्मके विश्वासी विद्वान् ही इस शिक्षणालयमें नियुक्त होनेके अधिकारी होंगे जो सदाचारी हों और वैदिक धर्मके उन ५१ सिद्धान्तोंको मानते हों जिनको महर्षि दयानन्द सरस्वती जीने माना है, किन्तु अन्तरङ्ग सभाको अधिकार होगा कि किसी अध्यापक विशेष (आचार्यके अतिरिक्त) के सम्बन्धमें वैदिक धर्मविश्वास, तथा ५१ सिद्धान्तोंके माननेके नियमको यथासम्भव जहाँ तक उचित समझे, शिथिल कर दे।

गुरुकुलमें ६ से ८ वर्ष तककी उम्रके, और विशेष अवस्थामें अन्तरङ्ग सभाकी अनुमतिसे १० वर्षकी उम्र तकके ऐसे ही ब्रह्मचारी प्रविष्ट हो सकते हैं जिनकी शारीरिक तथा मानसिक अवस्था ठीक हो और जिनके माता-पिता वा संरक्षक यह प्रतिज्ञा करें कि कमसे कम २५ वर्षकी आयुके पूर्व ब्रह्मचारीका वाग्दान या विवाह न करेंगे। एक वर्ष पहिले तक संरक्षकोंको यह भी प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि जब तक ब्रह्मचारी गुरुकुलकी सम्पूर्ण शिक्षा समाप्त न कर लेगा तब तक उसे गुरुकुलसे नहीं ले जायँगे। पर अब ऐसी प्रतिज्ञा नहीं करनी पड़ती। अभिभावक चाहे जिस समय ब्रह्मचारीको गुरुकुलसे ले जानेके लिये स्वतंत्र हैं। कुछ दिन पहले तक ऐसा नियम था कि ब्रह्मचारी, गुरुकुलकी शिक्षा समाप्त करनेके पहले घर नहीं जा सकता था। स्वयं ब्रह्मचारीके कठिन रोगग्रस्त

होने अथवा उसके किसी निकट सम्बन्धीके कठिन रोगग्रस्त होने, या उसके मृत्यु होने, या किसी विशेष आवश्यक कार्यके आजाने पर ही कुछ दिनोंके लिये घर जा सकनेकी अनुमति मिलती थी। पर अनुभवके बाद इस नियममें शिथिलता की गई। अब महाविद्यालय विभाग अर्थात् अन्तिम चार श्रेणियोंके विद्यार्थी बरसातकी दो महीनोंकी छुट्टियोंमें घर जा सकते हैं। पर प्रथम १० श्रेणियोंके विद्यार्थी नहीं जा सकते। उन्हें रोकनेका अभिप्राय यह है कि विद्यार्थीके जीवनपर गुरुकुलके ही रहन सहन एवम् वातावरणका पूरा पूरा असर पड़े। १० वर्ष रह चुकनेपर वे बहुत कुछ वहाँके रंगमें रँग जायँगे और तब अन्तिम चार वर्षोंमें यदि वे समय समयपर घर हो आया करें तो कोई हानि न होगी। बल्कि यह अच्छा और आवश्यक समझा गया है। क्योंकि इससे, संसारमें प्रवेश करनेके पहिले संसारके व्यावहारिक जीवनसे उनका परिचय होने लगेगा। किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि प्रारम्भिक १० श्रेणियोंके विद्यार्थी हमेशा गुरुकुल भवनमें ही रहते हैं। सात्रिक छुट्टियोंमें अकसर वे अध्यापकोंके साथ पर्यटनके लिये बाहर भेजे जाते हैं। प्रथम आठ श्रेणियोंके विद्यार्थियोंको अपने संरक्षकोंसे पत्रव्यवहार करनेकी आज्ञा नहीं है। उच्च कोटिके विद्यार्थी मासमें १ बार आचार्यके द्वारा पत्र लिख सकते हैं। गुरुकुलमें शिक्षा निःशुल्क दी जाती है, किन्तु संरक्षकोंको ब्रह्मचारियोंके भरणपोषणका व्यय दे ा पड़ता है। यह व्यय प्रथम पाँच श्रेणियोंके लिये

पन्द्रह रुपये, छठवींसे दसवीं श्रेणी तकके लिये बीस रुपये, और अन्तिम चार श्रेणियों अर्थात् महाविद्यालय विभागके लिये पचीस रुपये मासिक होता है। यह रक़म सीधे मुख्याधिष्ठाताके पास भेजी जाती है और ब्रह्मचारियोंके रहन सहन और खानपानका सारा प्रबन्ध गुरुकुलकी ओरसे किया जाता है। अन्तरङ्ग सभाको अधिकार है कि होनहार अनाथों एवम् ऐसे बालकों वा संश्रितोंकी—जिनके माता पिता समस्त वा एक अंशमें भरणपोषणका व्यय न दे सकते हों—शिक्षाका प्रबन्ध अपने व्ययसे करे। ऐसे विद्यार्थियोंके लिये गुरुकुलको लगभग सात हज़ार रुपये प्रतिवर्ष ख़र्च करने पड़ते हैं। नियमावलीमें इस आशयका एक नोट है कि कुछ समयमें पर्याप्त धन एकत्रित हो जानेपर समस्त ब्रह्मचारियोंका शिक्षादान तथा उनका पालन पोषण विना किसी तरहका व्यय लिये किया जायगा।

संस्कृत भाषा और वैदिक साहित्यके अध्ययनको विशेष स्थान देना, आरम्भसे अन्तिम श्रेणी तक हिन्दी भाषाके माध्यम द्वारा शिक्षा देना, संस्थामें जातपाँतके कारण छुआछूत अथवा ऊँचनीचके भावका न होना, ब्रह्मचर्य तथा चरित्रसङ्गठन पर विशेष ज़ोर देना—ये गुरुकुल शिक्षाप्रणालीकी विशेषताएँ कही जा सकती हैं। गुरुकुलका सम्पूर्ण पाठ्यक्रम १४ वर्षों का है जो तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है—प्रारम्भिक शिक्षा चारवर्षोंकी, माध्यमिक शिक्षा छः वर्षोंकी और उच्च शिक्षा चार वर्षों की। प्रारम्भिक चार वर्षोंमें संस्कृत

व्याकरण, संस्कृत साहित्य, आर्य भाषा (हिन्दी), गणित, आलेख्य (चित्रकला), धर्मशिक्षा, वस्तुपाठ और इतिहास भूगोलकी शिक्षा दी जाती है। माध्यमिक विद्यालयके प्रथम चार वर्षोंमें अर्थात् पाँचवींसे आठवीं श्रेणियों तक उपरोक्त विषयोंके अतिरिक्त आँग्लभाषा और विज्ञानकी भी शिक्षा दी जाती है। आंग्ल भाषाकी शिक्षा पाँचवीं श्रेणीसे और विज्ञानकी छठींसे आरम्भ होती है। माध्यमिक विद्यालयकी अन्तिम दो श्रेणियों अर्थात् नवीं और दसवीं श्रेणियोंकी परीक्षा अधिकारी परीक्षा कहलाती है। इसके लिये वेदाङ्ग, संस्कृत साहित्य, आँग्लभाषा, गणित, धर्मशिक्षा, आर्यभाषा (हिन्दी), और इन सबके अतिरिक्त पदार्थ विद्या या इतिहासमेंसे कोई एक विषय लेना पड़ता है। अधिकारी परीक्षामें उत्तीर्ण होने पर विद्यार्थी तीन महाविद्यालयों—वेद महाविद्यालय, गुरुकुल महाविद्यालय (आर्ट्स कालेज) और आयुर्वेद महाविद्यालय—मेंसे किसी एकमें प्रवेश कर सकता है। प्रत्येक महाविद्यालयका पाठ्यक्रम चार वर्षोंका है।

वेद महाविद्यालयमें वेद वेदाङ्ग, उपाङ्ग (दर्शन), संस्कृत साहित्य या व्याकरण और आर्यसिद्धान्त ये आवश्यक विषय हैं। इनके अतिरिक्त इतिहास, पाश्चात्य दर्शन, अर्थशास्त्र तथा रसायन इन चार ऐच्छिक विषयोंमेंसे कोई एक लेना होता है। वेद तथा दर्शनोंके पाठपर विशेष बल दिया जाता है; संस्कृत भाषामें उत्तम वक्ता तैयार करनेका यत्न किया जाता है और तुलनात्मक दृष्टिसे

भिन्न भिन्न मतोंकी समीक्षा की जाती है। उत्तम कोटिके वेदप्रचारक उत्पन्न करना इस महाविद्यालयका लक्ष्य है।

गुरुकुल महाविद्यालय (आर्ट्स कालेज) में वेद वेदाङ्ग, उपाङ्ग (दर्शन), संस्कृत तथा आर्यभाषा (हिन्दी) साहित्य और अँगरेज़ी ये आवश्यक विषय हैं। इनके अतिरिक्त इतिहास, अर्थशास्त्र, पाश्चात्यदर्शन, या रसायन इन चार ऐच्छिक विषयोंमेंसे कोई एक लेना पड़ता है। इस महाविद्यालयमें वेद तथा दर्शनोंकी पढ़ाई कुछ थोड़ीसी न्यून है। आंग्लभाषा, द्वितीय भाषाके तौरपर आवश्यक रूपसे पढ़ाई जाती है और भिन्नमत समीक्षाका विषय इसमें नहीं रक्खा गया है। इस महाविद्यालयका ध्येय सच्चे देशसेवक, सम्पादक और लेखक पैदा करना है।

आयुर्वेद महाविद्यालयमें प्राच्य और पाश्चात्य दोनों प्रकारके आयुर्वेदोंको सिखलाते हुए प्राच्य आयुर्वेदके महत्त्वको प्रस्फुटित किया जाता है। इस महाविद्यालयका उद्देश्य ब्राह्मणवृत्तिके वैद्य उत्पन्न करना है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, गुरुकुलमें केवल छः से आठवर्ष तककी और विशेष अवस्थामें दस वर्षकी उम्र तकके विद्यार्थी ही प्रविष्ट होते हैं। येही अधिकारी परीक्षा तकका पाठ्यक्रम समाप्त करके उपरोक्त तीनों महाविद्यालयोंमेंसे किसी एकमें प्रवेश कर सकते हैं। किन्तु आयुर्वेद महाविद्यालयके सम्बन्धमें इस नियम में कुछ शिथिलता कर दी गई है। संस्कृतमें काशीकी मध्यमा परीक्षा

और मैट्रिकुलेशनकी समकक्ष परीक्षाकी योग्यता रखनेवाले बाहरी विद्यार्थी भी इस विद्यालयमें प्रवेश कर सकते हैं। पर उनके रहने आदिका प्रबन्ध गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंसे पृथक् रहेगा। यों तो अधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण होनेपर विद्यार्थी तीनमेंसे किसी भी महाविद्यालयमें प्रवेश कर कसता है पर गुरुकुलके सञ्चालक यह पसन्द करते हैं कि अधिकतर ब्रह्मचारी वेदमहाविद्यालयमें प्रवेश करें।

महाविद्यालयोंकी अन्तिम परीक्षामें उत्तीर्ण स्नातकोंको उनके विषयमें विद्यालंकारकी उपाधि दी जाती है। गुरुकुलकी ओरसे एक स्नातकोत्तर परीक्षाकी भी व्यवस्था की गई है। वेद महाविद्यालय तथा गुरुकुल महाविद्यालयके जिन स्नातकोंकी सिफ़ारिश उनके उपाध्याय (अध्यापक) गण करेंगे वे ही इस परीक्षामें सम्मिलित होनेके अधिकारी होंगे। इसके लिये अध्ययन करनेवाले विद्यार्थीको आचार्य द्वारा निर्दिष्ट उपाध्यायोंके निरीक्षणमें कमसे कम दो वर्षों तक गुरुकुलमें रहकर अध्ययन करना पड़ता है। विशेष अवस्थामें अन्तरङ्ग सभा, निवास और अध्ययन सम्बन्धी नियमोंको ढीला भी कर सकती है। इस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर स्नातकोंको उनके विषयमें वाचस्पतिकी उपाधि दी जाती है। गुरुकुलकी अधिकारी परीक्षाका पाठ्यक्रम सरकारी विद्यालयोंके मैट्रिकुलेशनसे कुछ ऊँचा तथा महाविद्यालयका एम० ए० के स्टैण्डर्डका है।

विद्यार्थियोंकी वक्तृत्व शक्ति तथा लेखन शक्ति बढ़ानेके लिये

कई सभाएँ हैं तथा कई हस्तलिखित पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। वेदमहाविद्यालय तथा गुरुकुल महाविद्यालयकी ओरसे प्रति सप्ताह क्रमशः संस्कृत और इङ्गलिशकी सभाएँ होती हैं जिनमें दोनों महाविद्यालयोंके विद्यार्थी भाग लेते हुए संस्कृत और अंगरेज़ीमें वक्तृत्वशक्ति बढ़ानेका अभ्यास करते हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य परिषद्, वाग्वर्धिनी, संस्कृतोत्साहिनी विज्ञान परिषद्, वेद-परिषद्, आयुर्वेद परिषद्, कालेज यूनियन, हिन्दी साहित्य मण्डल आदि सभाएँ भी हैं। इनका सञ्चालन और प्रबन्ध विद्यार्थी स्वयं करते हैं। साहित्य परिषद्की ओरसे वर्षमें एक बार पार्लमेण्ट भी की जाती है जिसकी सम्पूर्ण कार्रवाई बृटिश पार्लमेण्टकी तरह होती है। शारीरिक उन्नतिके लिये गदका, लाठी बनैठी तथा अन्य उपयोगी देशी खेलोंके अतिरिक्त हाकी आदि पश्चिमी देशोंके खेलोंका भी प्रबन्ध है। इसके सिवाय जङ्गलकी खुली हवामें रहनेका लाभ तो गुरुकुलके विद्यार्थियोंको है ही। गुरुकुलमें अध्यापकों और विद्यार्थियोंका सम्बन्ध उत्तम है। हमेशा परस्पर मिलते जुलते रहते हैं। गुरुकुलमें रहने वाले समस्त विद्यार्थियोंके साथ अधिकारियोंका व्यवहार एक समान रहता है। न तो जातपाँतकी उँचाई निचाईका ख़याल रखा जाता है, और न धन वैभव अथवा सामाजिक मान-प्रतिष्ठाका। प्रायः गुरुकुलमें रहने वाले विद्यार्थी एक दूसरेके जन्म जातसे भी अनभिज्ञ रहते हैं। विद्यार्थियोंमें इस भावको भरनेका

विशेष प्रयत्न किया जाता है कि वे सब एक ही परिवार ... गुरुकुलमें रहने वाले विद्यार्थियोंका रहन सहन बहुत सादा होता है। साधारणतया आप उन्हें एक कुरता और धोती पहने हुए देखेंगे। न पैरमें जूता है और न सर पर टोपी। साधारणतया इन्हें अब खादीके ही वस्त्र पहननेके लिये दिये जाते हैं। ब्रह्मचारियोंमें ज़िम्मेदारीके साथ नियम पालन करनेकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन देनेके लिये व्रताभ्यास परीक्षाकी प्रणाली चलाई गई है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक ब्रह्मचारी अपने वैयक्तिक और सामाजिक कर्तव्योंको दण्डके भयसे नहीं, किन्तु उनकी उपयोगिता और उनका महत्व समझ कर पूरा करे। हर एक ब्रह्मचारीके पास एक व्रताभ्यास पञ्चिका रहती है जिसमें वह प्रतिदिन यह लिखते जाता है कि किन किन नियमोंका उसने पालन किया और किन किनका नहीं किया। जिन नियमोंका पालन न किया हो उनके सम्बन्धमें कारण भी देना होता है। मासके अन्तमें इन पञ्चिकाओंके आधारपर अङ्क दिये जाते हैं।

गुरुकुलके अधिकारी एक 'श्रद्धानन्द शिल्पविद्यालय' और आयुर्वेद विभागमें 'आयुर्वेदिक ड्रग्स' की परीक्षाके लिये एक लेबोरेटरी खोलनेका विचार कर रहे हैं। प्रथमोक्तकेलिये सवा लाख और शेषोक्तके लिये १५ हज़ार रुपयोंकी आवश्यकता है। शिल्पविद्यालयके लिये तीस हजार रुपये मिल चुके हैं।

इसे।़ा कि ऊपर कहा गया है। इस गुरुकुलकी छः शाखाएँ भी हैं। मुख्य गुरुकुल तथा शाखा गुरुकुलोंमें मिलाकर विद्यार्थियोंकी संख्या लगभग ८५० है। सम्वत् १९८४ के अन्त तक गुरुकुलसे १८४ स्नातक निकल चुके थे। इनमेंसे ६ का देहान्त हो चुका है। ४ के सम्बन्धमें यह मालूम नहीं कि वे किस कार्यमें हैं। शेष १७४ भिन्न भिन्न धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में लगे हुए हैं। ५० अध्यापक हैं। ३ राजनैतिक कार्योंमें लगे हैं जिनमेंसे एक लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित 'सर्वेण्ट्स आफ़ दि पीपुल सोसाइटी' के सदस्य हैं। १२ पत्रसम्पादनका कार्य कर रहे हैं। २२ सामाजिक और धार्मिक प्रचारके कार्योंमें लगे हैं। ३७ चिकित्सक हैं। ४४ व्यापार व्यवसाय आदिमें लगे हैं। ६ अभी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुलके स्नातकोंमेंसे ६० अच्छे लेखक हैं और इनमेंसे २९ ने पुस्तकें लिखी हैं।

सातवाँ अध्याय ।

गुरुकुल वृन्दावन ।

ज़िला बुलन्दशहरके सिकन्दराबाद स्थानमें सन् १६०० ईसवी-में एक गुरुकुलकी स्थापना हुई थी । संयुक्त प्रान्तकी आर्य प्रतिनिधि सभाने तारीख़ १ दिसम्बर सन् १६०५ ईसवीको इसे अपने अधि-कारमें लिया। वहाँ जल वायुकी प्रतिकूलता, मलेरिया तिल्ली आदिकी प्रधानता, और पर्याप्त भूमिकी कमी आदि कारणोंसे तारीख १७ सित-म्बर सन् १६०७ ईसवीमें यह गुरुकुल फ़रुख्ख़ाबादमें लाया गया। फ़रुख्ख़ाबादमें गुरुकुलके पास अपना निजी स्थान न था, इसलिये गुरुकुलके लिये स्थायी रूपसे निजी स्थानका प्रबन्ध करना आवश्यक हुआ। अक्टूबर सन् १६११ ईसवीमें राजा महेन्द्रप्रतापने वृन्दावनमें गुरुकुलके लिये अपनी कुछ भूमि दानमें दी। उस समय उसकी क़ीमत १५ हज़ार रुपये कूती गयी थी। तारीख़ १६ दिसम्बर सन् १६११ ईसवीसे गुरुकुल इसी स्थान पर वृन्दावनमें आ गया और तबसे यहीं है।

इस गुरुकुलका उद्देश्य प्राचीन ब्रह्मचर्य प्रणालीके अनुसार वेद वेदाङ्ग आदि संस्कृत साहित्यके अनुसन्धानशील आर्यविद्वान् और वैदिक धर्मके प्रचारक तैयार करना है। अध्यापक सम्बन्धी नियमोंमें कहा गया है कि 'केवल ऐसे वैदिक धर्मके विश्वासी विद्वान् इस विद्यालयमें नियत होने योग्य होंगे जो सदाचारी हों और वैदिक धर्मके उन ५१ सिद्धान्तोंको मानते तथा तदनुकूल आचरण करते हों जिनको महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीने माना है।' विद्यालयमें ८ से १० वर्षकी उम्र तकके विद्यार्थी प्रविष्ट हो सकते हैं। पहिले यहाँ भी यही नियम था कि कोई भी विद्यार्थी प्रविष्ट होनेके उपरान्त गुरुकुल-की सम्पूर्ण शिक्षा समाप्त करनेके पहिले कुलसे अलग न हो सकेगा। पर अब यह नियम इस हद्दतक शिथिल कर दिया गया है कि यदि प्रवेशके समय ही ब्रह्मचारीके अभिभावक यह प्रगट कर दें कि उनका अन्तिम लक्ष्य ब्रह्मचारीसे किसी यूनिवर्सिटीकी परीक्षा दिलाना है तो वह ब्रह्मचारी दशवीं श्रेणीसे उत्तीर्ण होनेपर गुरुकुलसे अलग हो सकेगा। इस शिथिलताका कारण बतलाते हुए नियमावलीमें कहा गया है कि 'साधारणतया गुरुकुलकी दसवीं श्रेणीके उत्तीर्ण ब्रह्मचारियोंको योग्यता हाईस्कूल परीक्षा तथा शास्त्री मध्यमाको योग्यतासे कहीं अधिक हो जाती है। और जो संरक्षक ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुकुलकी शिक्षाको उत्तम जानते हुए भी यूनिवर्सिटी शिक्षाके लक्ष्य-की दृष्टिसे अपने बालकोंको गुरुकुलमें प्रविष्ट नहीं कराते थे वे अब

सहर्ष प्रविष्ट करा सकेंगे।' गुरुकुलका पाठ्यक्रम १४ वर्षोंका है। शिक्षा आरम्भसे अन्ततक निःशुल्क है। भोजनादि व्ययके लिये पहली से पाँचवीं श्रेणी तक १५ रुपये छठींसे दसवीं श्रेणीतक १८ रुपये और ग्यारहवींसे चौदहवीं श्रेणी तक बाईस रुपये मासिक लिया जाता है। उन पुरुषोंके पुत्रों वा संश्रितोंसे, जो वास्तवमें समग्र वा एक अंशमें भोजनादि व्यय न दे सकते हों, यदि गुरुकुलोपसभा उन्हें सहायता योग्य समझे, तो उनका समग्र या एक अंश भोजनादि व्यय भी नहीं लिया जाता। आजकल इस प्रकारके लगभग ४० विद्यार्थियोंका ख़र्च गुरुकुलके ऊपर है। नियमावलीमें लिखा है कि 'जब कुछ दिनोंमें इस विद्यालयके व्ययके लिये पुष्कल धन एकत्रित हो जावेगा तो प्रविष्ट हुए सब विद्यार्थियोंका पोषण, ख़र्च लिये बिना किया जायगा।'

जैसा कि ऊपर कहा गया है इस गुरुकुलका पाठ्यक्रम १४ वर्षोंका है जो दो भागोंमें विभक्त है—विद्यालय १० वर्षोंका और महाविद्यालय ४ वर्षोंका। विद्यालयमें संस्कृत व्याकरण, संस्कृत साहित्य, धर्मशिक्षा हिन्दी, और गणितकी शिक्षा पहली से दशवीं श्रेणियोंतक दी जाती है। इनके सिवाय प्रथम आठ श्रेणियोंमें भूगोल और इतिहास तथा छठींसे दसवीं श्रेणीतक अँगरेज़ी भी पढ़ाई जाती है। महाविद्यालयमें प्राच्य संस्कृत साहित्य और दर्शन तथा अँगरेज़ी ये आवश्यक विषय हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक विद्यार्थीको वेद

और आयुर्वेद इन दो में से कोई एक अथवा आर्यसिद्धान्त, पाश्चात्य दर्शन और तर्क तथा नव्य दर्शन—इन तीनमेंसे कोई दो विषय लेने पड़ते हैं। महाविद्यालयके आयुर्वेद विभागमें गुरुकुलके शिक्षापटल द्वारा निश्चित प्रवेशिका परीक्षा पास, बाहरके विद्यार्थी भी भरती हो सकते हैं। उनसे भोजनादि व्ययके अतिरिक्त शिक्षाशुल्क भी लिया जाता है। जो विद्यार्थी दसवीं श्रेणीके पश्चात् महाविद्यालयमें विशेष विषय वेद या आर्यदर्शन लेते हैं उनसे भोजन व्यय नहीं लिया जाता। जो ब्रह्मचारी अपने निर्वाहके लिये गुरुकुलपर आश्रित रहते हैं उन्हें गुरुकुलकी इच्छानुसार वैकल्पिक विषय लेने पड़ते हैं। यहाँ अँगरेज़ी इस दृष्टिसे पढ़ाई जाती है कि स्नातक अँगरेजी साहित्यको समझ सकें और उस भाषाका उपयोग कर सकें। सन् १६२६ ईसवी में गुरुकुलमें शिक्षा पानेवाले ब्रह्मचारियोंकी संख्या १८३ थी।

गुरुकुलकी सम्पूर्ण शिक्षा समाप्त करनेपर स्नातकोंको उनके विषयमें शिरोमणिकी उपाधि दी जाती है। जैसे, वेदशिरोमणि, आयुर्वेदशिरोमणि, तर्कशिरोमणि आदि। सन् १६२८ तक इस गुरुकुलसे ३३ स्नातक निकल चुके थे जिनमेंसे १५ अध्यापन कार्यमें ४ धर्मोपदेशमें, १० वैद्यकमें और ४ अन्य कार्योंमें लगे हुए थे।

आठवाँ अध्याय।

जामिया मिल्लिया इस्लामियाँ, दिल्ली।

जामिया मिल्लिया इस्लामियाँकी स्थापना २९ अक्तूबर १९२० ईसवीको अलीगढ़में हुई थी। आरम्भमें केन्द्रीय ख़िलाफ़त कमेटीसे इसको आर्थिक सहायता मिलती थी। यद्यपि जामिया, ख़िलाफ़त कमेटीके अधीन न था तथापि उसके कार्यकर्ता आरम्भसे ही आर्थिक स्वतन्त्रताकी आवश्यकता अनुभव करते थे और जानते थे कि बिना अपना कोष हुए संस्थामें स्थिरता न आवेगी। इसलिये स्थापनाके कुछ समय बाद ही जामिया-फ़ण्ड क़ायम करनेका विचार पैदा हुआ। इसके लिये समय समयपर प्रयत्न होते रहे, कुछ धन भी एकत्र हुआ पर ऐसा कोई स्थायी कोष अब तक न बन सका जिसके सहारे निश्चिन्त जीवन व्यतीत हो सके। जामियाको बराबर आर्थिक चिन्ता बनी ही रहती है। इस कारण संस्था इच्छानुसार उन्नति और विस्तार नहीं कर सकती।

इस संस्थाकी एक विशेषता यह है कि यहाँ धार्मिक शिक्षा

सबके लिये अनिवार्य है। हिन्दू विद्यार्थियोंको भी धार्मिक शिक्षा दी जाती है। उनको संस्कृत भाषा, धर्मशास्त्र, भगवद्गीता और तुलसीकृत रामायण पढ़ाई जाती है और उनको उपासना करना पड़ता है।

जामियाका पाठ्यक्रम तीन भागोंमें बाँटा गया है—(१) मकतब, (२) मनज़िल इब्तदाई, और (३) मनज़िल सानूई। मकतबकी पढ़ाई एक वर्षकी रक्खी गई है। इसमें बच्चेको लिखना, पढ़ना और हिसाबमें गिनती, सरल जोड़ और बाकी बताई जाती है। स्पष्ट और शुद्ध उच्चारणपर विशेष ज़ोर दिया जाता है। मनज़िल इब्तदाईमें छः श्रेणियाँ हैं। इनमें धार्मिक शिक्षाके अतिरिक्त उर्दू, गणित, ड्राइंग, अंगरेज़ी, शिल्प, इतिहास, भूगोल और साधारण ज्ञानकी शिक्षा दी जाती है।

मनज़िल इब्तदाईमें ५ श्रेणियाँ हैं। पहिली तीन श्रेणियोंमें धार्मिक शिक्षाके साथ साथ उर्दू, फ़ारसी, अंगरेज़ी, गणित, इतिहासभूगोल, भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र इन विषयोंकी पढ़ाई होती है। अन्तिम दो वर्षोंमें विद्यार्थीको उर्दू और अंगरेज़ी अनिवार्य रूपसे पढ़ना पड़ता है और वैकल्पिक विषयोंमेंसे कोई एक विषय लेना पड़ता है। वैकल्पिक विषयोंमेंसे कुछ ये हैं—(१) अरबी, (२) इसलामका इतिहास, (३) भारतीय इतिहास।

१ जुलाई, सन् १९२५ ई० को जामिया अलीगढ़से दिल्ली ले जाया गया।

जामियामें एक कालेज और एक स्कूल है, इनके अतिरिक्त शहरमें एक शाखा स्कूल भी है, पेशावर और रङ्गूनके एक एक हाई स्कूल जामियासे सम्बद्ध हैं।

विद्यार्थियोंकी संख्या इस प्रकार है—

जामियाँका कालेज	३४
दिल्लीके स्कूल	२१४
रंगूनका स्कूल	३००
पेशावरका स्कूल	२००
	७४८

जामियाँसे आज तक ७१ स्नातक निकले हैं, इनमेंसे कुछ विशेष अध्ययनके लिये योरप गये हैं। बाकी शिक्षा, पत्र-सम्पादन, व्यापार आदि कार्योंमें लगे हैं।

नवाँ अध्याय।

तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना।

कांग्रेसके असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावके अनुसार महाराष्ट्रके जिन विद्यार्थियोंने सरकारी कालेजोंमें पढ़ना छोड़ दिया, उनकी शिक्षाका प्रबन्ध करनेके लिये ८ दिसम्बर सन् १९२० ईसवीको पूनेमें तिलक महाविद्यालयके नामसे एक राष्ट्रीय कालेजकी स्थापना हुई। आगे चलकर बसईके महाराष्ट्र प्रान्तीय सम्मेलनके अधिवेशनमें तारीख़ ६ मई सन् १९२१ ईसवीको निश्चय हुआ कि लोकमान्य तिलककी स्मृतिमें एक राष्ट्रीय विद्यापीठ स्थापित किया जाय। इसी निश्चयके अनुसार पूनेमें तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठकी स्थापना हुई और उपरोक्त तिलक महाविद्यालय उसके आधीन हो गया। विद्यापीठके मुख्य उद्देश्योंमेंसे कुछ ये हैं—

(१) सरकारी सहायता न लेते हुए शिक्षा प्रचार करना।

(२) विद्यार्थियोंको ऐसी शिक्षा देना जिससे वे स्वावलम्बी और राष्ट्र कार्यक्षम हों।

(३) इन्हीं उद्देश्योंको लेकर काम करने वाली संस्थाओंकी सहायता करना और उन्हें विद्यापीठसे सम्बद्ध करना।

(४) उच्च प्रकारके संशोधन और ग्रन्थ प्रकाशनका कार्य करना।

आजकल प्रत्यक्ष रूपसे विद्यापीठके सञ्चालनमें एक महाविद्यालय (पूनेका तिलक महाविद्यालय) और एक वैदिक संशोधन मण्डल, ये दो संस्थाएँ ही हैं। इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र प्रान्तकी प्रायः सब राष्ट्रीय पाठशालाएँ विद्यापीठसे संबद्ध या स्वीकृत हैं। विद्यापीठकी ओरसे कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं और एक त्रैमासिक पत्रिका निकल रही है।

तिलक महाविद्यालयका कार्य कई शिक्षा विभागोंमें बटा हुआ है जैसे वाङ्मय, व्यापार, स्थापत्य, वैद्यक इत्यादि। पाठ्यक्रम चार वर्षोंका है। अन्तिम वर्षकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर विद्यार्थीको उसके विषयमें विशारदकी उपाधि दी जाती है जैसे वाङ्मय विशारद, आयुर्विद्या विशारद इत्यादि। कोई भी विद्यार्थी विशारद होनेके कमसे कम दो वर्ष बाद पारङ्गत उपाधिकी परीक्षा दे सकता है। इसके लिये पहले एक निबन्ध लिखकर देना होता है। परीक्षामें उत्तीर्ण होने पर विद्यार्थीको उसके विषयमें पारङ्गतकी उपाधि दी जाती है—जैसे आयुर्विद्यापारङ्गत। आजकल इस महाविद्यालयके अन्य सब विभागोंकी अपेक्षा आयुर्वेद विभाग अधिक सफलतापूर्वक चल रहा है। सन् १९२९ में महाविद्यालयके समस्त विभागों-

में ३६ विद्यार्थी थे जिनमेंसे ३० आयुर्वेद विभागके थे। विद्यार्थियोंको व्यावहारिक शिक्षा देने तथा लोकसेवाके उद्देश्यसे एक धर्मार्थ आयुर्वेदीय रुग्णालय भी खोला गया है। इसमें एक लाख तक रुपया लगाकर इसका काम बढ़ानेका विचार है और इसके लिये प्रयत्न भी किया जा रहा है। आयुर्वेद विभागके आधीन एक रस-शाला भी है, जिसमें शास्त्रीय विधिसे उत्तमोत्तम औषधियाँ बनाई और बेची जाती हैं।

वैदिक संशोधन मण्डलकी स्थापना तारीख़ १ अगस्त सन् १९२८ ईसवीको की गई थी। इसके उद्देश्य ये हैं--

(१) वैदिक साहित्यके अध्ययनमें सुविधा पहुँचाना।
(२) वैदिक साहित्यकी हस्तलिखित एवम् मुद्रित पुस्तकोंका संग्रह करना
(३) निबन्ध, सूचीपत्र, टिप्पणी इत्यादि इस प्रकारका साहित्य तैयार करना जिससे वैदिक साहित्यके अध्ययनमें सुविधा हो।
(४) वैदिक साहित्यके मूल ग्रन्थ प्रकाशित करना।

फ़िलहाल नीचे लिखे कार्योंकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया जा रहा है।

(१) ऐसे ग्रन्थोंका संग्रह करना जिनसे वैदिक साहित्यके अध्ययनमें सहायता मिले।

(२) वैदिक साहित्यकी सूची तैयार करना।

(३) जर्मन या फ्रेञ्च भाषामें इस विषयपर जो साहित्य हो उसे संस्कृत या मराठी भाषाके द्वारा उपलब्ध करना।

(४) सायन भाष्य सहित ऋग्वेदका एक संस्करण प्रकाशित करना।

जितने प्राथमिक या माध्यमिक स्कूल विद्यापीठसे सम्बद्ध हैं—वे सब, अबतक अपनी भिन्न भिन्न श्रेणियोंका पाठ्यक्रम स्वतः निश्चित करते थे, विद्यापीठ केवल प्रवेश परीक्षा अर्थात् माध्यमिक शालाकी अन्तिम श्रेणीकी परीक्षाका पाठ्यक्रम निश्चित करता था। किन्तु हालहीमें विद्यापीठने आरम्भसे अन्ततककी सभी श्रेणियोंके लिये पाठ्यक्रम तैयार किया है जिसे सभी विद्यालयोंने थोड़े बहुत परिवर्तनके साथ स्वीकार कर लिया है। यह पाठ्यक्रम संक्षेपमें इस प्रकार है—

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम तीन भागोंमें बाँटा गया है—प्राथमिक ५ वर्षोंका, माध्यमिक ५ वर्षोंका और प्रवेश परीक्षा २ वर्षोंका। प्राथमिक श्रेणियोंमें मराठी, अङ्कगणित, इतिहास, भूगोल, चित्रकला, वस्तुपाठ, गायन आदि विषय सिखलाये जाते हैं। माध्यमिक श्रेणियोंमें मराठी, संस्कृत, हिन्दी, गणित और खाता बही, इतिहास-भूगोल, विज्ञान, दस्तकारी और चित्रकलाकी शिक्षा दी जाती है। प्रवेश परीक्षाका पाठ्यक्रम दो भागोंमें बँटा है—एक तो उन लोगोंके

लिये जो इसके अनन्तर महाविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त करेंगे और दूसरा उन लोगोंके लिये जो जीविका उपार्जन करनेमें लग जायँगे। निम्नलिखित विषय दोनों ही विभागोंके विद्यार्थियोंके लिये आवश्यक हैं—व्यायाम, वैयक्तिक व सार्वजनिक आरोग्यशास्त्र, व्यावहारिक वैद्यक, इङ्गलैण्ड, अमेरिका, फ़ान्स, स्विटज़लैंण्ड, रुशा आदि देशों-की शासन पद्धतिका साधारण ज्ञान, भारतीय शासन पद्धतिका विशेष ज्ञान, काँग्रेसके सङ्गठन और उसकी कार्यप्रणाली, नागरिक-शास्त्र, क़ानूनका साधारण ज्ञान, अर्थशास्त्रके मूल तत्व और संसार-का अर्वाचीन इतिहास। इनके अतिरिक्त महाविद्यालयमें जाने वाले विद्यार्थियोंको वैद्यक, व्यापार साहित्य, राजशास्त्र, शिक्षा शास्त्र, धर्मप्रचार, स्थापत्य और यन्त्र विद्या इनमेंसे कोई एक विषय लेना पड़ता है। जो विद्यार्थी महाविद्यालयमें न जाना चाहते हों उन्हें मुनीमी, बढ़ईगीरी, बुनाई, रँगाई, बाग़वानी, पुरोहिती, आदि २० व्यावसायिक कार्योंमेंसे किसी एककी शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक विद्यालय अपनी सुविधाके अनुसार इन कार्योंमेंसे कुछ या सबकी शिक्षाका प्रवन्ध कर सकता है।

सन् १९२९ में ८ माध्यमिक एवम् ७ प्राथमिक शालाएँ विद्या-पीठसे सम्बद्ध थीं। इनके अतिरिक्त तीन माध्यमिक पाठशालाएँ विद्यापीठसे मान्य या स्वीकृत थीं। इन सबमें पढ़नेवाले विद्यार्थियों-की संख्या ९११ थी। जिन दिनों असहयोग आन्दोलन ज़ोरपर था

उन दिनों महाराष्ट्र प्रान्तमें राष्ट्रीय विद्यालयोंकी संख्या लगभग ४० थी जिनमें १०००० के क़रीब विद्यार्थी पढ़ते थे।

सन् १९२८ के अक्टूबर तक इस विद्यापीठसे २३१ स्नातक निकल चुके थे। ये सब किस किस कार्यमें लगे हैं इसका पता लगानेपर मालूम हुआ कि प्रायः सभी किसी न किसी काममें लगे हैं। ७९ स्नातकोंके कार्योंके सम्बन्धमें निश्चित रूपसे जो समाचार मिला वह इस प्रकार है—४२ अध्यापनकार्यमें, ३ पत्रसम्पादनमें, ९ देशके रचनात्मक कार्योंमें, १५ स्वतन्त्र पेशोंमें और १० नौकरीमें लगे हैं।

दसवाँ अध्याय।

श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थीभवन, भावनगर।

श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थीभवनकी स्थापना २८ दिसम्बर सन् १६१० ईसवीको हुई थी। शिक्षा विषयक नये नये प्रयोग करना और पश्चिमके देशोंमें इस सम्बन्धमें जो जो पद्धतियाँ प्रचलित हो रही हैं, उनमें भारतीय स्थितिके अनुसार परिवर्तन करके उन्हें अपने यहाँ चलाना इस संस्थाकी विशेषता है। सभी विभागों और श्रेणियोंमें सहशिक्षणकी प्रणाली प्रचलित है—लड़कियाँ और लड़के साथ साथ पढ़ते हैं। शिक्षा निःशुल्क है। इसका वर्तमान कार्यक्रम निम्न लिखित पाँच भागोंमें विभक्त है—

(१) बालमन्दिर

(२) विनयमन्दिर

(३) अध्यापनमन्दिर

(४) विद्यार्थीगृह, और

(५) प्रकाशन मन्दिर

बालमन्दिरमें ३ से १० वर्षकी उम्र तकके बालक लिये जाते हैं। इन्हें माण्टीसरी पद्धतिके अनुसार शिक्षा दी जाती है। शिक्षाकी योजना बनाते समय इस बातका ख़याल रक्खा गया है कि विद्यार्थी स्वतन्त्रताके वातावरणमें रहते हुए अपने शरीर, मन और आत्माका विकास कर सकें। इनाम, भय अथवा परीक्षामें अच्छे नम्बरोंसे पास होनेकी लालचसे विद्यार्थियोंको बिलकुल अलग रक्खा जाता है। मन्दिरका वातावरण एक कुटुम्बसा है। बच्चे निर्भयताके साथ अध्यापकोंसे मिलते हैं। छोटे छोटे लड़के और लड़कियाँ एक साथ पढ़ते, खाते, पीते और खेलते हैं। इस प्रकार मिल जुल कर रहनेका भाव पुष्ट होता है। कमरा साफ़ करना, भोजन परोसना, अपनी वस्तुओंको व्यवस्थित रूपसे रखना, आदि बातोंकी व्यावहारिक शिक्षा बच्चोंको दी जाती है। वे हाथसे सूत भी कातते हैं। लिखना, पढ़ना, गणित, चित्रकला आदिकी शिक्षा देनेके अतिरिक्त उन्हें सङ्गीत और नाटक आदिका भी अभ्यास कराया जाता है। लिखना पढ़ना आदि रटाकर नहीं सिखलाया जाता, वरन् विद्यार्थियोंमें जाननेकी ऐसी इच्छा उत्पन्न की जाती है जिससे वे स्वयं चावके साथ पूछ पूछ कर ये विषय सीख लें। उनके शारीरिक विकासके लिये छोटे छोटे प्रवास और कलाके प्रति रुचि उत्पन्न करनेके लिये सङ्गीत, चित्रकला और ग्राम्यगीत आदिकी सहायता ली जाती है। बालक-गण अपने हाथसे लिखकर कई मासिक पत्रिकाएँ निकालते हैं।

बालमन्दिर, इस बातका भी प्रयत्न करता है कि बालकोंके माता-पिता भी उनकी शिक्षासम्बन्धी बातोंमें दिलचस्पीके साथ भाग लें; यह समझ कर न बैठ रह जायँ कि यह काम केवल अध्यापकोंका है।

विनयमन्दिर (माध्यमिक विद्यालय) में डाल्टन पद्धतिसे शिक्षा दी जाती है और इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि नईसे नई शिक्षापद्धतिका प्रयोग किया जाय। पाठ्यपुस्तकोंपर अधिक ज़ोर नहीं दिया जाता। विद्यार्थियोंके मनमें परीक्षाका भय नहीं समाने पाता। कक्षाओंमें नम्बर नहीं होता। पाठ्यक्रम भी ऐसा नहीं बनाया गया है कि अमुक अमुक विषय विद्यार्थियोंको पढ़ने ही होंगे। उन्हें उनकी रुचि और योग्यताके अनुसार शिक्षा दी जाती है। पाठ्यक्रममें धर्मशिक्षा, सङ्गीत शिक्षा और राष्ट्रभाषा हिन्दीकी शिक्षा भी आवश्यक है। वातावरण कौटुम्बिक जीवनकासा है। विद्यार्थी और अध्यापक छोटे बड़े भाई बहनोंके समान रहते हैं। अन्तिम ३ श्रेणियोंमें दस्तकारीकी शास्त्रीय शिक्षा दी जाती है। कातने और बुननेकी शिक्षाके लिये एक स्वतन्त्र शाला है जहां कताई बुनाई सम्बन्धी सभी कामोंके अतिरिक्त रँगाईकी भी शिक्षा दी जाती है। इस मन्दिरके शिक्षकोंके लिये उपयुक्त पुस्तकोंका एक छोटासा अच्छा पुस्तकालय है। प्रति सप्ताह शिक्षकमण्डलकी बैठक होती है, जिसमें निबन्धपाठ और वार्तालापके द्वारा शिक्षकगण परस्पर विचार विनिमय करते हैं। 'शारदा' नामकी एक हस्तलिखित

मासिक पत्रिका भी निकलती है जिसमें शिक्षापद्धति और उसके प्रयोगोंसे सम्बन्ध रखनेवाले लेख निकलते हैं।

अध्यापनमन्दिरके ७ विभाग हैं—

(१) ग्राम्यशिक्षक अध्यापनमन्दिर

(२) माण्टीसरी अध्यापनमन्दिर

(३) प्राथमिक शिक्षक अध्यापनमन्दिर

(४) माखाप अध्यापनमन्दिर

(५) गृहपति अध्यापनमन्दिर

(६) डाल्टन अध्यापनमन्दिर, और

(७) माध्यमिक शिक्षक अध्यापनमन्दिर

आजकल इनमेंसे (१), (२), (५), (६) और (७) का ही प्रबन्ध है। ग्राम शिक्षक अध्यापनमन्दिरसे गाँवोंके लिये योग्य शिक्षक तैयार किये जाते हैं। माण्टीसरी अध्यापनमन्दिरमें इस पद्धतिसे शिक्षा देना सिखलाया जाता है; सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकारकी शिक्षा दी जाती है। गृहपति अध्यापनमन्दिरमें छात्रावासका प्रबन्ध करनेकी शिक्षा दी जाती है। डाल्टन अध्यापनमन्दिरमें डाल्टन-पद्धतिसे शिक्षा देना सिखलाया जाता है। माध्यमिक शिक्षक अध्यापनमन्दिरमें शिक्षाके साधारण सिद्धान्त और यूरोपीय शिक्षा पद्धतिका इतिहास बतलाया जाता है।

विद्यार्थीगृहका उद्देश्य यह है कि यहाँ रहते हुए विद्यार्थी

स्वतन्त्र और सुव्यवस्थित गृहजीवन व्यतीत करें और आगे चलकर उत्तम मनुष्य बन सकें। विद्यार्थी खुली हवामें रक्खे जाते हैं। उन्हें पौष्टिक भोजन दिया जाता है। व्यायाम आदिके लिये अखाड़ेका प्रबन्ध है। गृहका सारा प्रबन्ध विद्यार्थी अपने विद्यार्थीमण्डलके द्वारा करते हैं। 'विद्यार्थी' नामका एक हस्तलिखित मासिकपत्र भी निकलता है। विद्यार्थियोंके प्रतिदिनके उपयोगकी वस्तुओंकी एक दूकान है जिसका प्रबन्ध विद्यार्थी स्वयम् करते हैं और हिसाब किताब भी खुद ही रखते हैं। प्रतिदिन सामूहिक प्रार्थना होती है। नाटक आदि भी समय समय पर खेले जाते हैं। विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बनानेका विशेष रूपसे प्रयत्न किया जाता है। अपने बर्तन कटोरे आदि वे स्वयं साफ़ करते हैं और अधिकांश कपड़े भी स्वयं धो लेते हैं।

प्रकाशन विभागके द्वारा उपयोगी पाठ्यपुस्तकें और शिक्षा-पद्धति पर शास्त्रीय विवेचनायुक्त ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं। 'श्री दक्षिणामूर्ति' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकलती है। भगवान् बुद्ध और हज़रत मुहम्मद साहब इत्यादि धर्मप्रवर्तकोंके जीवनचरित्र प्रकाशित करनेकी योजना की गई है। बालकोंके लिये सरल और मनोरञ्जक पुस्तकें भी प्रकाशित की जाती हैं। तात्पर्य यह कि यहाँसे शिक्षा सम्बन्धी सब प्रकारकी अच्छी पुस्तकें निकलती है।

सन् १९२९ ईसवीमें विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियोंकी संख्या इस प्रकार थी—

	लड़के	लड़कियाँ
बालमन्दिर	२७	३६
विनयमन्दिर	८०	१५
अध्ययनमन्दिर	७	४
	११४	५५

ग्यारहवाँ अध्याय।

नवीन श्री समर्थविद्यालय, तलेगाँव।

प्रोफ़ेसर विष्णु गोविन्द बीजापुरकरके मनमें सरकारी शिक्षा-प्रणालीकी बुराइयाँ बहुत दिनोंसे खटक रही थीं और वे महाराष्ट्रमें एक स्वतंत्र शिक्षणसंस्था स्थापित करनेकी बात सोच रहे थे। जब काशीमें एक हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी चर्चा शुरू हुई तो उन्होंने इस विचारका जोरोंसे समर्थन किया और एप्रिल सन् १९०६ के 'इण्डियन रिव्यू' में 'नीड फार ए हिन्दू यूनिवर्सिटी' (एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी आवश्यकता) शीर्षक देकर एक लेख भी लिखा। उन दिनों वे कोल्हापुरके राजाराम कालेजमें अध्यापक थे। वङ्गभङ्गके बाद स्वदेशीका आन्दोलन तीव्र होता जा रहा था और सारे देशमें केवल स्वदेशी वस्तु व्यवहार करनेका उत्साह बढ़ता जा रहा था। सन् १९०५ के सेप्टेम्बर महीनेमें राजाराम कालेजमें परीक्षा हो रही थी। विद्यार्थियोंको जो उत्तरपत्रिकाएँ दी गईं वे विदेशी काग़ज़की थीं। उन्होंने स्वदेशी काग़ज़की पत्रिकाएँ माँगीं।

कालेजके वाइस प्रिंसिपल मिस्टर दस्तूरने रिपोर्ट की कि विद्यार्थियोंकी यह जिद्द प्रोफेसर बीजापुरकरके कारण है। २३ सेप्टेम्बरको कोल्हापुर दरबारके दीवानने यह आज्ञा निकाली कि महाराजा साहबको यक़ीन हो गया है कि प्रोफ़ेसर बीजापुरकर विद्यार्थियोंपर अपना प्रभाव उचित रीतिसे नहीं डालते, अतः वे बरख़ास्त किये जाते हैं। कालेजकी नौकरीसे अलग होकर अपने विचारोंके अनुसार शिक्षा देनेके लिये उन्होंने १ जून सन् १९०६ ईसवीको कोल्हापुरमें ही श्री समर्थविद्यालयकी स्थापना की। बादको वहाँ प्लेग शुरू हो जानेसे यह विद्यालय सन् १९०७ में मीरजमें लाया गया और फिर पूनेके समीप तलेगाँवमें आ गया।

इन दिनों बङ्गभङ्गके कारण राजनैतिक आन्दोलन जोरोंपर था। प्रोफ़ेसर बीजापुरकर अपने स्वतन्त्र विचारोंके कारण सरकारकी निगाहमें चढ़े हुए थे और उनके विद्यालयको भी सरकार सशङ्क-नेत्रोंसे देखती थी। २१ जून सन् १९०८ ईसवीको उन्हें राजद्रोहात्मक लेख लिखनेके अपराधमें कोल्हापुर दरबारसे जेलकी सजा हो गई। और १० जून सन् १९१० ईसवीको 'गवर्नर जनरल इन कौंसिल' ने यह नोटिस निकाला कि तलेगाँवके समर्थ विद्यालयका उद्देश्य है शान्तिभङ्गका प्रयत्न करना और उसके कारण जनताकी शान्ति ख़तरेमें है, इसलिये वह संस्था ग़ैरकानूनी मजमा क़रार दी जाती है। इस प्रकार सरकारने इस संस्थाका अन्त कर दिया। सन्

१९१२ में प्रोफ़ेसर बीजापुरकर जेलसे छूट कर आये और उस विद्यालयको फिरसे चलानेका प्रयत्न करने लगे। बहुत कोशिशके बाद सरकार इस शर्तपर राज़ी हुई कि विद्यालयकी प्रबन्ध समितिके अध्यक्ष उसके (सरकारके) विश्वासपात्र सर महादेवराव चौबल हों। विद्यालयकी पहली सञ्चालक सभा महाराष्ट्र विद्याप्रसारक मण्डल कहलाती थी। तारीख़ १७ नवम्बर सन् १९१८ को 'नूतन महाराष्ट्र विद्याप्रसारक मण्डल' के नामसे इसका फिरसे सङ्गठन किया गया और उसके दूसरे दिनसे विद्यालय भी 'नवीन श्री समर्थविद्यालय' के नामसे खुल गया। मण्डलके अध्यक्ष सर महादेवराव चौबल हुए। सन् १९२० ईसवीसे देशमें असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ। फलस्वरूप देशके अन्य प्रान्तोंकी भाँति महाराष्ट्रमें भी 'तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ' के नामसे एक विद्यापीठकी स्थापना हुई। प्रोफ़ेसर बीजापुरकर काँग्रेसकी शिक्षासम्बन्धी असहयोगी नीतिसे पूर्णतया सहमत न थे। लेकिन राष्ट्रीय शिक्षाके आन्दोलनसे उनकी पूरी सहानुभूति थी और तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठके कार्योंमें भी वे भाग लेते थे। सर महादेवरावको यह बात पसन्द न आई। सन् १९२१ में मण्डलके पदाधिकारियोंका नया निर्वाचन होना था। सर महादेवराव इस समय मण्डलसे अलग हो गये और सरकारको सूचना दे दी कि इस मण्डलसे अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। यदि साधारण समय होता तो सरकारने फिर इस विद्यालयपर वज्रपात किया

होता। किन्तु देशका राजनैतिक आन्दोलन बहुत प्रौढ़ हो चुका था और इस कारण वह विद्यालयको इस प्रकारकी क्षति न पहुँचा सकी।

आरम्भसे ही इस विद्यालयकी ये विशेषताएँ रही हैं--

(१) शिक्षाका माध्यम विद्यार्थियोंकी मातृभाषा मराठी है।

(२) सभी विद्यार्थियोंके लिये छात्रावासमें ही रहना आवश्यक है, ताकि विद्यार्थियों और अध्यापकोंके बीचका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ रहे।

(३) ब्रह्मचर्यपर ज़ोर दिया जाता है।

(४, पाठ्यक्रम और परीक्षाप्रणाली ऐसी है कि विद्यार्थियोंके मस्तिष्कपर व्यर्थका बोझ न पड़ने पावे।

(५) बौद्धिक शिक्षाके साथ साथ औद्योगिक शिक्षा भी दी जाती है।

(६) धार्मिक शिक्षा हिन्दुओंके ऊँचे आदर्शोंके अनुसार दी जाती है। किन्तु अन्य धर्मोंके प्रति भी आदरका भाव रक्खा जाता है।

विद्यालयका पाठ्यक्रम ७ वर्षोंका है। प्रारम्भिक श्रेणियोंकी शिक्षा समाप्त किये हुए विद्यार्थी ही इसमें प्रविष्ट हो सकते हैं। सातों वर्षोंका पाठ्यक्रम मोटे तौरपर तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है--प्रथम दो वर्ष, मध्यके तीन वर्ष और अन्तके दो वर्ष। प्रथम दो वर्षोंमें मराठी, गणित, इतिहास, भूगोल, अँगरेज़ी और चित्रकारी·

की शिक्षा दी जाती है। मध्यके तीन वर्षोंमें उपरोक्त विषयोंके अतिरिक्त संस्कृत भी पढ़ाई जाती है। इन दोनोंही भागोंमें धर्मशास्त्र पढ़ाया जाता है। अन्तिम दो वर्षोंमें केवल मराठी और अँगरेज़ीकी पढ़ाई होती है। यहाँतक केवल बौद्धिक शिक्षणका पाठ्यक्रम हुआ। इसके अतिरिक्त औद्योगिक शिक्षा भी सातों श्रेणियोंमें दी जाती है। प्रथम दो वर्षोंमें हाथके काममें रुचि उत्पन्न करनेका ही प्रयत्न किया जाता है। मध्यके तीन वर्षोंमें बुनाई, खेती और बढ़ईगीरीकी साधारण शिक्षा एक एक वर्षतक दी जाती है। अन्तिम दो वर्षोंमें नीचे लिखे विषयोंमेंसे किसी एककी शिक्षा दी जाती है—खेती, बढ़ईगोरी और लोहारी, चित्रकला, और घटविद्या (मिट्टीके बर्तन बनाना)। प्रथम पाँच वर्षोंमें विद्यालयका तीन चतुर्थांश समय बौद्धिक शिक्षाके लिये और एक चतुर्थांश औद्योगिक शिक्षाके लिये दिया जाता है। किन्तु अन्तिम दो वर्षोंमें एक चतुर्थांश समय बौद्धिक शिक्षाके लिये और तीन चतुर्थांश औद्योगिक शिक्षाके लिये दिया जाता है। शारीरिक शिक्षा और व्यायामका अच्छा प्रबन्ध है। विद्यार्थियोंको लाठी, तलवार, कुश्ती, मलखम आदिकी अच्छी शिक्षा मिलती है। विद्यालयके विद्यार्थियोंको देशकालका साधारण ज्ञान अच्छा रहता है। वे हाथसे लिखकर अपनी पत्रिकाएँ भी निकालते हैं।

यह विद्यालय किसी विद्यापीठसे सम्बद्ध नहीं है। किन्तु यहाँ की शिक्षा समाप्त किये हुए विद्यार्थियोंको पूनेके तिलक महाविद्या-

लय और 'नेशनल कौंसिल आफ़ एजुकेशन, बेङ्गाल' के 'कालेज आफ़ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी' में प्रवेश मिलता है। जो विद्यार्थी सरकारी विश्वविद्यालयोंकी मैट्रिकुलेशन परीक्षामें बैठना चाहें वे यदि यहाँकी पाँचवीं श्रेणी तककी शिक्षा समाप्त करके एक वर्ष और अभ्यास कर लें तो उन्हें कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ेगी। सन् १९२९ में इस विद्यालयमें ६० विद्यार्थी थे।

बारहवाँ अध्याय।

प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन।

यों तो विदेशी सरकारद्वारा प्रचारित शिक्षाप्रणालीकी बुराइयाँ बहुत पहलेसे स्पष्ट होती आरही थीं और उनका प्रतीकार करनेके प्रयत्नस्वरूप अनेक शिक्षा संस्थाओंकी स्थापना भी हो चुकी थी, पर २० वीं शताब्दीके आरम्भसे इस विषयपर चिन्ताके साथ विचार किया जाने लगा था। अन्य बुराइयोंके साथ साथ शिक्षितोंकी बेकारीका प्रश्न बहुत जटिल होता जा रहा था और कलाकौशल सम्बन्धी शिक्षाका देशमें सर्वथा अभाव होनेकी अवस्था विचारशील लोगोंको बहुत खटक रही थी। ऐसे समयमें विदेश यात्रा करते हुए राजा महेन्द्रप्रतापके हृदयपर योरोपीय देशोंकी शिक्षा और उनके उद्योगप्रेमका विशेष प्रभाव पड़ा। उन्हें इस दृष्टि से भारतवर्षकी शोचनीय अवस्थाका ख़याल आया। उन्होंने देखा कि यहाँ एक ओर तो पढ़े लिखे आदमी अपने हाथसे कोई काम कर ही नहीं सकते और दूसरी ओर देशके कारीगर अक्षर ज्ञान

शून्य होते हैं। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका बिलकुल ही सहयोग नहीं है और इस कारण दोनों ही तरहकी शिक्षा बिलकुल अधूरी रह जाती है। आख़िर तारीख़ २४ मई सन् १९०९ ईसवीको आपने प्रेम महाविद्यालयकी स्थापना की और अपने विशाल राजकीय भवनमें ही उसका आरम्भ किया। साथ ही अपने पाँच गाँव भी (जिनकी आमदनी सब ख़र्च काट कर लगभग ३३ हज़ार रुपये प्रतिवर्ष होती है) इस विद्यालयको भेंट कर दिये।

प्रेम महाविद्यालयका किसी यूनिवर्सिटीसे सम्बन्ध नहीं है। यह एक स्वतंत्र राष्ट्रीय महाविद्यालय है, जो जाति, सम्प्रदाय और मतमतान्तरके भेदभावको छोड़कर सब प्रान्तोंके भारतीय नव-युवकोंको स्वस्थ, स्वतंत्र और देशप्रेमी नागरिक बननेकी शिक्षा देता है। स्थापनाके समयसे ही प्रेम महाविद्यालयके उद्देश्य इस प्रकार हैं:—

(१) सर्वसाधारणमें प्रारम्भिक शिक्षाप्रणालीका प्रचार करना।
(२) व्यापार, उद्योगधंधे और कलाकौशल आदिकी उच्च शिक्षाके साथ साधारण उच्च शिक्षा देना।
(३) स्वास्थ्यके महत्वकी शिक्षा देना।
(४) रहन सहनकी मर्यादाको ऊँचा करना और सामाजिक कुरीतियाँ हटाना।
(५) भारतके मृतप्राय कलाकौशल और औद्योगिक धन्धोंका

पुनरुज्जीवन और उनका आधुनिक प्रणालीके अनुसार सञ्चालन करना।

(६) पश्चिमी सभ्यताको पूर्वी सभ्यतासे मिलाकर भारतवर्षमें एक जातीयताका सङ्गठन करना।

(७) उपर्युक्त उद्देश्यके साधनार्थ सबसे अच्छा स्थान या स्थानोंमें प्रेम महाविद्यालय अर्थात् शिल्प, वाणिज्य, कृषि और शिक्षा सम्बन्धी विद्यालयकी स्थापना करना।

संक्षेपमें इस महाविद्यालयका उद्देश्य भारतवर्षमें सामान्य शिक्षाके अतिरिक्त कलाकौशल और शिल्पकी उच्च शिक्षाका निःशुल्क प्रचार करना है, ताकि नवयुवक यहाँसे शिक्षा पानेके उपरान्त अपनी आजीविकार्थ जगह जगह नौकरीके लिये न भटकते फिरें, वे स्वावलम्बी और स्वतंत्र जीवन व्यतीत कर सकें, साथही देशमें शिक्षित कारीगर यथेष्ट संख्यामें मिल सकें।

प्रेम महाविद्यालयका आरम्भ बढ़ईगीरीकी शिक्षाके साथ हुआ। कुछ दिनोंके बाद चित्रकला, कामर्स, और 'पाटरी' की कक्षाएँ बढ़ाई गईं और हिन्दी अँगरेज़ी आदि विषयोंकी श्रेणियाँ भी खोली गईं। बालश्रेणीमें पहले बालक और बालिकाओंके साथ साथ पढ़नेका प्रबन्ध था। सन् १९१५ ईसवीमें यह श्रेणी बन्द हो गई। अगस्त सन् १९२० से कपड़ा बुननेका काम आरम्भ हुआ। मार्च सन् १९२२ में 'महिला वस्त्रकला कक्षा' खोली गई। सन् १९१३ ईसवीमें मथुरा

और बुलन्दशहर ज़िलेके छः गाँवोंमें कृषि आदि कार्यकरनेवाली जातियोंके नवयुवकोंको शिक्षा देनेके लिये प्रेमपाठशालाएँ खोली गईं। सन् १९११ ईसवीमें एक छापाखाना खोला गया। सन् १९२० ईसवी तक यहाँ जिल्दसाजी सिखलानेका भी प्रबन्ध था। सन् १९१० ईसवीसे 'प्रेम' नामक पत्र प्रकाशित होने लगा। पहले यह दस दस दिनोंपर छपता था, बादको साप्ताहिक हुआ। कुछ दिनों बन्द रहकर फिर चला और मासिक होगया, पर आजकल बन्द है। सन् १९२८ ईसवीसे एक ग्राम-कार्यकर्ता-शिक्षणविभाग खोला गया है जिसके द्वारा ग्रामसङ्गठनके लिये कार्यकर्त्ता तैयार किये जाते हैं। प्रेममहाविद्यालयके सभी विभागोंमें शिक्षा बिलकुल निःशुल्क है। योग्य विद्यार्थियोंको कुछ छात्रवृत्ति भी दी जाती है।

महाविद्यालयके अन्तर्गत आजकल जितने शिक्षणालय हैं उन्हें चार भागोंमें बाँटा जा सकता है—

[१] साधारण विद्यालय विभाग.

[२] शिल्प शिक्षा विभाग

[३] वाणिज्य (कामर्स) शिक्षाविभाग

[४] ग्राम कार्यकर्ता शिक्षण विभाग

पहले और दूसरे विभागोंकी एक विशेषता यह है कि साधारण विद्यालयमें विद्यार्थियोंको बौद्धिक शिक्षाके साथ साथ कुछ औद्योगिक शिक्षा भी दी जाती है और शिल्प विद्यालयोंमें भिन्न भिन्न

शिल्पोंकी शिक्षाके साथ साथ कुछ साहित्यिक शिक्षा भी दी जाती है।

साधारण विद्यालयमें चार श्रेणियाँ हैं जिनका पाठ्यक्रम मैट्रिकुलेशनके दर्जेका है। सरकारी स्कूलोंकी छठीं श्रेणी तककी शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी प्रथम श्रेणीमें भरती किये जाते हैं। शिक्षाका माध्यम हिन्दी भाषा है। विद्यार्थीको साहित्यिक और बौद्धिक शिक्षा प्राप्त करनेके अतिरिक्त किसी एक उद्योग और चित्रकलाकी भी शिक्षा लेनी होती है। औद्योगिक शिक्षा इस दर्जें तक देनेका प्रयत्न किया जाता है जिससे विद्यालय छोड़नेके उपरान्त विद्यार्थी इसके आधारपर स्वतंत्र रूपसे जीविका प्राप्त कर सके। उच्च कक्षाओंमें अर्थशास्त्र तथा नागरिक धर्मकी भी शिक्षा दी जाती है जिससे विद्यार्थी देशकी विविध समस्याओंपर विचार कर सकें। पाठविधि तैयार करनेमें इस बातका ख़याल रक्खा गया है कि विद्यार्थियोंके मस्तिष्कपर ऐसा भार न पड़े जो उनकी मानसिक शक्तिके विकासमें बाधक हो। विद्यार्थियोंको सामयिक और उपयोगी विषयोंपर भाषण देने और निबन्ध लिखनेका अभ्यास करानेके लिये प्रेम युवकसभा है। प्रयागकी सेवासमितिसे सम्बद्ध एक बालचर संस्था भी है। विद्यार्थियोंके लिये शुद्ध खद्दरके कपड़े पहनना आवश्यक है।

सभी विभागोंमें बाहरसे आनेवाले विद्यार्थियोंके लिये एक छात्रावास है। यहाँ चरित्रगठनपर विशेष ज़ोर दिया जाता है।

छात्रावासका कोई किराया नहीं लिया जाता। विद्यार्थियोंका मासिक भोजन ख़र्च, घी दूधको छोड़ कर आठ नव रुपया पड़ता है।

शिल्प शिक्षा विभागमें निम्नलिखित शिल्पोंकी शिक्षाका प्रबन्ध है—

(१) मिकेनिकल इञ्जिनीयरिङ्ग—इसका पाठ्यक्रम तीन वर्षों का है और इसमें मैट्रिकुलेशनकी योग्यता रखनेवाले विद्यार्थी लिये जाते हैं।

(२) बढ़ईगीरी और लोहारी—इसका भी पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है।

(३) ग़लीचा बुनना—इसका पाठ्यक्रम एक वर्षका है।

(४) चीनीके खिलौने और बर्तन बनाना—इसका पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है। इसमें प्रविष्ट होनेवाले विद्यार्थियोंके लिये अँगरेज़ी भाषाका साधारण ज्ञान रखना आवश्यक है।

(५) दर्ज़ीका काम—इसका पाठ्यक्रम एक वर्षका है।

(६) लोहेका ढालना, खराद और फिटिङ्गका काम—इसका पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है।

(७) कपड़ा बुनना—इसका पाठक्रम एक वर्षका है।

इन श्रेणियोंमें इन विषयोंके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार हिन्दी और गणितकी शिक्षा भी दी जाती है। चित्रकला अनिवार्य विषय है। साथही उसकी विशेष शिक्षाका भी अलग प्रबन्ध है। शिक्षा

तो निःशुल्क है ही, किन्तु विद्यार्थियोंको काम करनेके औजार भी विद्यालयकी ओरसे दिये जाते हैं। योग्य विद्यार्थियोंको छात्रवृत्ति भी दी जाती है। कपड़ा बुनने, सूत कातने, कालीन व निवाड़ आदि बुननेका काम सीखनेके लिये महिलाओंकी पृथक वस्त्रकलाश्रेणी है।

वाणिज्य शिक्षा विभागमें टाइपराइटिंग, शार्टहैण्ड और देशी तथा विदेशी महाजनी हिसाबकी शिक्षाका प्रवन्ध है। इन विषयोंके अतिरिक्त नागरिक धर्म और अर्थशास्त्रकी भी शिक्षा दी जाती है।

सब विभागोंके विद्यार्थियोंकी संख्या आजकल १७८ है। आजतक २५५ विद्यार्थी भिन्न भिन्न विभागोंसे डिप्लोमा प्राप्त करके निकल चुके हैं।

ग्राम कार्यकर्त्ता शिक्षण विभाग सन् १९२८ ईसवीसे खोला गया है, और देशकी वर्तमान परिस्थितिमें इससे एक बड़ी कमीकी पूर्ति हो रही है। जो लोग ग्रामसङ्गठनका काम करना चाहते हों, और ग्रामवासियोंको उनकी आर्थिक, सामाजिक, सफ़ाई एवम् शिक्षा-सम्बन्धी अवस्थाको सुधारनेमें विचारपूर्ण व्यावहारिक सहायता पहुँचाना चाहते हों, उन्हें ग्राम्यजीवन और ग्राम सङ्गठनके कार्यके सम्बन्धमें आवश्यक, भिन्न भिन्न विषयोंकी सुसम्बद्ध सैद्धान्तिक और व्यावहारिक शिक्षा देना—इस विभागका उद्देश्य है। इस विभागमें किसीभी जाति या धर्मके १८ वर्षसे अधिक उम्रके ऐसे विद्यार्थी प्रविष्ट हो सकते हैं जिन्होंने मैट्रिकुलेशन तककी शिक्षा

पाई हो, हिन्दी अच्छी जानते हों और इस बातकी प्रतिज्ञा करते हों कि यहाँकी शिक्षा समाप्त करनेके उपरान्त कमसे कम दस वर्ष तक ग्राम सुधारका कार्य करेंगे। विद्यार्थियोंसे किसी प्रकारका शुल्क नहीं लिया जाता, १० विद्यार्थियोंको १५ से २० रुपये मासिक तककी छात्रवृत्ति भी इन शर्तोंपर दी जाती है कि वे—

(१) इस बातकी प्रतिज्ञा करें कि इस पाठ्यक्रमकी पूरी शिक्षा समाप्त करेंगे। और

(२) यह प्रतिज्ञा करें कि शिक्षा समाप्त करनेपर दस वर्ष तक वे विद्यालयके अधिकारियोंके नियन्त्रणमें अपनी आवश्यकतानुसार ३० से ७५ रुपये तक मासिक पुरस्कार लेते हुए ग्रामसङ्गठनका कार्य करेंगे। मासिक पुरस्कार कितना हो—इसका निर्णय विद्यालयके अधिकारी, उन संस्थाओंके अधिकारियोंसे सलाह करके करेंगे जिनके द्वारा इन कार्यकर्ताओंको काम दिया जायगा।

जिन विद्यार्थियोंको छात्रवृत्ति न मिलेगी उन्हें पहली प्रतिज्ञा तो उसी भाँति करनी होगी पर दूसरीके सम्बन्धमें उन्हें स्वतंत्रता रहेगी कि किसी भी संस्थाके आधीन रह कर काम करें, लेकिन १० वर्षों तक काम करना होगा। प्रत्येक विद्यार्थीको छात्रावासमें रहना होगा और उसके लिये शुद्ध खादी पहनना तथा प्रतिदिन सूत कातना आवश्यक होगा।

पाठ्यक्रम—सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों मिलाकर—दो वर्षोंका रक्खा गया है। पर जो विद्यार्थी (क) कृषिशास्त्र, (ख) स्वास्थ्यरक्षा और सफ़ाई, (ग) प्रारम्भिक शिक्षा, उसकी प्रणाली और उसके सिद्धान्त, (घ) सहकारी सभाएँ, और (ङ) किसान तथा मज़दूर सङ्गठन—इनमेंसे किसी एक विषयका विशेष ज्ञानप्राप्त करना चाहेंगे उन्हें छः महीने और रहना होगा। दो वर्षों तक इन विषयोंकी शिक्षा दी जाती है—

(१) अर्थशास्त्र—उसके साधारण सिद्धान्त, और भारतीय अर्थशास्त्रका इतिहास विशेषकर मालगुजारी, गृह-उद्योग, सहकार सभाएँ बेकारी तथा किसान सभाओंका ख़याल रखते हुए।

(२) शासनविधान और नागरिक शास्त्र—भारतीय शासन विधान, स्थानीय स्वायत्त संस्थाएँ—उनका कार्यक्षेत्र और इतिहास ग्राम पंचायत और भारतवर्षकी वर्तमान समस्याएँ।

(३) सफ़ाई—सफ़ाई, स्वास्थ्यरक्षा और शरीर विज्ञानका साधारण-ज्ञान।

(४) शिक्षा—प्रारम्भिक शिक्षाकी प्रणाली और उसके सिद्धान्त।

(५) सूत कातना, बुनना, कृषिका काम, अछूतोंकी पहली

सहायता, क़वायद, देशी खेल, और मामूली हिसाब किताब।

(६) व्यावहारिक—कातने और बुननेवालोंका हिसाब करना, गाँवोंको धार्मिक सामाजिक और सफ़ाई सम्बन्धी अवस्थाओंका अध्ययन करना, प्रारम्भिक पाठशाला चलाना, अछूतोद्धार सम्बन्धी कार्य आदि।

दो वर्षोंका समूचा पाठ्यक्रम चार चार महीनेके छः सत्रोंमें विभाजित है। पहले, तीसरे और पाँचवें सत्रमें विद्यार्थी विद्यालयमें रहते हुए सैद्धान्तिक शिक्षा प्राप्त करते हैं, और व्यावहारिक शिक्षाके लिये दूसरे, चौथे तथा छठें सत्रमें शिक्षकोंके साथ गाँवोंमें जाते हैं।

तेरहवाँ अध्याय।

वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद्
या
नेशनल कौंसिल आफ़ एजुकेशन, बङ्गाल।

देशमें जो मुख्य मुख्य ग़ैरसरकारी शिक्षासंस्थाएँ हैं उन सबका भारतवर्षकी वर्तमान जागृतिके आन्दोलनसे विशेष सम्बन्ध है। किन्तु वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद ही पहली ऐसी संस्था है जो देशके राजनैतिक आन्दोलनके फलस्वरूप स्थापित हुई। इसकी स्थापनाका इतिहास समस्त देशके और विशेषकर बङ्गालके राजनैतिक इतिहासका एक महत्वपूर्ण और रोचक अंश है। देशका वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन अँगरेज़ीकी ऊँची शिक्षा पाये हुए लोगोंके द्वारा आरम्भ हुआ था। इस शिक्षाकी शुरुआत बंगालसे हुई थी और ऐसे शिक्षित लोगोंकी तादाद भी वहीं अधिक थी। फलतः देशका राजनैतिक आन्दोलन बङ्गालमें अधिक ज़ोरपर था। शिक्षित बङ्गालियोंकी शक्तिको चूर्ण करके ही यह आन्दोलन शिथिल

किया जा सकता था। लार्ड कर्ज़नने इसका अनुष्ठान शुरू किया। वङ्गालके स्कूल कालेजोंकी उच्च शिक्षा उन दिनों कलकत्ता विश्व-विद्यालयके हाथोंमें थी। इसके अधिकांश सदस्य ग़ैरसरकारी लोग होते थे। वे विद्यालयोंका पाठ्यक्रम और रीति नीति निर्धारित करनेमें देशहितका ख़याल रखते थे और सरकारी क़ायदोंकी पावन्दी करते हुए जहाँतक सम्भव था इसी उद्देश्यको पूरा करनेकी कोशिश करते थे। लार्ड कर्ज़नको यह बात सह्य न हुई और उन्होंने एक ऐसा क़ानून बनाना चाहा जिससे विश्वविद्यालयके अधिकांश सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत किये जायँ। लार्ड कर्ज़नके प्रस्तावित क़ानून-का मसविदा जिस कमेटीके सामने पेश हुआ उसके एक सदस्य थे सर गुरुदास वन्द्योपाध्याय। उन्होंने इसका वहुत विरोध किया। देशमें भी इसका घोर विरोध हुआ, पर लार्ड कर्ज़नने उस क़ानूनको पास करा ही लिया। इससे वड़ा असन्तोष फैला और लोगोंके मनमें यह बात उठने लगी कि यदि सरकार देशकी शिक्षापद्धतिको इस प्रकार शासनके नियंत्रणमें रक्खेगी तो हमारे लिये यही उचित है कि एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करें, और देशकी शिक्षाका भार अपने हाथोंमें ले लें। किन्तु यह विचार अभी विचार मात्र रहा। अब लार्ड कर्ज़नने अपना दूसरा अस्त्र चलाया। वङ्गालको दो टुकड़ोंमें विभक्त कर दिया। क्यों किया—इसपर विचार करना इस निबन्धके विषयकी सीमाके वाहर है;

और आज दिन तो प्रत्येक व्यक्ति इस बातको समझता है कि ऐसा करनेसे देशपर विदेशी शासनका पञ्जा जमाए रखनेमें कितनी मदद मिलती थी। वङ्गाली इस प्रहारको न सह सके। उन्होंने निश्चय किया कि हम विभक्त न होंगे। पूर्व और पश्चिम बङ्गालके बीच जो कुछ भेदभाव था वह भी लार्ड कर्ज़नके इस कृत्यसे दूर हो गया। १६ अक्टूबर सन् १९०५ ईसवीसे बङ्गालके दोनों टुकड़ोंका शासन अलग अलग हो गया। उस दिन सारे वङ्गालमें उपवास हुआ और बङ्गालियोंने एक दूसरेको भाई भाईके मिलन स्वरूप राखी दी। उसी दिन कलकत्तेमें एक विराट् सभा हुई और बङ्गालियोंने घोषणा की कि "वङ्गाली राष्ट्रके विरोधकी अवहेलना करके सरकारने बङ्गालके दो टुकड़े करनेका निश्चय किया है, किन्तु हम प्रतिज्ञा करते हैं कि इस विभाजनकी बुराइयोंको दूर करने और अपने प्रान्तकी अखण्डता क़ायम रखनेके लिये कोशिश करनेमें कुछ भी उठा न रक्खेंगे। ईश्वर हमारी सहायता करे।" इसीके साथ साथ स्वदेशी आन्दोलनने भी ज़ोर पकड़ा। नगर नगरकी सभामें यह प्रतिज्ञा होने लगी कि हम इँग्लेण्डकी या किसी भी विदेशकी वनी हुई चीज़ इस्तेमाल नहीं करेंगे।

इन सब आन्दोलनोंको बढ़ानेमें विद्यार्थीगण बड़े उत्साहके साथ भाग ले रहे थे। सरकारने देखा कि यदि उन्हें अलग कर दिया जाय तो आन्दोलन कमज़ोर हो जायगा। उस समय पश्चिम बङ्गाल और

पूर्व बङ्गालमें सरकारके सेक्रेटरी क्रमशः कार्लाइल और लायन नामक व्यक्ति थे। इन लोगोंने यह सर्क्यूलर जारी किया कि विद्यार्थी लोग राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग न ले सकेंगे; जिस विद्यालयके प्रबन्धक और शिक्षक इस आदेशका पालन न करेंगे उस विद्यालयको सरकारी सहायता न मिलेगी और वहाँके विद्यार्थियोंको सरकारी छात्रवृत्ति भी न दी जायगी। यह सर्क्यूलर २८ अक्तूबरको प्रकाशित हुआ। इससे जनताकी विरोध भावना और बढ़ी। १ नवम्बरको कलकत्तेके 'फ़ील्ड एण्ड एकाडेमी क्लब' में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सभापतित्वमें एक सभा हुई जिसमें यह निश्चय हुआ कि हम इस सर्क्यूलरको न मानेंगे, अपने बच्चोंकी शिक्षाका भार हम स्वयं लेंगे और एतदर्थ एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करेंगे। इसी बीच कुछ ऐसी घटनाएं हुईं जिन्होंने उपरोक्त विचारको कार्य रूपमें परिणत करनेमें बहुत योग दिया। ऊपर कहा गया है कि १६ अक्टूबरको कलकत्तेकी एक विराट सभामें बङ्गालियोंकी ओरसे यह घोषणा हुई कि हम बङ्गालकी अखण्डता क़ायम रखनेकी कोशिशमें कुछ भी न उठा रक्खेंगे। इसके कुछ दिन बाद यह निश्चय किया गया कि १ नवम्बरको प्रत्येक नगरसे यही घोषणा की जाय। हुआ भी ऐसा ही। रङ्गपुरमें इसके लिये जो सभा हुई उसमें भाग लेनेके कारण २०० विद्यार्थियोंपर जुरमाने हुए। ढाकाके विद्यार्थियोंने निश्चय किया कि १ नवम्बरसे लगातार ३ दिनों तक

नंगे पैरं स्कूल जायँगे। उनपर भी जुरमाने हुए। दिनाजपुरके कुछ विद्यार्थियापर भी इसी कारण जुरमाने हुए। किन्तु इन सभी जगहों-पर अभिभावकोंने जुरमाना देनेसे इनकार कर दिया और अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंमें भेजना भी बन्द कर दिया। उनकी शिक्षाके लिये इन तीनों स्थानोंपर राष्ट्रीय स्कूल खोले गये। यही बङ्गालके सर्व प्रथम राष्ट्रीय स्कूल थे। जब यह समाचार कलकत्ते पहुँचा तो विद्यार्थियोंमें बड़ी उत्तेजना फैली। एम० ए० और पी० आर० एस० की परीक्षा निकट थी, पर अनेक परीक्षार्थियोंने निश्चय किया कि हम परीक्षा नहीं देंगे। अनेक विद्यार्थियोंने कालेज छोड़ दिया। विद्यार्थियोंकी सभाएं होने लगीं और उनसे सरकारी विद्यालयोंको छोड़कर राष्ट्रीय विश्वविद्यालयकी सहायता करनेकी अपील की जाने लगी।

अब एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालयकी स्थापनाका समय आ गया था। १४ नवम्बरको बैरिस्टर आसुतोष चौधरी (स्वर्गीय सर आसुतोष चौधरी) ने कुछ प्रमुख सज्जनोंके नाम एक पत्र लिखा जिसमें उनसे प्रार्थना की कि शिक्षा समस्या पर विचार करनेके लिये १६ नवम्बरको एक सम्मेलनमें उपस्थित हों। इस सम्मेलनमें बङ्गा-लके सभी नेतागण आये। निश्चय हुआ कि राष्ट्रीय ढंगपर राष्ट्रीय शिक्षाका सञ्चालन करनेके लिये एक राष्ट्रीय शिक्षा परिषद स्थापित करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है, और इस उद्देश्यकी पूर्तिके हेतु कार्या-

रम्भ करनेके लिये एक अस्थायी शिक्षा समिति बनाई जाती है जिसे आदेश दिया जाता है कि दो सप्ताहके भीतर अपनी रिपोर्ट दे। सम्मेलनमें बतलाया गया कि इस कार्यके लिये श्रीयुत सुबोधचन्द्र मल्लिकने १ लाख रुपयेका और एक दूसरे सज्जनने ५ लाखका दान दिया है। ये दूसरे सज्जन थे श्री ब्रजेन्द्र किशोर राय चौधरी। १० दिसम्बरको सम्मेलनकी दूसरी बैठक हुई जिसमें उपरोक्त अस्थायी शिक्षा समितिकी रिपोर्ट पर विचार होकर निश्चय हुआ कि कार्यारम्भके प्रकारों और उपायोंपर विचार करनेके लिये एक उपसमिति बना दी जाय। ११ मार्च सन् १९०६ ईसवीको सम्मेलनकी तीसरी बैठक हुई जिसमें उक्त उपसमितिकी रिपोर्ट स्वीकृत होकर राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्की स्थापना हुई। तारीख़ १ जूनको इसकी बाक़ायदा रजिस्ट्री हो गई। इसके मुख्य उद्देश्योंमेंसे कुछ ये हैं—

(क) आजकल प्रारम्भिक माध्यमिक और कालेजकी शिक्षा जिस पद्धतिसे चल रही है उसका विरोध न करते हुए, किन्तु उससे बिलकुल अलग रहते हुए साहित्यिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक आदि शिक्षाका राष्ट्रीय ढंग पर और पूर्णतया राष्ट्रीय नियन्त्रणमें प्रबन्ध करना और उसकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करना। इस शिक्षामें अपने देश तथा उसके साहित्य, इतिहास, दर्शन आदिकी शिक्षाको विशेष महत्व दिया जायगा और इस बातका प्रयत्न किया जायगा कि जीवन और विचारके सम्बन्धमें

पूर्वके ऊँचे आदर्शोंके साथ पश्चिमके अच्छे अच्छे विचारोंका भी एकीकरण हो। विद्यार्थियोंमें स्वदेश प्रेम और स्वदेश सेवाका भाव जाग्रत करनेकी चेष्टा की जायगी।

(ख) कला, विज्ञान, उद्योग और व्यापार सम्बन्धी शिक्षाके उन अङ्गों पर विशेष ज़ोर देना, जिनसे देशकी अवस्था सुधरे और उसकी आवश्यकताओंकी पूर्ति हो सके। वैज्ञानिक शिक्षामें ऐसे विज्ञानकी शिक्षाका भी समावेश होगा जो पूर्वीय देशोंके शास्त्रोंमें पाये जाते हैं, और औषधिविज्ञानकी शिक्षामें आयुर्वैदिक और हकीमी पद्धतियोंकी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया जायगा। ...।

(च) बँगला, हिन्दी, उर्दू आदि प्रान्तीय भाषाओंके माध्यमसे शिक्षा देना; किन्तु अँगरेज़ी द्वितीय भाषाके रूपमें एक आवश्यक विषय हो। ...।

(झ) प्रान्तीय भाषाओंमें भिन्न भिन्न विषयों पर आवश्यक पाठ्य-पुस्तकें तैयार करना। ...।

इसको प्रथम परिचालक समितिके सभापति हुए श्री रासविहारी घोष और मंत्री श्री आसुतोष चौधरी तथा श्री हीरेन्द्रनाथ दत्त। जैसा कि ऊपर कहा गया है, श्री सुबोधचन्द्र मल्लिक और श्री ब्रजेन्द्रकिशोर राय चौधरीने क्रमशः १ लाख और ५ लाखका दान देनेको कहा था। इन सज्जनोंने इतने इतने रक़मकी ज़मीन्दारियां

परिषदको दीं, जिनकी वार्षिक आय क्रमशः ३६०० और २०००० रुपये हुई। इनके अतिरिक्त दूसरे वर्ष मैमनसिंहके महाराजा सूर्यकान्त आचार्य चौधरीने ढाई लाखकी ज़मीन्दारी दी जिसकी वार्षिक आय १०००० रुपये थी। इस प्रकार परिषद्का कार्य साढ़े आठ लाखकी सम्पत्तिसे आरम्भ हुआ जिसकी वार्षिक आय ३३६०० रुपये हुई। परिषदकी स्थापना तो हो गई किन्तु विद्यालयका अब तक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ था। १५ अगस्तको कालेज और स्कूल खोले गये जिसके सर्व प्रथम अध्यक्ष (प्रिन्सिपल) हुए श्री अरविन्द घोष।

वङ्गालमें राष्ट्रीय शिक्षाका यह आन्दोलन जबसे शुरू हुआ तभीसे स्वर्गीय तारकनाथ पालित बड़ी दिलचस्पीके साथ इसमें भाग ले रहे थे। उन्होंने वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषदकी स्थापनामें बड़ा योग दिया। किन्तु जिस समय उसका सङ्कल्पपत्र और उसकी नियमावली तैयार हुई उस समय अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओंसे कुछ सिद्धान्तों पर उनका मतभेद हो गया और वे उससे अलग रहे। उन्होंने 'शिल्प विज्ञान शिक्षा-सहायक समिति' (सोसाइटी फ़ार दि प्रोमोशन आफ् टेकनिकल एजुकेशन) के नामसे एक पृथक् संस्था स्थापित की। इस संस्थाने 'बेङ्गाल टेकनिकल-इन्स्टिट्यूट' के नामसे एक अलग कालेज खोला। यह १९०६ ईसवीकी बात है। चार वर्ष तक ये दोनों संस्थाएँ (वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद और शिल्प-विज्ञान-शिक्षा

सहायक समिति) और इनकी अधीनतामें चलनेवाले कालेज और स्कूल अलग अलग चलते रहे । सन् १९१० में दोनोंके अधिकारियोंके बीच समझौता होकर शिल्पविज्ञान शिक्षा सहायक समिति, वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा समितिमें मिला दी गई, और 'बेङ्गालटेकनिकल-इन्स्टिट्यूट' शेषोक्त समितिका एक अङ्ग हो गई । आगे चलकर पालित महाशयका अन्य कार्यकर्ताओंके साथ फिर मतभेद हुआ और वे इससे बिलकुल अलग होगये । उनकी विशेष सहायतासे कलकत्ता विश्व-विद्यालयने सुप्रसिद्ध साइन्स कालेजकी स्थापना की ।

जबतक वङ्गालके दोनों टुकड़े मिलाये नहीं गये तब तक राजनैतिक आन्दोलन ज़ोरोंपर रहा । राष्ट्रीय स्कूलोंमें विद्यार्थियोंकी संख्या भी उस समय तक बहुत रही । किन्तु ज्यों ज्यों राजनैतिक आन्दोलन शिथिल पड़ता गया त्यों त्यों इन विद्यालयोंकी अवस्था ख़राब होती गई । सरकारने भी हर तरहसे इन्हें तबाह करना शुरू किया । नतीजा यह हुआ कि 'बेङ्गाल टेकनिकल इन्स्टिट्यूट' को छोड़कर कलकत्तेका कालेज और स्कूल बन्द हो गये । वङ्गालके अन्य राष्ट्रीय स्कूल भी बन्द होने लगे । टेकनिकल इन्स्टिट्यूट चलता रहा पर उसके विद्यार्थियोंकी संख्या भी घटने लगी । लेकिन इसी समय इसकी अवस्था सुधारनेके लिये बहुत कोशिश की गई और इसमें फिर विद्यार्थी बढ़ने लगे । असहयोग आन्दोलनने इसे और बल दिया । अब तो यह इन्स्टिट्यूट अपने तरहके विद्यालयोंमें प्रथम श्रेणीका

गिना जाता है। आरम्भमें जो बड़ी बड़ी रक़में या जागीरें परिषद्को मिली थीं उनके अतिरिक्त एक बहुत बड़ी रक़म उसे सर राशबिहारी घोषकी वसीयतसे मिली। उन्होंने अपने वसीयतनामेमें यह लिखा था कि मेरा सारा लहना पावना साफ़ करके जो रक़म बचे वह 'वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्' को मिले। परिषद्को इसके मुताबिक लगभग १५ लाख रुपये मिले। इससे परिषद्ने कलकत्तेके समीप जादवपुरमें १०० बीघे ज़मीन पट्टेपर लेकर अपना काम बढ़ाया। 'बेङ्गाल टेकनिकल इन्स्टिट्यूट' जिसका नाम बदलकर अब 'कालेज आफ़ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी, बेङ्गाल' रक्खा गया है—इसी स्थानपर है।

परिषद्का वर्तमान कार्यक्रम दो भागोंमें विभक्त है—एक टेकनिकल विभाग और दूसरा साधारण विभाग। इन दोनों विभागोंके प्रबन्धके लिये दो प्रबन्ध समितियाँ हैं जो परिषद्की कार्यकारिणी समितिकी मातहतीमें अपने अपने विभागका प्रबन्ध करती हैं। टेकनिकल विभागकी प्रबन्ध समिति 'कालेज आफ़ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी, बेङ्गाल' का प्रबन्ध करती है और साधारण विभागकी प्रबन्ध समिति अन्य सब कार्योंकी देखभाल करती है।

'बेङ्गाल टेकनिकल इन्स्टिट्यूट' की स्थापना सन् १९०६ ईसवीमें हुई थी। सन् १९१० से यह नैशनल कौंसिल आफ़ एजुकेशनके साथ मिला दिया गया और उसीके द्वारा इसका प्रबन्ध होने लगा।

सन् १९२२ में इसके लिये सियालदहसे ५ मीलकी दूरीपर जादवपुरमें १०० बीघे ज़मीन ९९ वर्षके पट्टेपर कलकत्ता कारपोरेशनसे ली गई। इसका माहवार किराया २१० रुपया है। इसी ज़मीनपर लगभग ८ लाखकी लागतसे मकान और लेबोरेटरि आदि बनवाये गये और यह इन्स्टिट्यूट उसमें लाया गया। सन् १९२९ से इस इन्स्टिट्यूटका नाम 'कालेज आफ़ इञ्जिनीयरिङ्ग एण्ड टेकनोलाजी, बेङ्गाल' रक्खा गया है। इसका पाठ्यक्रम इन चार भागोंमें विभक्त है।

(१) सेकण्डरी विभाग इञ्जिनीयरिङ्ग कोर्स—इसके अन्तर्गत (क) मेकेनिकल (ख) इलेक्ट्रिकल और (ग) केमिकल इञ्जिनीयरिङ्गके कालेज हैं। प्रत्येकका पाठ्यक्रम ४ वर्षोंका है।

(२) जूनियर टेकनिकल कोर्स—इसके अन्तर्गत (क) मेकेनिकल और (ख) इलेक्ट्रिकल इञ्जिनीयरिङ्गकी क्लासें होती हैं जिनका पाठ्यक्रम तीन तीन वर्षोंका है।

(३) सर्वे और ड्राफ़्टका काम-इसका पाठ्यक्रम दो वर्षोंका है।

(४) कारख़ानोंकी अप्रेण्टिसी—इसकी भी अवधि दो वर्षोंकी है।

कालेजकी शिक्षा उच्च कोटिके अध्यापकोंके हाथमें है। आजकल इनमेंसे सात अमेरिका और जरमनीके अच्छे अच्छे विश्वविद्यालयोंके ग्रेजुएट हैं और कुछ कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा इस कालेजके अच्छे

ग्रैजुएट हैं। यहाँकी शिक्षा ऊँचे दर्जेकी होती है। 'सिटी एण्ड गिल्ड्स आफ़ लण्डन इन्स्टिट्यूट परीक्षा' के अधिकारियोंने यह नियम कर दिया है कि इस कालेजके विद्यार्थी, उसकी मेकेनिकल और इलेक्ट्रिकल इञ्जीनियरिङ्गकी द्वितीय ग्रेड परीक्षामें प्रथम ग्रेड परीक्षा पास किये बिना ही बैठ सकते हैं। सन् १९२८ में इस कालेजके १९ विद्यार्थियोंने उपरोक्त परीक्षा पास की जिनमेंसे ७ को अच्छे नम्बरोंके लिये पदक भी मिले। 'यूनिवर्सिटी आफ एडिनवर्ग' ने भी इस कालेजकी परीक्षाओंको स्वीकार किया है। आजकल कालेजमें विद्यार्थियोंकी संख्या ६०० है। छात्रावासमें ९५ विद्यार्थियोंके लिये स्थान है। विद्यार्थियोंके लिये हाकी फुटबाल क्रिकेट आदि खेलोंका प्रबन्ध है। धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। शिक्षाशुल्क सेकण्डरी विभाग टेकनिकल कोर्सके लिये ८ रुपये, जूनियर टेकनिकल कोर्सके लिये ६ रुपये और अन्य विभागोंके लिये ५ रुपये मासिक है। कुछ योग्य विद्यार्थियोंका शुल्क माफ़ भी कर दिया जाता है और कुछ छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती हैं। सन् १९२८ से कालेजकी ओरसे अँगरेज़ी और बँगलामें एक त्रैमासिक पत्रिका निकल रही है।

साधारण विभागके द्वारा होने वाले कार्योंमेंसे मुख्य मुख्य ये हैं—

(१) राष्ट्रीय पाठशालाओंको सम्बद्ध करना, उनका पाठ्यक्रम निश्चित करना, परीक्षाएँ लेना और उनकी आर्थिक सहायता करना।

(२) दर्शन और इतिहास विषयक गवेषणापूर्ण पुस्तकें लिखवाना।

(३) सार्वजनिक व्याख्यानोंका प्रवन्ध करना और पुस्तकें प्रकाशित करना।

आजकल प्रत्यक्ष रूपसे परिषद्‌के सञ्चालनमें कोई स्कूल नहीं है। सन् १९२८ में बङ्गालके १४ राष्ट्रीय स्कूल इससे सम्बद्ध थे और परिषद्‌ने इन्हें ३ हज़ारसे कुछ अधिक रुपयोंकी सहायता दी थी। परिषद्‌से विद्यालयोंके संबद्ध किये जानेके नियम ये हैं—

(१) विद्यालयमें साहित्यिक और वैज्ञानिक शिक्षाके अतिरिक्त नीचे लिखे विषयोंमेंसे किसी एक की शिक्षाका प्रवन्ध होना आवश्यक है—बाग़बानी, डेरी, कताई बुनाई, सिलाई, बढ़ईगीरी और लुहारी, सर्वे और ड्राफ़्टका काम, सहकारी दूकानोंका काम, और बही खाता तथा व्यापारिक पत्रव्यवहार। इन विषयोंमें परीक्षा नहीं ली जायगी लेकिन यह देखा जायगा कि विद्यार्थी परिषद् द्वारा निर्धारित प्रतिशत दिनों तक क्लासमें गया था या नहीं?

(२) शिक्षाका माध्यम बँगला भाषा होनी चाहिये। अँगरेज़ी केवल द्वितीय भाषाके तौर पर पढ़ाई जाय।

(३) पाठ्यक्रम, आद्यमान, मध्यमान और अन्त्यमान इन तीन भागोंमें विभक्त रहेगा।

(४) मध्यमानकी शिक्षा समाप्त करने पर यदि विद्यार्थीकी रुचि अन्त्यमानकी शिक्षा लेनेकी न हो तो उसके लिये विशेष औद्योगिक शिक्षाका प्रबन्ध किया जाय। किन्तु ऐसे विद्यार्थियोंके लिये इतिहास और अर्थशास्त्रके साधारण व्याख्यान कराये जायँ। ये व्याख्यान भारतीय दृष्टिकोणसे हों और भारतवर्षकी स्थिति पर विशेष रूपसे विचार किया जाय।

(५) शारीरिक व्यायाम और खेलमें शरीक होना विद्यार्थियोंके लिये अनिवार्य हो।

(६) सप्ताहमें कमसे कम दो बार धार्मिक और नैतिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध रहे।

(७) समाज-सेवाके कार्योंमें विद्यार्थियोंको व्यावहारिक शिक्षा दी जाय।

(८) विद्यालयमें एक अच्छा पुस्तकालय होना चाहिये।

आद्यमान, मध्यमान और अन्त्यमानका पाठ्यक्रम तीन तीन वर्षोंका है। किन्तु आद्यमानमें प्रवेश करनेके पहिले विद्यार्थीको एक वर्ष तक प्रारम्भिक शिक्षा मिलनी चाहिये। तीनों मानोंके लिये निम्नलिखित विषय निर्धारित हैं—

(१) आद्यमान—बँगला, अङ्कगणित, चित्रकारी, वस्तुपाठ और दस्तकारी, अँगरेज़ी, कहानी और कविता पाठ, विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान।

(२) मध्यमान—संस्कृत, वँगला, अँगरेज़ी, इतिहास भूगोल, गणित, विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान, चित्रकारी और औद्योगिक शिक्षा।

(३) अन्त्यमान—मध्यमानके ही विषय।

दर्शन और इतिहास विषयोंपर गवेषणापूर्ण पुस्तकें लिखवानेके लिये प्रबोधचन्द्र वसु मल्लिक और हेमचन्द्र वसु मल्लिकके नामपर दो गद्दियाँ, क़रीब क़रीब परिषद्की स्थापनाके समयसे ही क़ायम हैं। इन्हींके द्वारा पुस्तकें लिखी जाती हैं।

कलकत्ता और जादवपुरमें भिन्न भिन्न विषयोंपर विद्वानोंके व्याख्यान करानेके लिये एक अलग विभाग है। इसी विभागके द्वारा उन सब पुस्तकोंका प्रकाशन भी होता है जो उपरोक्त गद्दियों द्वारा तैयार कराई जाती हैं। अभी तक श्रीकालीप्रसन्नदास गुप्तका 'हिन्दूसमाज विज्ञान' और श्री विनयकुमार सरकारका 'हिन्दू राष्ट्रेर गड़न' ये दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। श्रीप्रमथनाथ मुकर्जीकी 'इतिहासेर अभिव्यक्ति' नामक पुस्तककी पहली जिल्द छप रही है। अन्य पुस्तकें लिखी जा रही हैं।

परिषद्के पास एक अच्छा पुस्तकालय है जिसमें आजकल लगभग २१००० रुपयोंकी ६२८० पुस्तकें हैं।

परिषद्ने कृषि-सम्बन्धी शिक्षाकी एक योजना तैयार कर ली है। १ लाख रुपयेकी एक स्थायी निधि भी इसे इसी कार्यके लिये

मिल चुकी है। कलकत्ता कारपोरेशनसे १०० बीघे ज़मीन और प्राप्त करनेके सम्बन्धमें एक दरख़्वास्त दी गई है। ज़मीन मिल जाने पर कृषि सम्बन्धी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया जायगा। आजकल परिषद उस निधिसे, श्रीनिकेतन-विश्वभारतीके कृषि विभागको और चिन्सुराके कृषि विद्यालयको सहायता दे रही है।

चौदहवाँ अध्याय।

बिहार विद्यापीठ, पटना।

बिहारमें एक राष्ट्रीय कालेज खोलनेका विचार असहयोग आन्दोलन आरम्भ होनेके बहुत पहिलेसे हो किया जा रहा था। सन् १९१७ ईसवीमें चम्पारनकी जाँचके सम्बन्धमें महात्मा गान्धी वहाँ गये थे। उस समय अनेकों वकील थोड़े दिनोंके लिये अपनी अपनी वकालत छोड़कर उनके साथ काम करनेके लिये तत्पर हो गये थे। उसी समय इस बातका अनुभव हुआ कि जब स्वाधीनता की लड़ाई दीर्घकाल तक चलने वाली है, तब ऐसे लोगोंकी बहुत आवश्यकता है जो स्थायीरूपसे इस कार्यमें योग दे सकें। ऐसे कार्यकर्ता राष्ट्रीय कालेजसे हो तैयार हो सकते थे। अतएव इस कार्यके लिये रुपया इकट्ठा किया जाने लगा, और एक कालेज खोलनेके लिये क़रीब क़रीब सब तैयारी हो गई। किन्तु रौलेट एक्टके पास होने, सत्याग्रह आरम्भ होने तथा जलियाँवाला बाग़के हत्याकाण्डके कारण, कार्यकर्ताओंका ध्यान कुछ कालके लिये

दूसरी ओर बट गया। असहयोग आन्दोलनके चलनेसे राष्ट्रीय कालेजोंकी स्थापनाके लिये उपयुक्त वातावरण तैयार हुआ। पटनेमें महाविद्यालयका कार्य तो तारीख़ १० जनवरी सन् १९२१ को ही आरम्भ होगया। पर इसका विधिपूर्वक उद्घाटन तारीख़ ६ फ़रवरीको महात्मा गान्धीके द्वारा हुआ। महात्माजीकी राय तथा प्रेरणासे विहार प्रान्तके सब राष्ट्रीय विद्यालयोंको एक सूत्रमें बाँधने तथा उनका नियन्त्रण और पथप्रदर्शन करनेके लिये, विहार विद्यापीठकी नींव भी उसी दिन डाली गई।

विद्यापीठके पास कोई निधि या सञ्चित कोष नहीं है। आरम्भसे ही इसका काम चन्देसे चलता आ रहा है। आरम्भमें समय समयपर 'आल इण्डिया काँग्रेस कमेटी' और प्रान्तीय काँग्रेस कमेटीसे भी कुछ सहायता मिल जाया करती थी। पटनेमें विद्यापीठके पास ७ बीघे ज़मीन है जो लगभग ८ हज़ार में ख़रीदी गई थी, और जिसपर लगभग २८ हज़ारकी लागतसे इमारतें बनवाई गई हैं। पटनेके बाहर भी कुछ सज्जनोंने खेतीके योग्य ज़मीन दी है, किन्तु अभी तक उन ज़मीनोंका ऐसा बन्दोवस्त नहीं हो सका है कि उनसे विद्यापीठको कुछ आय हो सके। आजकल विद्यापीठका वार्षिक ख़र्च लगभग १२ हज़ार रुपये है।

आरम्भके दो वर्षोंमें देशकी राजनैतिक हलचलोंके कारण विद्यापीठकी शिक्षासम्बन्धी योजनापर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सका।

अधिकतर समय और शक्ति असहयोग आन्दोलनमें ही ख़र्च होती रही। सन् १९२३ से शिक्षासम्बन्धी कार्यक्रमको पूरा करनेपर जोर दिया गया। विचार तो यह भी था कि यहाँसे हिन्दी भाषामें उच्च कोटिके ग्रन्थ भी प्रकाशित किये जायँ। पर अर्थाभावसे यह काम आजतक शुरू न किया जा सका। आरम्भमें साधारण स्कूल और कालेजके साथ साथ विद्यापीठमें एक औद्योगिक स्कूल भी खोला गया। उद्देश्य यह था कि यहाँसे निकलनेवाले विद्यार्थी अपनी जीविकाके सम्बन्धमें स्वावलम्बी हो सकें। पर इस ओर विद्या-र्थियोंका झुकाव न होने एवम् अर्थाभावके कारण यह स्कूल बन्द कर देना पड़ा। इतने दिनोंके अनुभव एवम् देशकी आवश्यकताओंका ख़याल करके विद्यापीठके कार्यक्रममें कई तबदीलियाँ की गईं और पिछले दो वर्षोंसे सुचारुरूपसे नये सङ्गठनके द्वारा काम हो रहा है। सङ्कल्पपत्रमें विद्यापीठके उद्देश्य इस प्रकार बतलाये गये हैं—

(क) भारतकी विशिष्ट संस्कृति और विद्याओंका पुनरुद्धार और विकास करना।

(ख) विश्वके प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञानकी वृद्धि और उनका प्रचार करना।

(ग) भारतकी राष्ट्रीय परिस्थिति और जीवनके अनुकूल शिक्षा प्रदान करना।

(घ) भारतकी सर्वाङ्गीण उन्नतिके लिये योग्य कार्य्यकर्ताओंका सङ्गठन करना तथा योग्य सेवकोंको तैयार करना।

(ङ) लोकसेवा करना।

(च) विश्व-बन्धुत्वके भावोंके प्रचारमें सहायता प्रदान करना।

इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये विद्यापीठ निम्नलिखित कार्य्य करेगा—

(क) उपर्युक्त उद्देश्योंको माननेवाली ऐसी संस्थाओंका स्थापन करना, कराना, सम्मिलित करना, चलाना और सहायता देना जो स्वावलम्बनके सिद्धान्तपर प्रतिष्ठित होकर किसी समय किसी गवर्नमेण्टसे सहायता न लें और न उसके अधीन हों।

(ख) योग्य विद्यार्थियोंको उपाधि प्रदान करना तथा प्रमाण-पत्र देना—

(ङ) छात्रावास, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, व्यायामशाला, शिल्पागार कृषिक्षेत्र और औषधालय आदिका स्थापन और सञ्चालन करना।

(च) उपर्युक्त उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये आवश्यक ग्रन्थोंकी रचना कराना और उनका प्रकाशन करना।

इस संस्थाकी विशेषताएँ इस प्रकार गिनाई जा सकती हैं—

(१) शिक्षाका माध्यम मातृभाषा है—

(२) इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि लड़कोंके मस्तिष्क

व्यर्थ और अनावश्यक बातोंसे न भर जायँ, वार्तालाप जिज्ञासा, निरीक्षण आदि उपायोंसे ही उनका मानस विकास और उनकी ज्ञानवृद्धि हो।

(३) चरित्र गठनपर अधिक ध्यान दिया जाता है और उन्हें स्वावलम्बी होनेकी शिक्षा दी जाती है।

(४) विद्यार्थियोंको हर तरहसे भविष्यमें राष्ट्रके सच्चे सिपाही बनानेकी कोशिश की जाती है।

(५) इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि सब विद्यालय आश्रमके ढँगपर चलाये जायँ; शिक्षक और छात्र एक साथ रहें जिससे शिक्षक अपने आचरणके उदाहरणसे विद्यार्थियोंके चरित्र निर्माणपर प्रभाव डाल सकें।

विद्यापीठका पाठ्यक्रम तीन भागोंमें बांटा जा सकता है— प्रारम्भिक विद्यालय, माध्यमिक विद्यालय और महाविद्यालय। प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयोंकी शिक्षा चार चार वर्षोंमें समाप्त होती है और महाविद्यालयकी तीन वर्षोंमें। प्रारम्भिक विद्यालयमें हिन्दी, गणित, चित्रकारी, दस्तकारी, भूगोल और इतिहास—ये विषय पढ़ाये जाते हैं। इनके सिवाय देशभ्रमण, साधारण कृषिकार्य और प्रकृतिनिरीक्षणके द्वारा विद्यार्थियोंकी ज्ञानवृद्धि करनेका प्रयत्न किया जाता है। माध्यमिक विद्यालयकी ४ श्रेणियोंकी शिक्षा दो भागोंमें विभक्त है। प्रथम दो श्रेणियोंमें

प्राथमिक विद्यालयके सब विषयोंके अतिरिक्त अँगरेज़ी अनिवार्य-रूपसे और संस्कृत या अरबीमेंसे कोई एक विषय लेना पड़ता है। अन्तिम दो श्रेणियोंकी परीक्षा प्रवेशिका परीक्षा कहलाती है और उसके लिये निम्नलिखित विषयोंकी शिक्षा अनिवार्य है—हिन्दी, अँगरेज़ी, भारतीय शासन, राजनीति और अर्थनीति, तथा संस्कृत। इनके अतिरिक्त नीचे लिखे विषयोंमेंसे कोई एक लेना होता है—गणित, भूगोल, कृषिशास्त्र, व्यापार और बहीखाता, और विज्ञान।

महाविद्यालय दो खण्डोंमें विभक्त है। एकके द्वारा राष्ट्रीय विद्यालयोंके लिये अध्यापक तैयार किये जाते हैं और दूसरेके द्वारा ग्राम सङ्गठनके लिये कार्यकर्ता। हिन्दी और अँगरेज़ीकी शिक्षा दोनों ही विभागोंमें तीनों वर्षों तक अनिवार्य रूपसे दी जाती है। इसके अतिरिक्त शिक्षक विभागके विद्यार्थी गणित, संस्कृत अथवा इतिहास अर्थशास्त्र राजनीति इन विषयोंमेंसे कोई एक विषय लेते हैं। ग्राम सङ्गठन विभागके विद्यार्थियोंको अनिवार्य रूपसे इतिहास अर्थ शास्त्र और राजनीति ही लेना पड़ता है। इनके लिये शिक्षक विभाग-की अपेक्षा अर्थशास्त्रका कोर्स कुछ कुछ भारी और इतिहासका कुछ हलका होता है। दोनों ही विभागोंके विद्यार्थी अध्यापकोंके साथ प्रतिवर्ष दो महीनेके लिये गाँवोंमें भेजे जाते हैं। उद्देश्य यह है कि वे ग्राम्यजीवनका परिचय प्राप्त करें और गाँववालोंके जीवनमें कुछ सुधार करनेका प्रयत्न करें।

विद्यार्थियोंसे शिक्षा अथवा छात्रावासमें रहनेके लिये कोई शुल्क नहीं लिया जाता। छात्रवासके भोजनालयका खर्च लगभग ८ रुपये मासिक पड़ता है। जात पाँत या छुआछूतका भेदभाव नहीं माना जाता। कुछ योग्य विद्यार्थियोंको छात्रवृत्ति भी दी जाती है। किन्तु यह छात्रवृत्ति महाविद्यालयके विद्यार्थीको इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेपर ही मिलती है कि शिक्षा समाप्त करनेपर यदि विद्यापीठ चाहे तो तीन वर्षों तक उसे निर्वाह मात्रके लिये २५ रुपये मासिक देकर किसी काममें लगा सकेगा। विद्यार्थियोंके लिये शुद्ध खादीके वस्त्र पहिनना और प्रतिवर्ष अपने हाथका कता हुआ २० हज़ार गज सूत विद्यापीठको देना अनिवार्य है।

प्रत्यक्ष रूपसे विद्यापीठके सञ्चालनमें पटनेमें एक प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालय तथा एक महाविद्यालय हैं। विद्यार्थियोंकी संख्या शेषोक्तमें ११ और प्रथमोक्तमें ५० है। इनके अतिरिक्त बिहार प्रान्तके २१ राष्ट्रीय विद्यालय भी विद्यापीठसे सम्बद्ध हैं, जिन सबके विद्यार्थियोंकी संख्या सन् १९२९ में लगभग १२५० थी। सन् १९२२ के जून महीनेमें बिहार प्रान्तमें राष्ट्रीय हाइस्कूलोंकी संख्या ४१ और प्राइमरी तथा मिडिल स्कूलोंकी लगभग ६०० थी जिनमें १७००० विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे।

विद्यापीठने एक आयुर्वेद विभाग भी खोलनेका निश्चय किया है। भारत राष्ट्रके आधार, ग्रामोंमें औषधोपचारकी बड़ी कमी है।

उनके लिये ऐसे वैद्य डॉक्टरोंकी बड़ी जरूरत है जो सेवाके भावसे वहाँ जाकर बैठें और जीवन निर्वाहमात्र वृत्तिसे सन्तुष्ट होकर दीन दुखियोंकी सहायता करें। इस प्रकारके वैद्य तैयार करनेकी नीयतसे ही विद्यापीठने आयुर्वेद विभाग खोलना उचित समझा है। विद्यापीठका एक दूसरा उद्देश्य यह भी है कि इसके द्वारा उसे ग्राम सुधारके कामोंमें सहायता मिले। विद्यापीठके छात्रोंको ग्रामोंमें ही जाकर बैठना है। वहाँ सदा विभिन्न रोगों तथा संक्रामक बीमारियोंके पीड़ितोंसे उनका सम्पर्क होगा; उनकी सेवा शुश्रूषा, और दवा दारूका प्रबन्ध कराना उनका आवश्यक कर्तव्य हो जायगा। इसलिये यदि वे स्वयं भी इस विषयका कुछ ज्ञान रखें तथा यदि उन्हें जरूरी दवाइयाँ अवस्थाके मोताबिक मुफ़्त या लागत क़ीमतपर मिल सकें तो पीड़ित जनताका उपकार भी होगा और उन सेवकोंके उद्देश्योंकी पूर्तिमें भी मदद मिलेगी। इस विभागके खोलनेका बहुत दिनोंसे विचार था पर द्रव्याभावके कारण उसका कार्य रूपमें परिणत किया जाना कठिन हो रहा था। इस कठिनाईको वेगूसरायके बाबू मुसाहबलालने दूर कर दिया। आप इस कामके लिये खुशीसे ढाई हजार रुपये देनेको तैयार होगये जिसमेंसे एक हजार आठ सौ तो वसूल भी हो चुके हैं। इस रक़मकी मददसे विद्यापीठमें दवाइयाँ बनना शुरू हो गई हैं, और जैसे ही पाठ्यक्रम आदिका निर्धारण हो जायगा तथा अन्य आवश्यक उपकरणोंका संग्रह हो

जायगा, विद्यालय विभाग भी खोल दिया जायगा। बाबू मुसाहब लालकी दयालुताकी स्मृति बनाये रखनेके लिये विद्यापीठने एक मुफ़्त दवाखानेका भी प्रबन्ध किया है और उक्त बाबू साहबके नाम-पर उसका नाम श्रीमुसाहबलाल मुफ़्त दवाखाना रखा है। इसमें आने वाले सब रोगियोंको मुफ़्त दवा दी जाती है।

सन् १९२९ के आरम्भ तक विद्यापीठसे ६२ स्नातक निकल चुके थे। इनमेंसे १४ के सम्बन्धमें निश्चित रूपसे नहीं मालूम कि वे इस समय किस कार्यमें लगे हैं। शेष ४८ में से १९ राष्ट्रीय विद्या-लयोंमें अध्यापन कार्य कर रहे हैं, २ विशेष अध्ययनमें लगे हैं, ८ पत्र सम्पादनका कार्य कर रहे हैं, ५ खादी कार्यमें और १ ग्राम सङ्गठनके काममें लगे हैं, १२ कृषि-व्यापार आदि स्वतंत्र पेशोंसे जीविकोपार्जन करते हैं और १ किसी अन्य संस्थाकी नौकरीमें हैं।

पन्द्रहवाँ अध्याय।

महाविद्यालय, ज्वालापुर।

इस महाविद्यालयकी स्थापना संवत् १९६४ विक्रमीमें हुई थी। ब्रह्मचर्याश्रमकी प्रणालीको पुनरुज्जीवित करना और महर्षि दयानन्द सरस्वतीकी निर्दिष्ट की हुई रीतिसे आर्यभाषा और संस्कृत आदि भाषाओंका निःशुल्क अध्ययन कराना इस महाविद्यालयका ध्येय है। यह किसी आर्यसमाजके आधीन नहीं है वरन् इसके प्रवन्धके लिये एक अलग महासभा है। विद्यार्थियोंसे न तो शिक्षाके लिये ही कोई शुल्क लिया जाता है और न उनके भरणपोषणके लिये ही उनसे किसी प्रकारका व्यय लिया जाता है। किन्तु 'स्नातक व उनके कर्तव्य'-सम्बन्धी नियमोंमें लिखा गया है कि 'प्रत्येक स्नातकका कर्तव्य है कि स्नातक होनेके पश्चात् कमसे कम दो वर्ष महाविद्यालयकी सेवा करे। उसकी सर्व दशाओंपर विचार कर प्रबन्ध सभा उसके निर्वाहमात्रका प्रवन्ध करेगी।' महाविद्यालयमें प्रविष्ट होनेके उपरान्त किसी अत्यावश्यक कार्यके बिना ब्रह्मचारियोंको घर जाने-

की अनुमति नहीं मिलती। महाविद्यालयमें केवल द्विज कहलानेवाली जातियोंके बालक ही प्रविष्ट हो सकते हैं, शूद्रों और अछूतोंके नहीं।

इस महाविद्यालयका पाठ्यक्रम १२ वर्षोंका रक्खा गया है। प्रथम पाँच वर्षोंमें वेदपाठ, संस्कृत-साहित्य, धर्मशिक्षा, गणित, आर्य भाषा (हिन्दी) तथा इतिहास और भूगोलकी शिक्षा दी जाती है। इतिहास भूगोलकी शिक्षा द्वितीय श्रेणीसे आरम्भ होती है। छठवींसे दशवीं श्रेणियों तक वेदपाठ, संस्कृत साहित्य और व्याकरण, दर्शन और अंगरेज़ीकी पढ़ाई होती है। इसके अतिरिक्त छठवीं तक गणित, सातवीं तक भूगोल और इतिहास, नवींतक धर्मशिक्षा और हिन्दी तथा दसवींमें उपनिषद्की पढ़ाई भी होती है। ग्यारहवीं और बारहवीं श्रेणियोंमें वेद, संस्कृत साहित्य, उपनिषद और दर्शन शास्त्रकी शिक्षा दी जाती है। इस महाविद्यालयके स्नातक तीन प्रकारके होते हैं—विद्या स्नातक, व्रत स्नातक और विद्याव्रत स्नातक। कौन ब्रह्मचारी किस कोटिका है इसका निर्णय महाविद्यालयकी विद्यासभा करती है।

सन् १९२९ के आरम्भमें महाविद्यालयमें विद्यार्थियोंको संख्या १६० थी। आज तक ७३ स्नातक निकल चुके हैं। इनमेंसे ८ विशेष अध्ययनमें लगे हैं, ३० अध्यापक हैं, ४ महोपदेशक हैं, ७ सार्वजनिक सामाजिक कार्योंमें लगे हैं और शेष २४ भिन्न भिन्न स्वतंत्र पेशोंसे जीविकोपार्जन कर रहे हैं।

सोलहवाँ अध्याय ।

विश्वभारती, शान्तिनिकेतन ।

विश्वभारतीको आज एशियाकी समस्त सभ्यताओंका केन्द्र और पूर्व और पश्चिमका मिलनमन्दिर बनानेका प्रयत्न किया जा रहा है। किन्तु इसका आरम्भ एक छोटे विद्यालयसे हुआ था। जो स्थान आज शान्तिनिकेतनके नामसे प्रसिद्ध है वह पहले एक ऊसर ज़मीन थी। एक दिन महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर उधरसे निकले। दो सप्तपर्णी वृत्तोंकी शोभा देखकर उनका चित्त इतना प्रसन्न हुआ कि उन्हींके नीचे अपनी रावटी लगाकर कुछ समयतक उपासना करते रहे। ये दोनों वृत्त आजतक मौजूद हैं। जिस स्थानपर बैठकर महर्षि उपासना कर रहे थे वहाँ एक सङ्गमरमरका चबूतरा बनवा दिया गया है और उसपर महर्षिकी उपासनाका प्रिय मन्त्र

तिनि
आमार प्राणेर आरामः
मनेर आनन्दः
आत्मार शान्ति

अङ्कित है। इस स्थानने महर्षिको इतना आकर्षित किया कि वहाँ उन्होंने बाग़ लगवाए, और एक मकान और मन्दिर बनवाया। आगे चलकर उसके साथ छः हज़ार वार्षिक आयकी सम्पत्ति लगाकर एक आश्रमके रूपमें उसका ट्रस्ट कर दिया। तबसे यह धर्म और जातिका भेदभाव न मानते हुए ईश्वरकी उपासना करने-वालों के लिये शान्तिनिकेतन हो गया। इसके ३० वरस बाद दिसम्बर सन् १६०१ ईसवीमें कविवर रवीन्द्रनाथने यहाँ एक विद्यालयकी स्थापना की। देश में उस समय जो शिक्षाप्रणाली प्रचलित थी—और जो आज भी बहुत कुछ उसी रूपमें प्रचलित है—उसके घातक परिणाम उनके चित्तको बहुत दिनोंसे व्यग्र कर रहे थे। विद्यालयोंकी अस्वाभाविक पद्धति बालकोंकी शक्तिको प्रस्फुटित करनेके बजाय उन्हें कुण्ठित करती है। उनके भीतर ज्ञानकी जो पिपासा है, उसे तृप्त करनेके बजाय उनके ऊपर ऐसी चीज़ें लादी जाती हैं जिनके लिये उनके भीतर कोई रुचि ही नहीं है। अध्यापनके विषयोंको विद्यार्थी चावके साथ ग्रहण करनेके बजाय उनसे भागते रहते हैं। अध्यापकको देखकर ही उनपर एक आतङ्क सा छा जाता है। इसके अतिरिक्त शिक्षाका दैनिक जीवनसे तो कोई सम्बन्ध ही नहीं है। शिक्षाका माध्यम है विदेशी भाषा और उसमें अपने साहित्य अथवा अपनी परम्पराको कोई स्थान ही नहीं मिलने पाता। इन सारी बुराइयोंको दूर करते हुए प्राचीन भारतीय प्रणालीसे

वर्तमान परिस्थितिके अनुकूल शिक्षा देनेके अभिप्रायसे उन्होंने यह विद्यालय खोला।

इसके बाद बङ्गभङ्गके कारण राजनैतिक आन्दोलनने ज़ोर पकड़ा। राष्ट्रीय विद्यालयोंको भी स्थापना होने लगी। कविवर स्वयम् तो इस आन्दोलनमें भाग ले रहे थे, पर शान्तिनिकेतनको उससे बिलकुल अलग रक्खा। बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद्की स्थापना होनेपर शान्तिनिकेतनको उससे सम्बद्ध करनेको भी चर्चा चली थी, पर कुछ हुआ नहीं।

धीरे धीरे विद्यालय उन्नति करता गया। सन् १९१८ में कविवरने शान्तिनिकेतनमें विद्यालयके साथ साथ एक ऐसी संस्था भी स्थापित करना चाहा जो पूर्वीय देशोंकी सभ्यताका केन्द्र हो। सन् १९१९ से वैदिक साहित्य, प्राचीन संस्कृत साहित्य, अरबी, बौद्ध साहित्य, पाली प्राकृत आदिके अध्ययनकी व्यवस्था की गई। आगे चलकर तिब्बती और चीनी भाषाओंके अध्ययनका भी प्रवन्ध किया गया। साहित्यिक शिक्षाके साथ साथ चित्रकला और सङ्गीत-कलाकी भी शिक्षाका प्रवन्ध किया गया। आगे चलकर सन् १९२०—२१ में यूरोपके देशोंका भ्रमण करके उन्हें एक ऐसा स्थल तैयार करनेकी भी आवश्यकता प्रतीत हुई जो पूर्व और पश्चिमका मिलन स्थल हो। इन सब उद्देश्योंको लेकर २२ दिसम्बर सन् १९२१ ईसवीको विश्वभारतीकी स्थापना हुई।

ग्राम्यजीवनमें सुधार करनेके उद्देश्यसे १९१३ ईसवीमें ही

शान्तिनिकेतनसे लगभग डेढ़ मीलकी दूरीपर सुरूल नामक स्थान-में ८० बीघे ज़मीन लेकर काम शुरू किया गया था। सन् १९२२ से अधिक आर्थिक सहायता मिलनेपर यह काम और भी अधिक बढ़ाया गया। इन सब कार्योंका केन्द्र श्रीनिकेतन कहलाता है। विश्वभारतीके मुख्य उद्देश्योंमेंसे कुछ ये हैं—

१. मानव चित्तका अनुशीलन इस विचारसे करना जिससे मालूम हो कि मनुष्यने विविध दृष्टियोंसे सत्यके विभिन्न रूपोंका साक्षात्कार कैसे किया।

२. अनुशीलन और अनुसन्धान द्वारा, पूर्वकी विविध सभ्यताओंमें उनकी मौलिक एकताके आधारपर, सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना।

३. एशियाके जीवन तथा विचारकी इस एकताकी दृष्टिसे पाश्चात्यका निरीक्षण करना।

४. अध्ययनके परस्पर समागम द्वारा प्राच्य और पाश्चात्यके मिलनकी अनुभूतिका प्रयत्न करना और इस प्रकार दोनों अर्धगोलोंके बीच विचारोंके स्वच्छन्द आदान-प्रतिदानकी व्यवस्था कर, अन्ततः संसार शान्ति-की मौलिक अवस्थाओंको सुदृढ़ करना।

५. और इस आदर्शको सामने रखकर शान्तिनिकेतनमें संस्कृतिका एक ऐसा केन्द्र प्रतिष्ठित करना जहाँ पाश्चा-

त्य संस्कृतिके परिशीलनके साथ साथ हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई तथा अन्य संस्कृतियोंके धर्म, साहित्य, इतिहास, विज्ञान और कलाका अध्ययन और अन्वेषण उस बाहरी सादगीके साथ किया जावे जो सच्ची आध्यात्मिक अनुभूतिके लिये आवश्यक है। इस अध्ययन और अन्वेषणके कार्यके लिये यह भी आवश्यक है कि प्राच्य और पाश्चात्य देशोंके विद्वान् और विचारकोंके बीच मैत्री, सहयोग और सरल भाव हो तथा वे जातिगत, राष्ट्रगत, सम्प्रदायगत या वर्णगत विरोध और द्वेषसे मुक्त हों और इस कार्यको एक परमेश्वरके नामपर करें जो शान्त, शिव और अद्वैत है।

विश्वभारतीका कार्य शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन नामक दो संस्थाओंके बीच बँटा हुआ है। शान्तिनिकेतनके अन्तर्गत विद्याभवन, शिक्षाविभाग और कलाभवन हैं। श्रीनिकेतनमें कृषि और ग्रामसुधार सम्बन्धी प्रयोग और शिक्षाशालाएँ हैं। इनके अतिरिक्त कलकत्तेमें इसका एक छापाखाना, एक त्रैमासिक पत्रिका और एक पुस्तक प्रकाशन विभाग भी हैं।

विद्याभवनमें अच्छे अच्छे विद्वानों द्वारा पुरातत्व और खोज सम्बन्धी काम होते हैं। संस्कृत और प्राकृत भाषाओंमें खोज सम्बन्धी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। पूनेके भाण्डारकर इंस्टिट्यूटकी सहयो-

गितासे महाभारतका एक संस्करण प्रकाशित करनेका प्रयत्न हो रहा है। इसके अतिरिक्त चीनी और तिब्बती भाषाओंके द्वारा संस्कृत और प्राकृतके कई प्राचीन ग्रन्थोंका पता लगाया जा रहा है। संस्कृतके अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ अब भारतवर्षमें प्राप्य नहीं हैं, किन्तु तिब्बती और चीनी भाषाओंमें उनके अनुवाद अबतक मौजूद हैं। इस विभागके द्वारा इन ग्रन्थोंके पुनरुद्धारका प्रयत्न किया जा रहा है। इस विभागमें जिन विषयोंके खोज और विशेष अध्ययनका कार्य होता है उनमेंसे कुछ ये हैं—वैदिक और प्राचीन संस्कृत साहित्य, हिन्दू, जैन और बौद्ध दर्शन, इण्डोआर्यन भाषाविज्ञान, अवेस्ता, पाली, प्राकृत, मध्यकालीन हिन्दूसम्प्रदाय, धर्मोंका तुलनात्मक अध्ययन, फ़ारसी, अरबी और इसलाम धर्म। इस विभागमें इङ्गलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, नार्वे, इटली, हालैण्ड, ज़ेकोस्लोवेकिया, आस्ट्रिया, जावा और चीन आदि देशोंके विद्वान् आते रहते हैं।

शिक्षा विभागके अन्तर्गत स्कूल और कालेज हैं। इनका पाठ्यक्रम कलकत्ता-विश्वविद्यालयके अनुसार है। किन्तु चित्रकला, सङ्गीत और दस्तकारीकी भी शिक्षा दी जाती है। स्कूलकी प्रथम श्रेणीसे कालेजके बी० ए० क्लास तककी पढ़ाई होती है। ये स्कूल और कालेज कलकत्ता विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध तो नही हैं किन्तु स्वीकृत हैं। यहाँके विद्यार्थी उक्त विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंमें बैठ सकते हैं। अधिकतर विद्यार्थी उसीके लिये तैयार किये जाते हैं। विश्वभारती-

की ओरसे प्रमाणपत्र देनेके लिये भी परीक्षाएँ होती हैं। इन परीक्षाओंका पाठ्यक्रम भी कलकत्ता विश्वविद्यालयके ही समान है। यहाँ सह शिक्षणकी पद्धति है। लड़के और लड़कियाँ आरम्भिक श्रेणीसे अन्तिम श्रेणी तक साथ साथ पढ़ते हैं। वर्षके अधिकतर समयमें—जब कि वर्षा आदिकी असुविधा न हो कक्षाएँ वृक्षोंके नीचे ही होती हैं। अध्यापक और विद्यार्थी अपना अपना आसन अपने पास रखते हैं। बीचमें अध्यापक, उनकी एक ओर लड़कियाँ और दूसरी ओर लड़के बैठते हैं। साधारणतया एक कक्षामें १५ से अधिक विद्यार्थी नहीं रहने दिये जाते। प्रत्येक विद्यार्थीके लिये चित्रकारीकी शिक्षा आवश्यक है। जिनकी इच्छा हो वे सङ्गीत भी सीख सकते हैं। स्कूलके क्लासोंमें दस्तकारीकी शिक्षा भी आवश्यक है। पहिले तो उन्हें घरु औज़ारों और उन्हें इस्तेमाल करनेके तरीक़ोंसे परिचित कराया जाता है। बादको बढ़ईगीरी और बुनाई-की भी शिक्षा दी जाती है। विशेष रुचि रखने वाले विद्यार्थियोंको जिल्दबन्दी और लकड़ीका बारीक काम भी सिखलाया जाता है। लड़कियोंके लिये गार्हस्थ्य विज्ञान, सीना, पिरोना, क़सीदा, बाग़वानी और भोजन बनानेकी शिक्षाका भी प्रबन्ध है। बचपनसे ही प्रकृति निरीक्षणपर विशेष ज़ोर दिया जाता है। कुछ बड़े होनेपर इस बातकी भी कोशिश की जाती है कि वे ग्राम्य-जीवनसे परिचित हों। समीपके एक गाँवमें विद्यार्थियोंने एक रात्रि पाठशाला खोल रक्खी है। प्रति

दिन दो लड़के वहाँ पढ़ाने जाते हैं। सप्ताहमें दो दिन लड़कियाँ सीना पिरोना आदि सिखाने जाती हैं। कालेजके विद्यार्थियोंसे यह आशा की जाती है कि संसारके भिन्न भिन्न देशोंमें साधारण जनताकी सामाजिक अवस्था सुधारनेके जितने आन्दोलन चल रहे हैं उन सबका उन्हें ज्ञान रहे। उनसे अन्ताराष्ट्रिय संस्थाओंके कार्योंका अध्ययन करनेकी भी आशा की जाती है। कालेजमें इतिहास पढ़ाते समय इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि विद्यार्थियोंको केवल राजनैतिक घटनाओं और राजवंशोंके ही इतिहासका ज्ञान न हो वरन् वे प्रत्येक युगकी सभ्यता और उसके आदर्शोंको समझ सकें। भारतवर्षका संसारके अन्य देशोंसे क्या सम्बन्ध रहा है और संसारकी सभ्यताके निर्माणमें भारतवर्षका कितना हाथ रहा है—यह भी अध्ययनके लिये एक ख़ास विषय रक्खा गया है।

क्लासोंकी पढ़ाईकी अपेक्षा आश्रमके जीवनको अधिक महत्व दिया गया है। लड़कियोंका छात्रावास नारीभवन कहलाता है। स्कूलके १२ वर्षसे बड़ी उम्रके विद्यार्थी तथा कालेजके विद्यार्थी एक साथ रहते हैं। स्कूलमें पढ़ने वाले १२ बरस या इससे कम उम्रके लड़कोंका छात्रावास अलग है। छोटे बच्चोंके दैनिक जीवनका नियमन करनेपर विशेष ज़ोर दिया जाता है। आरम्भसे अन्त तक सभी श्रेणियोंके विद्यार्थियोंके लिये नियम भङ्ग करनेपर अधिकारियोंकी ओरसे दण्ड दिये जानेकी व्यवस्था नहीं है। विद्यार्थियोंकी सभाएँ

ही इसका प्रबन्ध करती हैं। आश्रम समितिके नामसे विद्यार्थियोंके प्रतिनिधियोंकी एक समिति है। यह समिति प्रत्येक छात्रावासके लिये दो तीन विद्यार्थियोंकी एक विचार सभा नियत कर देती है। जब कोई विद्यार्थी नियम भङ्ग करता है तब उस छात्रावासका नायक उसे विचार सभाके सम्मुख उपस्थित करता है और वहीं उसका न्याय होता है। इसके अतिरिक्त लड़के और लड़कियोंकी सम्मिलित साहित्य सभाएँ हैं। ये सभाएँ आदि, मध्य और उच्च श्रेणियोंकी अलग अलग हैं। इनमें विद्यार्थीगण कविता निबन्ध आदिका पाठ तथा नाटकका खेल करते हैं। आश्रममें दो भोजनालय हैं—एक नारीभवनके लिये और दूसरा लड़कोंके लिये। १२ वर्षसे कम उम्रके लड़के नारी भवनमें ही भोजन करते हैं। इस भोजनालयका प्रबन्ध लड़कियोंकी एक कमेटीके द्वारा होता है। दूसरे भोजनालयका प्रबन्ध एक वैतनिक मैनेजर और अध्यापकों तथा विद्यार्थियोंकी एक कमेटीके द्वारा होता है। दोनों ही भोजनालयोंके लिये प्रति दिन दो दो दैनिक मैनेजर भी चुने जाते हैं—नारीभवनके लिये लड़कियोंमेंसे और दूसरे भोजनालयके लिये लड़कोंमेंसे। किन्तु १२ वर्षसे कम उम्रके या कालेजके लड़के और लड़कियाँ इस कामके लिये नहीं लिये जाते। लड़कोंके भोजनालयके एक दैनिक मैनेजरका एक काम यह भी होता है कि आश्रममें जो अतिथि आये हों उन्हें आश्रमको सब संस्थाएँ और वस्तुएँ दिखलावे। बारी बारीसे सभी लड़कोंको यह

काम करना पड़ता है। उन्हें आश्रमकी संस्थाओं और वस्तुओंका साधारणतया अच्छा ज्ञान रहता है। प्रत्येक पूर्णमासी और अमावस्याको लड़कियाँ स्वयम् भोजन बनाकर समस्त आश्रमवासियोंको परोसती हैं।

प्रति दिन प्रातःकाल वैतालिकके बाद कार्यारम्भ होता है। सवेरे ७ बजे से १० बजे तक और तीसरे पहर २ बजे से ४ बजे तक क्लास लगते हैं। सन्ध्या समय खेल आदि होते हैं। व्यायाम और खेलके लिये कुश्ती, लाठी, तलवार, फुटबाल, बैडमिण्टन आदिका प्रबन्ध है। लाठी और तलवार लड़कियाँ भी सीखती हैं। रात्रिको ९ बजेके बाद फिर वैतालिक होता है। लड़के और लड़कियाँ उपयुक्त गीत गाते हुए छात्रावासोंके पाससे निकलते हैं। इसके बाद सोनेका समय होता है।

मासिक शुल्क आरम्भसे अन्ततककी सभी श्रेणियोंके लड़कोंसे २५ रुपये और लड़कियोंसे २३ रुपये लिये जाते हैं। इसमें शिक्षाशुल्क, छात्रावासका किराया और भोजनालयका ख़र्च सब आ जाते हैं।

शान्तिनिकेतनके पुस्तकालयमें अँगरेज़ी, फ़्रेञ्च, जरमन और इटालियन भाषाओंके ग्रन्थोंके अतिरिक्त संस्कृत, चीनी और तिब्बती तथा भारतीय भाषाओंके लगभग ३४००० ग्रन्थ हैं। हस्तलिखित पुस्तकोंकी संख्या ३००० से अधिक है।

कलाभवनकी स्थापना सन् १९१८ में हुई थी। तबसे इसने

बहुत उन्नति की है। इसका एक अलग पुस्तकालय और संग्रहालय है—जिसमें भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य देशोंकी भी वस्तुएँ हैं। यहाँ बहुत ही उच्च कोटिकी चित्रकला सम्बन्धी शिक्षाका प्रबन्ध है। रवि बाबूने लगभग २५०० बँगला गीतोंका स्वर निश्चित किया है। कलाभवनका सङ्गीत विभाग इस प्रणालीसे सङ्गीत शिक्षा देनेका एक अच्छा केन्द्र है। नृत्यकलाकी भी शिक्षा दी जाती है।

इन सब संस्थाओंके अतिरिक्त शान्तिनिकेतनमें अपनी सहकारी दूकान, बिजलीका पावर-हाउस अस्पताल और अतिथिशाला हैं।

विश्वभारतीका दूसरा अङ्ग है श्रीनिकेतन। इसके मुख्य उद्देश्य ये हैं—

(१) ग्रामवासियोंके जीवनसे सम्बन्ध रखने वाली बातोंमें दिलचस्पी लेते हुए और उनकी समस्याओंको हल करनेका पूरा प्रयत्न करते हुए उनसे सच्ची मित्रता स्थापित करना।

(२) ऐसे स्कूल और प्रयोगशाला खोलना जहाँ गाँवोंकी समस्याओंका अध्ययन किया जाय और कृषिके सम्बन्धमें नये नये प्रयोग किये जायँ।

(३) स्कूलके अध्ययन और प्रयोगशालाके प्रयोगोंसे जो ज्ञान और अनुभव प्राप्त हों उनके द्वारा ग्रामवासियोंकी सफ़ाई स्वास्थ्य, कृषि आदि सम्बन्धी अवस्थाओंका सुधार करना।

यहाँका कार्य कई भागोंमें बँटा हुआ है—जैसे ग्रामसुधार, कृषि, उद्योग, शिक्षा आदि। ग्रामसुधार विभागके द्वारा गाँव वालों-के लाभ और उनकी सेवाके लिये कई प्रकारके काम किये जाते हैं—जैसे सहकारी संस्थाएँ स्थापित करना, रोगनिवारणका प्रबन्ध करना, रात्रि पाठशालाएँ और कन्या पाठशालाएँ चलाना, गाँवोंमें व्रती बालकोंका (बालचर मण्डलके समान) सङ्गठन करना, गाँव वालोंको सामाजिक सेवाके कार्योंकी शिक्षा देना, दाइयोंको शिक्षा देना और अकाल तथा आकस्मिक बीमारियोंके समय गाँव वालोंकी सहायता करना। कृषि विभागके द्वारा कृषि और उससे सम्बन्ध रखने वाले कार्योंके लिये प्रयोग शालाएँ और डेरी आदि खोले गये हैं। इनमें ऐसे प्रयोग किये जाते हैं जिनसे लाभ उठाकर गाँव वाले अपनी कृषिका सुधार कर सकें। औद्योगिक विभागमें इसी उद्देश्यसे चमड़ेका एक कारख़ाना खोला गया है। बुनाईका भी काम होता है। शिक्षा विभागमें लड़के और लड़कियोंकी पाठशालाओंके अतिरिक्त बुनाई, खेती, बढ़ईगीरी, चमड़ेका काम और ग्रामसुधारसे सम्बन्ध रखने वाले विषयोंकी शिक्षाका प्रबन्ध है।

सत्रहवाँ अध्याय ।

श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी-भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ, पूना ।

आचार्य कर्वेने महाराष्ट्रमें स्त्रीशिक्षा-प्रचारका प्रयत्न सन् १८९६ ईसवीसे ही आरम्भ किया था। और यद्यपि अपने प्रयत्नोंमें उन्हें काफ़ी सफलता मिलती जा रही थी, तो भी इस मार्गमें आनेवाली समस्त कठिनाइयोंका उन्हें अच्छा अनुभव हो रहा था। उन्होंने देखा कि एक तो सभी देशोंमें लड़कियोंको इतना समय नहीं मिलता कि लड़कोंके लिये निश्चित पाठ्यक्रमको पूरा कर सकें, दूसरे भारतवर्षकी वर्तमान परिस्थितिमें सामाजिक रूढ़ियोंके कारण यहाँकी लड़कियोंके मार्गमें और भी अधिक कठिनाइयाँ हैं। इसके सिवाय विदेशी भाषाके माध्यम द्वारा शिक्षा दिये जानेकी विचित्र प्रणाली भी यहाँ प्रचलित है। मुमकिन है कि शुरू शुरूमें इस प्रणालीकी आवश्यकता रही हो, पर यदि स्त्रियोंमें शिक्षाका प्रचार करना है तो इस अस्वाभाविक रीतिको तो छोड़ना ही पड़ेगा। ऐसा किये बिना स्त्री-

पुरुष या भाईबहनके बीचका मानसिक वैषम्य दूर नहीं हो सकता। लड़के लड़कियोंके सहशिक्षणकी प्रणाली, मुमकिन है कि एक आदर्श प्रणाली हो; किन्तु उस आदर्शपर पहुँचनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि जबतक विषमता बहुत अधिक है तबतक उसे न बरता जाय। ये बातें उनके मनमें आ ही रही थीं कि श्री शिवप्रसाद गुप्तने (जो कि उस समय विदेशयात्रामें थे) जापानसे वहाँके स्त्री विश्वविद्यालयका द्वादश वार्षिक रिपोर्ट इनके पास भेजा। उसमें भी इन्हीं विचारोंका समर्थन था। आचार्य कर्वे कहते हैं कि 'उसे पढ़ते ही मेरे मनमें मानों विद्युत सञ्चारसा हो गया। मेरा विश्वास हो गया कि यदि भारतवर्षमें स्त्री-शिक्षाकी उन्नति करनी है तो हमें अपने जापानी भाइयोंका ही अनुकरण करना चाहिये।' उक्त रिपोर्टमें स्त्रीशिक्षाके सम्बन्धमें तीन सिद्धान्तोंपर विशेष ज़ोर दिया गया था—पहला यह कि स्त्रियाँ भी मनुष्य हैं और उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये जिससे वे भला बुरा, न्याय अन्याय, योग्य अयोग्य समझ सकें और उनमें ऐसा आत्मविश्वास उत्पन्न हो कि प्रसङ्ग पड़नेपर धैर्यसे स्वावलम्बन पूर्वक अपना जीवन बिता सकें; दूसरा यह कि उन्हें ऐसी शिक्षा दी जावे जिससे वे स्त्री ज़ाति विषयक निसर्गदत्त कर्त्तव्योंको भलीभाँति पूरा कर सकें अर्थात् सुगृहिणी और सुमाताएँ बन सकें; और तीसरा यह कि स्त्रियाँ भी राष्ट्रकी निर्माता हैं, और उन्हें ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे उनके

मनमें राष्ट्रीय भावनाएँ जागृत हों। कुछ राष्ट्रीय कर्तव्य स्त्रियापर ही निर्भर हैं। जैसे कन्याओंको सुशिक्षित करने और प्रौढ़ा स्त्रियोंमें आधुनिक राष्ट्रीय भावनाओंके बीज बोनेका काम स्त्रियाँही कर सकेंगी। इसी प्रकार बच्चों और स्त्रियोंकी चिकित्सा भी उन्हें ही करनी चाहिये। सन्ततिके मनमें राष्ट्रीय भावनाओंका बीजारोप करना माताका आदि कर्तव्य है, पर जबतक उसीके मनमें ये भावनाएँ न हों तबतक इस पवित्र कर्तव्यको वह कैसे पूरा कर सकती है। इन्हीं सिद्धान्तोंके आधारपर सन् १९०० ईसवीमें उक्त जापानी स्त्री विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई थी। १२ वर्षोंके भीतर वहाँसे १३०० महिलाएँ उपाधि प्राप्त करके निकलीं। तीस पैंतीस वर्षसे अधिक उम्रकी स्त्रियोंको भी पाठशालाओंमें जानेका उत्साह होने लगा। फल यह हुआ कि सन् १९०० ईसवीमें जहाँ लड़कियोंकी शिक्षाके केवल १२ हाइस्कूल थे वहाँ १९१२ ईसवीमें उनकी संख्या १८२ हो गई। यह रिपोर्ट आचार्य कर्वेको सन् १९१५ ईसवीमें मिली। उसी वर्ष दिसम्बरके महीनेमें उन्हें राष्ट्रीय समाज सुधार सम्मेलनके अधिवेशनमें सभापति होना था। उन्होंने अपने भाषणमें इस विषयकी चर्चा की और भारतवर्षमें एक महिला विद्यापीठ स्थापित करनेकी आवश्यकतापर ज़ोर दिया।

सम्मेलन समाप्त होनेपर आचार्य कर्वेने इस विद्यापीठकी स्थापनाके लिये काम करना शुरू किया। इसमें उन्होंने हिंगणेके अनाथ-

बालिकाश्रमकी सहायता ली। सन् १६१६ ईसवीमें एप्रिलसे जून तक भारतवर्षका चक्कर लगाया और लोगोंकी सहानुभूति इस कार्यके लिये प्राप्त की। जूनके महीनेमें विद्यापीठके सर्व प्रथम सीनेटकी बैठक पूनेके फ़रग्यूसन कालेजमें हुई जिसमें विद्यापीठके सङ्गठनकी नियमावली बनी और पाठ्यक्रम निश्चित किये गये।

विद्यापीठके उद्देश्य ये रक्खे गये—

(क) स्त्रियोंके लिये भारतवर्षकी प्रान्तीय भाषाओंके माध्यम द्वारा ऊच्च शिक्षाका प्रबन्ध करना।

(ख) माध्यमिक शिक्षाका नियमन करना और संस्थाएँ चलाना, उन्हें सहायता देना और उन्हें विद्यापीठसे सम्बद्ध करना तथा उनके लिये इस प्रकारका पाठ्यक्रम निश्चित करना जो स्त्रियों-के उपयुक्त हो।

(ग) प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयोंके लिये अध्यापिकाएँ तैयार करना।

(घ) परीक्षाएँ लेकर नियमानुसार उपाधियाँ, प्रमाणपत्र और सम्मानपत्र प्रदान करना।

(ङ) सीनेटके निश्चयानुसार अन्य ऐसे कार्य करना जो उपरोक्त उद्देश्योंके प्रतिकूल न हों।

अनाथ बालिकाश्रमने बम्बई विश्वविद्यालयकी मैट्रिकुलेशन परीक्षाके लिये विद्यार्थिनी तैयार करनेका उद्देश्य छोड़ दिया और

अपने महिला विद्यालयको इस विद्यापीठसे सम्बद्ध करा लिया। आश्रमने इस विद्यापीठके लिये एक कालेज चलानेका भी निश्चय किया। यह कालेज उसी वर्ष ५ जुलाईको खुला जब कि उसमें विद्यार्थिनियोंकी संख्या केवल ४ थी।

स्थापनाके समय विद्यापीठके कोषमें एक रुपया भी न था। कुछ व्यक्तियोंके दानसे इसका काम चलने लगा। श्री एम० के० गाडगिलने महिलाश्रम द्वारा चलाये जानेवाले कालेजके लिये दस वर्षोंतक प्रतिवर्ष हज़ार रुपया देनेका वचन दिया। वे साढ़े तीन हज़ार ही दे पाये थे कि विद्यापीठने उक्त कालेजका भार अनाथ बालिकाश्रमसे अपने हाथोंमें ले लिया। दूसरा दान दक्षिण आफ़्रिका प्रवासी स्वर्गीय डाक्टर विट्ठल राघोबा लाण्डेसे मिला। उनकी वसीयतके अनुसार उनका सब लहना पावना साफ़ करके विद्यापीठको लगभग ४० हज़ार रुपये मिले। विद्यापीठने अपने पूनेकी कन्याशाला (श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी कन्याशाला) के भवनका नाम 'डाक्टर विट्ठल राघोबा लाण्डे भवन' रक्खा है। सबसे बड़ा दान सन् १९२० ईसवीमें सर विट्ठलदास थाकरसीसे मिला। विद्यापीठकी स्थापनाके एक वर्ष बाद आप अनाथ बालिकाश्रममें आये थे और उसे हज़ार रुपयोंका दान दिया था। इसके बाद आप विश्वभ्रमणके लिये निकले और जापानके उस स्त्री विश्वविद्यालयको देखा जिसका द्वादश वार्षिक रिपोर्ट आचार्य

कर्वेको मिला था। उसे देख कर वे बहुत उत्साहित हुए और भारतवर्षीय महिला विद्यापीठके लिये कुछ शर्तोंके साथ १५ लाख रुपयोंकी निधि क़ायम कर दी। विद्यापीठके अधिकारियोंने उन शर्तोंको स्वीकार कर लिया और तारीख़ २१ जून सन् १९२० ईसवीको उसकी लिखा पढ़ी हो गई। शर्तोंमेंसे कुछ ये हैं—

(१) श्री थाकरसी और उनके वारिस विद्यापीठको प्रतिवर्ष ५२५०० रुपये देंगे।

(२) इसके बदलेमें विद्यापीठ नीचे लिखी शर्तें मंजूर करता है—

(क) विद्यापीठका नाम श्री विट्ठलदास थाकरसीकी माताके नामपर 'श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ' होगा।

(ख) विद्यापीठ शीघ्रही पूनेमें एक हाइस्कूल खोलेगा।

(ग) विद्यापीठ, हिंगणेमें अनाथ बालिकाश्रम द्वारा सञ्चालित कालेजको अपने आधीन कर लेगा और उसे पूनेके पास ले आकर वहाँ छात्रावासका भी प्रवन्ध करेगा।

(घ) विद्यापीठ बम्बईमें शीघ्रसे शीघ्र एक हाइस्कूल खोलेगा जहाँ मराठी और गुजराती दोनोंके ही माध्यमसे शिक्षाका प्रवन्ध रहेगा और जो धीरे धीरे कालेजके रूपमें परिणत कर दिया जायगा।

(ङ) मकानात बन जानेपर विद्यापीठका सदर मुक़ाम बम्बईमें हो जायगा………।

(च) ऊपर (ख) और (ग) में वर्णित हाइस्कूल और कालेजके नाम श्री विट्ठलदासकी माताके नामपर रक्खे जायँगे। आगे श्री विद्यापीठ द्वारा चलने वाली संस्थाओंके नाम इसी प्रकार रक्खे जावेंगे।

(छ) ……………

(ज) ……………

(३) ………………

(४) जिस दिन विद्यापीठ नीचे लिखी शर्तोंमेंसे किसी एकको पूरा कर देगा उस दिन श्री विट्ठलदास और उनके वारिस इतने दामका सरकारी काग़ज विद्यापीठको दान कर देंगे जिसकी वार्षिक आय ५.२५.०० रुपये होगी। शर्तें ये हैं—

(क) विद्यापीठको सरकारी चार्टर मिल जाय।

या

(ख) विद्यापीठको सरकारसे इस तरहकी मान्यता मिल जाय जिससे एक ओर तो उसके स्थायी होनेका निश्चय हो जाय और दूसरी ओर जनताको यह विश्वास हो जाय कि वह ठीक रास्तोंसे चलाया

जायगा और उसके स्नातिकाओंका वही दर्जा होगा जो सरकारी विश्वविद्यालयके स्नातिकाओंका होता है।

या

(ग) विद्यापीठ कोई ऐसा कोष एकत्रित कर ले जिसकी वार्षिक आय ५२५०० रुपये हो।

(५) ऊपर (४) में वर्णित दानके दे दिये जानेपर प्रतिवर्ष ५२५०० रुपयों के दानका दिया जाना बन्द कर दिया जायगा।

इस शर्तनामेको मंजूर करनेके बाद विद्यापीठका नाम 'श्रीमती नाथी बाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ' हो गया। हिंगणेका कालेज पूनेके समीप यरएडवनमें ले आया गया, बम्बईमें एक हाइस्कूल खोला गया और इन सबके साथ साथ पूनेके हाइस्कूलका नाम शर्तनामेके अनुसार बदला गया। आजकल प्रत्यत्त रूपसे विद्यापीठके सञ्चालनमें उपरोक्त एक कालेज और दोनों हाइस्कूलोंके सिवाय २ और कालेज, १ अध्यापिका शाला, ८ हाइस्कूल और ५ मिडिल स्कूल इस विद्यापीठसे सम्बद्ध हैं। इनमेंसे एक हाइस्कूल और अध्यापिका शाला हिंगणेके अनाथ बालिकाश्रममें हैं।

कालेजका पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है। अन्तिम वर्षकी परीक्षा

उत्तीर्ण करनेपर स्नातिकाओंको गृहीतागमाकी उपाधि दी जाती है। एक भारतीय भाषा, अंगरेज़ी, इतिहास और समाज शास्त्र तथा गार्हस्थ्य विज्ञान और स्वास्थ्यरक्षा ये आवश्यक विषय हैं। इनके अतिरिक्त नीचे लिखे विषयोंमेंसे कोई एक लेना पड़ता है—(१) कोई प्राचीन भाषा, (२) भौतिक विज्ञान, (३) प्राकृतिक विज्ञान, (४) धर्मोंका तुलनात्मक अध्ययन, (५) अर्थ शास्त्रका इतिहास (६) नीतिशास्त्र और दर्शन, (७) गणित, (८) शिक्षा शास्त्र (९) सङ्गीत, (१०) चित्रकला, (११) अँगरेज़ीका विशेष अध्ययन (१२) किसी भारतीय भाषाका विशेष अध्ययन, और (१३) कोई यूरोपीय भाषा। आवश्यक द्रव्य एकत्र हो जानेपर कालेजमें एक वैद्यक विभाग भी खोलनेका विचार है। गृहीतागमा होनेके कमसे कम दो वर्ष बाद कोई स्नातिका प्रदेयागमा परीक्षामें बैठ सकती है। इसके लिये पहले एक निबन्ध लिखकर देना होता है और तब विद्यापीठके सीएडीकेटके निश्चयानुसार किन्हीं विषयोंमें उसकी परीक्षा ली जाती है। कोई गृहीतागमा अथवा इसीके समकक्ष परीक्षामें उत्तीर्ण विद्यार्थिनी कमसे कम दो वर्षोंतक अध्यापन कार्य करनेके बाद शिक्षाशास्त्र परीक्षा (इक्ज़ामिनेशन फ़ार दि डिप्लोमा इन टीचिंग) में बैठ सकती है। यह परीक्षा दो भागोंमें होती है—सैद्धान्तिक और व्यावहारिक। इनके अतिरिक्त विद्यापीठकी ओरसे तीन और परीक्षाएँ ली जाती हैं—एएट्रेन्स परीक्षा, सेकण्डरी

स्कूल सर्टीफ़िकेट परीक्षा और प्राइमरी स्कूल अध्यापन (नार्मल स्कूल) परीक्षा। एण्ट्रेन्स परीक्षाके लिये नीचे लिखे विषय आवश्यक हैं—(१) एक वर्तमान भारतीय भाषा, (२) अंगरेज़ी, (३) इतिहास, और (४) गार्हस्थ्य विज्ञान और स्वास्थ्यरक्षा। इनके अतिरिक्त नीचे लिखे विषयोंमेंसे कोई दो लेने होते हैं—(१) प्राचीन भाषा (संस्कृत) (२) भौतिक और रसायन, (३) बीजगणित और रेखागणित (४) हिन्दी (केवल उनके लिये जिनकी मातृभाषा हिन्दी न हो) (५) भूगोल, (६) चित्रकारी, (७) सङ्गीत, (८) सीना पिरोना तथा क़सीदेका काम और (६) शिक्षा विज्ञान (यह विषय लेने वालोंको और दूसरा ऐच्छिक विषयक नहीं लेना पड़ता)। सेकण्डरी स्कूल सर्टीफ़िकेट परीक्षा एण्ट्रेन्स परीक्षाकी ही भाँति होती है—केवल उसमें अँगरेज़ी नहीं रहता। प्राइमरी स्कूल अध्यापन (नार्मल स्कूल) परीक्षाका पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है। इसमें वर्नाक्यूलर फ़ाइनल परीक्षा पास विद्यार्थिनियाँ ही ली जाती हैं। परीक्षा नीचे लिखे विषयोंमें होती है—(१) शिक्षापद्धतिके सिद्धान्त, (२) शिक्षापद्धतिका व्यावहारिक ज्ञान (३) प्रान्तीय भाषा, (४) अङ्कगणित, (५) इतिहास, (६) भूगोल, (७) स्वास्थ्यरक्षा, (८) प्रकृतिनिरीक्षण, (६) चित्रकारी और हाथका काम (१०) सङ्गीत, (११) क़सीदेका काम और (१२) शारीरिक व्यायाम।

यह विद्यापीठ किसी प्रान्तविशेषका नहीं, अपितु समस्त भारत-

वर्षका है। किसी भी प्रान्तमें कोई भी संस्था अपनी भाषा द्वारा इस विद्यापीठके पाठ्यक्रमकी शिक्षाका प्रबन्ध करके अपनेको विद्यापीठसे सम्बद्ध कर सकती है। विद्यापीठकी ओरसे वहाँकी विद्यार्थिनियोंकी परीक्षा ले ली जायगी। ग्वालियरसे एक महिला हिन्दी भाषामें गृहीतागमा हो चुकी हैं। इस विद्यापीठकी मुख्य विशेषताएँ ये हैं—

(१) शिक्षाका माध्यम मातृभाषा रक्खी गई है।

(२) अँगरेज़ी भाषाके महत्वको भी देशकी वर्तमान परिस्थितिमें स्वीकार किया गया है और उच्च शिक्षाके लिये वह आवश्यक विषय है।

(३) पाठ्यक्रम बनानेमें स्त्रियोंकी शिक्षा सम्बन्धी विशेष आवश्यकताओंका ख़याल रक्खा गया है।

(४) पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया गया है जिससे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा ६ वर्षोंमें तथा कालेजकी शिक्षा ३ वर्षोंमें समाप्त हो जाय। इस प्रकार यदि कोई लड़की छः वर्षकी उम्रमें पढ़ना शुरू करे तो १५ वर्षकी उम्रमें एएट्रेन्स परीक्षा पास कर ले और १८ वर्षकी उम्रमें गृहीतागमा हो जाय।

(५) स्त्रियोंमें माध्यमिक और उच्च शिक्षाका प्रचार करनेकी कोशिश की जाती है और एतदर्थ ये सुविधाएँ की गई हैं—

(क) यदि कोई विद्यार्थिनी किसी एक ही विषयमें

अनुत्तीर्ण हो तो अगली मर्तबा उसे केवल उसी विषयकी परीक्षा देनी होती है। एण्ट्रेन्सके सिवाय अन्य परीक्षाओंमें केवल एक विषयमें अनुत्तीर्ण होनेपर अगली परीक्षाके लिये तैयारी करनेकी इजाज़त दे दी जाती है और दोनों परीक्षाएँ एक साथ ले ली जाती हैं।

(ख) विद्यार्थिनियोंकी परीक्षा उनके ही शहरोंमें लेनेका प्रबन्ध कर दिया जाता है।

(६) विद्यापीठ सरकारी नियन्त्रणसे बिलकुल स्वतंत्र है। किन्तु यह केवल इसी लिये कि वह अपना पाठ्यक्रम निश्चित करनेमें स्वतंत्र रहना चाहता है। वह इस बात का प्रयत्न करता है कि सरकार उसके प्रमाणपत्रोंको स्वीकार करे। जो विद्यार्थिनियाँ गणित और विज्ञान ऐच्छिक विषय लेकर यहाँकी एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करती हैं वे डाक्टरीकी सरकारी एल. सी. पी. एस. परीक्षाके लिये बैठ सकती हैं। नार्मल स्कूलके प्रमाणपत्रोंको भी बम्बईका सरकारी शिक्षाविभाग कुछ शर्तोंके साथ स्वीकार करता है।

जुलाई सन् १९२९ ईसवीमें विद्यापीठके आधीन और सम्बद्ध संस्थाओंमें शिक्षा पाने वाली विद्यार्थिनियोंकी संख्या इस प्रकार

थी—कालेजोंमें ५८, हाइस्कूलोंमें १३०३ और मिडिल स्कूलोंमें २३०। सन् १९२९ के आरम्भ तक विद्यापीठकी भिन्न भिन्न परीक्षाओंमें उत्तीर्ण विद्यार्थिनियोंकी संख्या इस प्रकार थी—

एएट्रेन्स परीक्षा	२५०
सेकेण्डरी स्कूल सर्टीफ़िकेट परीक्षा	४१
प्राइमरी स्कूल अध्यापन परीक्षा	४६
गृहीतागमा	६२
प्रदेयागमा	२

गृहीतागमा उपाधि प्राप्त करने वाली ६२ महिलाओंमेंसे ५ तो सन् १९२९ में निकली हैं। इनके सम्बन्धमें ब्योरेवार सूचना नहीं मिली है। शेष ५७ मेंसे ३७ की मातृभाषा मराठी, १८ की गुजराती, १ की हिन्दुस्तानी, और १ की तेलगू थी। तेलगू महिलाने मराठीमें परीक्षा दी। शेषकी परीक्षाएँ उनकी मातृ भाषामें ली गई। इनमेंसे कुछ स्नातिकाएँ वैवाहिक जीवनमें प्रवेश कर चुकी हैं। शेषमेंसे अधिकांश शिक्षा प्रचारका कार्य कर रही हैं। इनमेंसे एक अमरावतीके गवर्नमेएट गर्ल्स हाइस्कूलमें और एक कन्या महाविद्यालय जालन्धरमें अध्यापिका हैं। एक स्नातिका मद्रासके सरकारी ट्रेनिङ्ग कालेजमें शिक्षा पाकर नेल्लोरके एक स्कूलमें अध्यापिका हैं। हिंगणेकी अध्यापिका शालासे—जो कि इस विद्यापीठसे सम्बद्ध है—३८ अध्यापिकाएँ निकल चुकी हैं।

परिशिष्ट

परिशिष्ट (क)

प्रश्नावली, जो मुख्य मुख्य संस्थाओंके पास उत्तरार्थ भेजी गई थी।

१. आपकी संस्थाका उद्देश्य क्या है ?

२. प्रचलित सरकारी शिक्षासंस्थाओंकी अपेक्षा इसमें कौन कौनसी विशेषताएँ हैं ?

३. आपके विचारसे राष्ट्रीय शिक्षाकी क्या परिभाषा है ?

४. अध्यापकोंका संग्रह करनेमें आप किन किन बातोंका ख़याल रखते हैं ?

५. विद्यार्थियोंका संग्रह करनेमें आप किन किन बातोंका ख़याल रखते हैं ?

६. क्या विद्यार्थियोंके प्रवेश आदिके संबन्धमें आपके यहाँ कुछ ऐसे नियम हैं जिनके द्वारा आप बालविवाह, छुआछूत और अन्य सामाजिक बुराइयों-को दूर करनेका प्रयत्न करते हों ?

७. पाठ्यक्रम बनाते समय आप किन किन बातोंका ख़याल रखते हैं ? देशके सभी ग़ैरसरकारी विद्यालयोंके पाठ्यक्रममें समानता लानेके सम्बन्धमें आपके क्या विचार हैं ? आपके पाठ्यक्रममें ऐसी कौनसी बातें हैं जिन्हें आप किसी अवस्थामें बदलना न चाहेंगे ?

८. आपके यहाँ लड़के और लड़कियोंके पाठ्यक्रममें कोई अन्तर है या नहीं ? यदि है तो किस प्रकारका ?

९. पुस्तकोंका ज्ञान करानेके अतिरिक्त विद्यार्थियोंके आचार व्यवहारका परिष्कार करनेके लिये आप कौन कौनसे उपाय करते हैं ?

१०. आपकी संस्थामें लड़के और लड़कियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध साथ साथ है या अलग अलग ! यदि साथ साथ है तो इतने दिनोंके अपने अनुभवके आधार पर इस प्रणालीको आप प्रचलित रखना ठीक समझते हैं या इसमें किसी तरहका परिवर्तन करना आवश्यक समझते हैं ?

११. विद्यार्थियोंकी शिक्षा और छात्रावासके सम्बन्धमें किसी तरहका शुल्क लिया जाता है या नहीं, यदि लिया जाता है तो कितना ?

१२. विद्यार्थियोंको कोई छात्रवृत्ति दी जाती है या नहीं ? यदि दी जाती है तो कितनी, और उसके दिये जानेका क्या नियम है ?

१३. आपके यहाँ मैट्रीक्युलेशनकी समकक्ष परीक्षा पास करने पर औसत् कितने प्रतिशत् विद्यार्थी कालेजके लिये जाते हैं ? जो उच्च शिक्षाके लिये नहीं जाते वे जीवन निर्वाहके लिये किन किन कामोंमें लग सकते हैं ?

१४. स्नातकोंके जीवन निर्वाहकी कठिनाइयोंको दूर करनेके लिये आपके पाठ्यक्रममें कौनसी व्यवस्था है ?

१५. देशके राजनैतिक तथा सामाजिक आन्दोलनोंके प्रति आपकी संस्थाका क्या रुख़ है ?

१६. अपने उद्देश्योंकी पूर्तिमें आपको किन किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है, और उन्हें दूर करनेके लिये भविष्यमें आप किन किन उपायोंका अवलम्बन करना चाहते हैं ?

१७. क्या आपकी योजनामें कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें आप अभीतक कार्यान्वित नहीं कर सके हैं ?

१८. अपनी संस्थाके सम्बन्धमें और भी जानने योग्य बातोंका कृपया उल्लेख करें ?

१९. अपनी संस्थाका आरम्भसे आजतकका संक्षिप्त विवरण दीजिये, साथ ही आजतकके सभी रिपोर्ट, पाठ्यक्रम और नियम आदि भी भेजिये ।

परिशिष्ट (ख)

मुख्य मुख्य संस्थाओंके अन्तर्गत विद्यालयों, उनके विद्यार्थियों और उन संस्थाओंसे निकले हुए स्नातकों और स्नातिकाओंकी संख्या (सन् १९२९ में)

क्रम संख्या	संस्थाका नाम	इस संस्थाद्वारा सञ्चालित अथवा इससे सम्बद्ध विद्यालयोंकी संख्या						विद्यार्थियोंकी संख्या	आजतक निकले हुए स्नातकों और स्नातिकाओंकी संख्या
		प्रारम्भिक और माध्यमिक	औद्योगिक	अध्यापक विद्यालय	ग्रामसेवा विद्यालय	महाविद्यालय (कालेज) और पुरातत्वविभाग	योग		
१	अनाथ बालिकाश्रम, हिंगणे ॐ	१	...	१	...	...	२	१८५	...
२	कन्या गुरुकुल, देहरादून	१	...	...	...	१	२	१५०	...
३	कन्या महाविद्यालय, जालन्धर	२	...	...	...	१	३	४९५	३४
४	काशी विद्यापीठ, काशी	२	...	...	...	१	३	१२५	५१
५	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद	१२	...	...	१	३	१६	६९७	२९७
६	गुरुकुल, काँगड़ी	७	...	...	...	१	८	८४९	१८४†
७	गुरुकुल, वृन्दावन	१	...	...	...	१	२	१८३	३३

८	जामिया मिल्लिया इस्लामियां, दिल्ली	४	...	...	...	१	५	७४८	७१
९	तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना	१८	...	...	...	२	२०	९५३	२२१†
१०	श्रीदक्षिणामूर्त्ति विद्यार्थीभवन, भावनगर	२	...	१	...	...	३	१६९	...
११	नवीन श्रीसमर्थ विद्यालय, तलेगाँव ❀	१	...	...	...	...	१	६०	...
१२	प्रेममहाविद्यालय, वृन्दावन	१	६	...	१	१	९	१७८	२५५‡
१३	बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद्, कलकत्ता	१४	...	...	...	१	१५	६००§	४२५‖
१४	बिहार विद्यापीठ, पटना	२२	...	...	...	१	२३	१३००	६२
१५	महाविद्यालय, ज्वालापुर	१	...	...	...	१	२	१६०	७३
१६	विश्वभारती, शान्तिनिकेतन	१	...	...	...	२	३	२०८	१३¶
१७	श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ, पूना	१५	...	१	...	३	१९	१६१८	६२
		१०३	६	२	२	२०	१३३	८४३३	१७९१

❀ अनाथ बालिकाश्रम, हिंगणे और नवीन श्रीसमर्थ विद्यालय, तलेगाँवके सामने जो अङ्क दिये गये हैं वे क्रमशः श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ और तिलक-महाराष्ट्र विद्यापीठके सामने दिये गये अङ्कोंमें शामिल हैं। अतएव योगमें ये अङ्क दुबारा नहीं जोड़े गये हैं। † ये अङ्क सन् १९२८ तकके हैं। ‡ यह संख्या भिन्न भिन्न विभागोंसे डिप्लोमा प्राप्त विद्यार्थियोंकी है। § यह संख्या केवल कालेजके विद्यार्थियोंकी है। ‖ इनमेंसे १९ टेकनिकल विभागके और शेष साधारण विभागके स्नातक हैं। ¶ यह संख्या विश्वभारतीका कोर्स लेनेवाले स्नातक की है।